TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

TIGHT BINDING BOOK

THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182086

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—901—26-3-70—5 000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H183 C38J Accession No. H1715

Author चट्टोपाध्याय, शरत्चंद्र

Title गृहदाह

This book should be returned on or before the date last marked below

गृहदाह

शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय

अनुवादक
बलभद्र ठाकुर
संशोधक
सत्यनारायण व्यास

किताब महल
इलाहाबाद

मूल्य ३ रुपया

प्रथम संस्करण, १९४७

[सर्वाधिकार सुरक्षित]

Checked 1969

मुद्रक—बी० एस० वारसनी, वारसनी प्रेस इलाहाबाद

गृहदाह

१

सुरेश महिम का परम मित्र था। एक ही साथ एफ० ए० पास करने के बाद सुरेश तो मेडिकल कालेज में भर्ती हो गया; किन्तु महिम उसी पुराने सिटी कालेज में टिका रहा।

सुरेश ने दुखी स्वर में कहा—'महिम, मैं बारबार कहता हूँ, बी० ए० एम० ए० पास करने से कोई लाभ नहीं। अब भी समय है, बहुत अच्छा होगा अगर तुम भी मेडिकल कालेज में भर्ती हो जाओ।'

महिम ने हँसकर कहा—'होना तो अच्छा है, लेकिन खर्च की बात भी तो सोचनी चाहिये।'

'क्या खर्च इतना अधिक है कि तुम दे नहीं सकते? इसके अलावा तुम्हें स्कालरशिप भी तो मिलती है।'

महिम हँसकर चुप रह गया।

सुरेश ने अधीर होकर कहा—'ना, ना,—हँसो मत, महिम, अब देरी करने से बनेगा नहीं। मैं तुमसे कहे देता हूँ कि इसी बीच ऐडमिशन ले लो। खर्च की बात पीछे करना।'

महिम ने कहा—'अच्छा।'

सुरेश ने कहा—'देखो महिम, तुम्हारा अच्छा कहाँ तक सही है और कहाँ तक नहीं यह मैं आज तक न समझ सका। मगर रास्ते पर तुम्हें राजी न कर सका, क्योंकि कालेज जाने की देर हो रही है। किन्तु कल-परसों तक जिस तरह होगा तुमसे एक न एक निर्णय कराकर ही

छोड़ूँगा। कल सबेरे घर पर ही रहना, मैं आऊँगा।' यह कह कर सुरेश अपने कालेज की ओर द्रुतगति से चल पड़ा।

पन्द्रह दिन बीत गये। कहाँ महिम, और मेडिकल कालेज में उसके ऐडमिशन लेने की बात! एक दिन रविवार को दोपहर के समय बहुत ढूँढ़-ढाँढ़ के बाद सुरेश एक दीन-हीन छात्रावास में आ पहुँचा। सीधे ऊपर जाकर देखा—सामने एक अंधेरी सीड़वाली कोठरी की फर्श पर फटे-पुराने कुशासन पर छः-सात आदमी बैठे हैं। महिम ने शिर उठाकर अचानक अपने मित्र को देखा और कहा—'एकाएक निवास-स्थान बदलने के कारण मैं तुम्हें खबर न दे सका। तुम्हें यहाँ का पता कैसे चला?'

सुरेश इस प्रश्न का कोई उत्तर दिये बिना ही चट चौकठ पर बैठ गया और एकटक लड़कों की भोजन-सामग्री की ओर देखने लगा। अत्यन्त मोटे चावल का भात, पानी-सी दाल, साग, सहिजन और अरुई की एक तरकारी और उसी के साथ अधजले तले हुए कुम्हड़े के दो टुकड़े, न तो दही, न दूध, न किसी तरह की मिठाई; किसी के पत्तल पर एक टुकड़ा मछली का भी नदारद।

सबके साथ महिम प्रसन्न मुख और अत्यन्त तृप्ति के साथ इन भोज्य-पदार्थों का स्वाद लेने लगा। किन्तु देख-देखकर सुरेश को आंखें डबडबा आईं। उसने किसी तरह अपना मुँह फेरकर आंखें पोंछ लीं और उठ खड़ा हुआ। सामान्य कारणों से ही सुरेश की आंखें जल से भर जातीं थीं।

भोजन के बाद जब महिम ने अपनी दीन-हीन शय्या पर अपने मित्र को लाकर बिठाया, तब सुरेश रुँधे स्वर में बोला—'महिम, तुम्हारा बार-बार का अत्याचार अब मुझसे सहा नहीं जाता।'

महिम ने भोलेपन से पूछा—'इसका मतलब?'

सुरेश ने कहा—'इसका मतलब यह है, कि शहर के बीच ऐसा रद्दी मकान भी हो सकता है, और इस तरह का खराब खाना भी

मनुष्य के मुख में जा सकता है, अपनी आंखों से देखे बिना मैं कभी विश्वास नहीं कर सकता था। अस्तु, तुम्हें ऐसी जगह का पता ही कैसे लगा, और तुम्हारा पूर्व निवास-स्थान चाहे जितना भी गंदा रहा हो, लेकिन उसकी इसके साथ तुलना नहीं की जा सकती; तो उसे छोड़ क्यों दिया ?' Mr. Ghanshyam is a good boy. 4 2 27 MYB

मित्र के प्रेम ने मित्र के हृदय में आघात किया। महिम अपनी स्वाभाविक गंभीरता कायम न रख सका, गद्‌गद् स्वर में बोला—'सुरेश, तुमने मेरा गाँव का घर देखा नहीं है; देखने पर समझते, इस जगह में मुझे कोई कष्ट नहीं हो सकता। और खाने के बारे में—दूसरे पाँच भले आदमी जिसे हँसी-खुशी से खाते हैं, मैं क्यों नहीं खा सकता ?'

सुरेश उत्तेजित होकर बोला—'यह 'क्यों' कोई जवाब नहीं है। संसार में भली और बुरी दोनों चीजें ज़रूर हैं। मगर भली, भली ही लगेंगी और बुरी बुरी ही, इसमें कोई संदेह नहीं। मैं सिर्फ यही जानना चाहता हूँ कि आखिर तुम्हें इतना कष्ट करने का प्रयोजन क्या है ?'

महिम चुप होकर मन्द मन्द मुसकाने लगा, कुछ बोला नहीं।

सुरेश ने कहा—'तुम्हारा प्रयोजन तुम्हारे पास रहे, मुझे जानने की ज़रूरत नहीं। लेकिन मेरा प्रयोजन तुम्हारा उद्धार करना है। मैं अभी गाड़ी बुलवाता हूँ और तुम्हारा सब सामान अपने घर ले चलता हूँ। अगर तुम्हें यहीं छोड़कर चला जाऊँ, तो मुझे नींद न आयेगी, भोजन फीका लगेगा। तुम्हारे मैस के नौकर को बुलाकर गाड़ी लाने को कहो' यह कहकर महिम को खींचता हुआ अपने हाथ से ही उसका बोरिया-बिस्तर बांधने लगा।

महिम ने उसे रोकने की कोई चेष्टा न की, लेकिन शान्त-गम्भीर स्वर में बोला—'पागलपन मत करो सुरेश !'

सुरेश ने घूंरकर कहा—'पागलपन कैसा ? क्या तुम चलोगे नहीं ?'

'नहीं।'

'क्यों नहीं चलोगे ? क्या मैं तुम्हारा कोई नहीं ? मेरे घर चलने मे क्या तुम्हारा अपमान होगा ?'

'नहीं।'

'तब ?'

महिम ने कहा—'सुरेश, तुम मेरे मित्र हो। तुम्हारे जैसा मित्र मेरा और कोई नहीं। संसार में और किनके ऐसे मित्र हैं, यह भी मैं नहीं जानता। इतने दिनों के बाद इस चीज़ (मित्रता) को मैं सिर्फ अपने देह के आराम के लिये खो बैठूँ, मुझे क्या तुम इतना बड़ा मूर्ख समझते हो ?'

सुरेश ने कहा—'उस मित्रता पर सिर्फ तुम्हारा ही अधिकार तो नहीं है, महिम। उसके एक भाग पर मेरा भी तो कब्जा है। यदि वह वस्तु खो जायगी, तो कितना बड़ा नुकसान होगा, यह समझने की शक्ति मुझमें नहीं—क्या मैं इतना बड़ा बेवकूफ हूँ ? और, यदि इतने सतर्क रहने और ख्याल रखने पर भी यह मित्रता नष्ट हो जाय तो हो जाने दो न, महिम ! क्या उसका इतना मूल्य है कि उसके लिये देह के आराम का भी खयाल न किया जाय।

महिम ने हँसकर कहा—'नहीं, इस बार मैं हार गया। किन्तु एक बात निश्चय समझो, सुरेश। तुम समझते हो—मैं शौक से तकलीफ़ उठाने यहाँ आया हूँ यह सच नहीं।'

सुरेश ने कहा—'ठीक है यह सच न हो। मैं कारण जानना चाहता भी नहीं—किन्तु, यदि पैसा बचाना ही तुम्हारा उद्देश्य है, तो मेरे घर चलकर रहो न—इससे तुम्हारा उद्देश्य मिट्टी में तो मिल नहीं जायगा।'

महिम ने शिर हिलाकर संक्षेप में कहा—'अभी ठहरो, सुरेश। अगर मुझे सचमुच कष्ट होगा, तो मैं तुम्हें बताऊँगा।'

सुरेश जानता था, महिम को उसके संकल्प से डिगाना कठिन है। वह अधिक जिद्द न करके एक तरह से रूठकर चलता बना। किन्तु,

अपने मित्र का यहाँ ठहरना और भोजन की व्यवस्था अपनी आंखों देखकर उसके दिल को कड़ी चोट पहुँची।

सुरेश धनी परिवार का लड़का था और महिम को निष्कपट रूप से प्यार करता था। उसकी आन्तरिक अभिलाषा थी—वह किसी तरह अपने मित्र के काम आवे। लेकिन वह कभी भी महिम को सहायता स्वीकार करने के लिये राजी न कर सका—आज भी असफल रहा।

२

पाँच साल के बाद दोनों मित्रों में इस तरह की बातचीत छिड़ी हुई थी।

'तुम्हारे ऊपर मेरी कितनी अपार श्रद्धा थी, महिम, सो मैं कह नहीं सकता।'

'कहने के लिये तुमपर जबरदस्ती तो कर नहीं रहा हूँ, सुरेश।'

'मेरी वह श्रद्धा अब रही नहीं।'

'श्रद्धा न रहने पर मैं तुम्हें दण्ड दूँगा, इसका तो डर है नहीं।'

'तुम्हारा बड़ा से बड़ा शत्रु भी तुम पर कपटता का दोष नहीं लगा सकता।'

'जिस कार्य को शत्रु नहीं कर सकता, मित्र भी उसे न कर सके, दर्शन-शास्त्र की ऐसी आज्ञा तो है नहीं।'

'छिः छिः, आखिर तुम क्या एक ब्राह्म-कन्या के चंगुल में फंस गये! उसमें है क्या! सूखे हुए काठ जैसा चेहरा, किताब रटते-रटते शरीर में रक्त का एक बिन्दु भी नहीं। ज़रासा ठेल देने पर गिर जाने का डर है। कण्ठ का स्वर इतना कठोर कि सुनते घृणा होती है।'

'यह ठीक है ।'

'देखो महिम, अपने गाँव वालों के सामने मखौल करना, जिन्होंने ब्राह्म-कन्या अपनी आंखों कभी देखी नहीं; जो किसी लड़की को अंग्रेजी में पता-ठिकाना लिखते देख या सुनकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं, जो गाँव में उसके पहुँचने पर अदब से दूर खड़े हो जाते हैं । जा भाई, अपने गाँव वालों को आश्चर्य में डाल, जो उसे देवी-देवता समझकर उसके आगे सर झुकायेंगे । लेकिन मेरा घर तो देहात है नहीं—इतनी आसानी से तो मैं ठगा नहीं जा सकता ।'

मैं शपथ करके कहता हूँ सुरेश, तुम शहरवालोंको ठगने के लिये मेरी कोई चाल नहीं । मैं उसे अपने गाँव में ही लेजाकर रखूँगा । इसमें तो तुम्हें कोई आपत्ति नहीं ?'

सुरेश गुस्सा होकर बोलने लगा—'आपत्ति नहीं ? सौ, हजार, लाख, करोड़ आपत्तियाँ हैं । तुम समस्त संसार के श्रेष्ठ और पूजनीय हिन्दू की सन्तान होकर क्या एक स्त्री के मोह में जाति गँवा बैठोगे ? मोह ! एक बार उसकी जूते-मोजे और शौकीन पोशाक उतार कर हमारी गृहलक्ष्मी की लाल साड़ी पहनाकर तो देखो, तुम्हारा मोह दूर होता है या नहीं ? तब इस काठकी पुतली का रूप देखकर तुम्हारा भ्रम दूर होता है कि नही ? उसमें है क्या ? वह क्या कर सकती है ? हाँ, अगर तुम्हें सिलाई और ऊन के काम से ही प्रयोजन हो, तो कलकत्ता शहर में दर्जियोंकी कमी नहीं । चिट्ठी का पता-ठिकाना लिखने के लिये तुम्हें ब्राह्म-कन्या के दरवाज़े पर जाने की ज़रूरत तो पड़ेगी नहीं । बुरे वक्त पर वह क्या तुम्हें मसाला पीसकर, तरकारी बनाकर एक मुट्ठी चावल पका कर देगी ? बीमारी के वक्त क्या वह तुम्हारी सेवा करेगी ? ऐसी शिक्षा क्या उसे दी गयी है ? भगवान ऐसा न करें; लेकिन, विपत्ति के समय अगर वह तुम्हारा साथ छोड़कर न चली जाय तो मुझे सुरेश नाम के बदले किसी और ही नाम से पुकारना, मैं बुरा न मानूंगा ।'

महिम चुप रहा। सुरेश फिर कहने लगा—'महिम, तुम तो जानते हो मैं तुम्हारे लिये कल्याण के सिवा भूल से भी अकल्याण की कामना कर नहीं सकता। मैंने अनेक ब्राह्म-महिलाएँ देखी हैं। दो-एक अच्छी भी देखने को न मिली, सो नहीं; किन्तु हमारे हिन्दू-घरों की कन्याओं के साथ तो उनकी तुलना हो ही नहीं सकती। यदि विवाह की ओर ही तुम्हारी प्रवृत्ति थी, तो मुझसे कहा क्यों नहीं? अच्छा, जो होना था सो हो गया, अब तुम्हें वहाँ जाने की ज़रूरत नहीं। मैं वचन देता हूँ, एक महीने के भीतर मैं तुम्हारे लिये ऐसी कन्या चुनकर दूँगा, कि जीवन में कभी दुख न होगा; यदि मैं ऐसा न कर सका, तो फिर तुम्हारी जो खुशी हो करना—उसके श्रीचरणों में माथा रगड़ना, मैं बाधा न डालूंगा। किन्तु सिर्फ एक मास तक धीरज रखकर बचपन से चली आती हुई मित्रता की मर्यादा तुम्हें रखनी होगी। बोलो, रखोगे न?'

महिम पहले जैसा ही मौन साधे रहा—हाँ, ना, कुछ कहा नहीं। किन्तु, एक मित्र दूसरे मित्रकी शुभकामना के लिये किस प्रकार विकल रहता है, इसे उसने अच्छी तरह अनुभव किया।

सुरेश ने कहा—'याद है, महिम, ब्राह्म न होकर जब तुमने पहले-पहल ब्राह्म-मन्दिर में जाना-आना शुरू किया था, तो मैंने बारबार तुम्हें मना नहीं किया? कलकत्ते जैसे इतने बड़े शहर में तुम्हारे लिये क्या एक भी हिन्दू-मन्दिर नहीं था! इस कपट की कोई जरूरत थी? अन्त में, ऐसी ही एक-न-एक विडम्बना में फँस ही जाओगे, मैं उसी वक्त ऐसा सन्देह कर रहा था।'

इस बार हल्की सी हँसी हँसकर महिम ने कहा—'चाहे तुमने सन्देह किया हो, किन्तु मैं तो ऐसा करता नहीं था कि मेरे जाने-आने में कपट रहे? लेकिन एक बात पूछता हूँ सुरेश, तुम तो अपने भगवान को भी नहीं मानते, फिर हिन्दू देवी-देवताओं को कैसे मानोगे? मैं चाहे

ब्राह्म-मन्दिर में जाऊ या हिन्दू मन्दिर में, इससे तुम्हारा क्या बनता-बिगड़ता है ?'

सुरेश ने कड़ककर कहा—'जो नहीं है उसे मैं मानता नहीं। भगवान नहीं हैं, देवी-देवता झूठा भ्रम है। किन्तु जो है, उसे तो मैं अस्वीकार नहीं करता। समाज के प्रति श्रद्धा रखता हूँ, मानव-जाति की पूजा करता हूँ। मैं जानता हूँ, मानव-जाति की सेवा करना ही मानव-जन्म की परम सार्थकता है। जब हिन्दू-कुलमें जन्म लिया है, तो हिन्दू-समाजकी रक्षा करना भी हमारा कर्तव्य है। मैं आखिर दम तक तुम्हें ब्राह्म-घरमें विवाह करके ब्राह्म दलको मज़बूत बनाने न दूँगा। केदार मुखर्जी की कन्या के साथ शादी करने का वचन क्या तुमने दे दिया है ?'

'नहीं, जिसे वचन कहना चाहिये वह अब तक मैंने नहीं दिया है।'

'दिया नहीं ? अच्छा, तो अब चुपचाप बैठे रहो, मैं इसी महीने में तुम्हारी शादी करा दूंगा।'

'मैं शादी के लिये पागल हो उठा हूँ, यह तुमसे कहा किसने ? तुम भी चुपचाप बैठो, और किसी जगह विवाह करना मेरे लिए असम्भव है।'

'असम्भव क्यों ? क्या किया है तुमने ? क्या इसी स्त्री से तुम्हारा प्रेम है ?'

'आश्चर्य की बात नहीं। किन्तु इस सम्भ्रान्त महिला के बारे में जरा सम्मान के साथ बातें करो, सुरेश।'

'सम्मान के साथ बातें करना मैं जानता हूँ, मुझे सिखाओ मत। क्या मैं इस सम्भ्रान्त महिला की उम्र के बारे में पूछ सकता हूँ ?'

'मैं नहीं जानता।'

'जानते नहीं ? बीस, पचीस, तीस, चालिस या इससे भी अधिक, कुछ नहीं जानते ?'

'नहीं।'

'तुमसे छोटी या बड़ी—यह भी, नहीं जानते ?'

'नहीं।'

'जब कि उसने तुम्हें फन्दे में फँसा लिया है, तब वह बिल्कुल कम उम्र की होगी नहीं। मेरी समझ में अनुमान करना अनुचित नहीं। क्या कहते हो?'

'नहीं, तुम्हारे लिये कुछ भी अनुचित नहीं। किन्तु मुझे इस वक्त एक काम है, सुरेश। एक बार बाहर जाना चाहता हूँ।'

सुरेश ने कहा—'अच्छा तो महिम, मुझे भी अभी कोई काम नहीं—चलो, तुम्हारे साथ ही थोड़ा-सा घूम आऊँ।'

दोनों मित्र बाहर रास्ते पर आ गये। कुछ देर तक चुपचाप चलने के बाद सुरेश ने धीरे से कहा—'तुम्हें जो आज जान-बूझकर मैंने कष्ट पहुँचाया है, उसे समझाकर कहने की तो कोई जरूरत नहीं?'

महिम ने कहा—'नहीं।'

सुरेश ने उसी मृदु स्वर में पूछा—'क्यों पहुँचाया, महिम!'

महिम ने हँसकर कहा—'यदि पहली बात बगैर समझाने पर भी समझ गया होऊँ, तो आशा करता हूँ, तुम्हें इसे भी समझाना न पड़ेगा।'

उसका एक हाथ सुरेश के हाथ में था। सुरेश का हृदय पिघल गया। वह उसके हाथ को जरा-सा दबाते हुए बोला—'नहीं महिम, तुम्हें मैं समझाना नहीं चाहता। संसार में सभी ग़लत समझ सकते हैं, किन्तु तुम मुझे ग़लत नहीं समझोगे। तौभी मैं आज तुम्हारे मुँह पर ही कहता हूँ—तुम्हें मैं जितना प्यार करता हूँ, तुम उसका आधा भी नहीं करते। तुम इसे नहीं मानोगे, किन्तु मै तुम्हारा छोटा-सा कष्ट भी नहीं देख सकता। बचपन में ही इस बात को लेकर कई बार झगड़ा हुआ है, एक बार याद करके देख लो। तब, इतने दिनों के बाद जिसके लिए तुम मेरा भी परित्याग कर रहे हो महिम, उसी को लेकर तुम्हारा जीवन सुखी होगा अगर यह निश्चय जान लेता, तो मैं अपना सारा दुख हँसते-हँसते सह लेता, कभी तुमसे कुछ न कहता।'

महिम ने कहा—'उसके साथ सुखी न रह सकूँ, लेकिन तुम्हारा त्याग कर दूँ, यह तुम कैसे समझ गये ?'

'तुम करो या न करो, मैं तुम्हारा त्याग कर दूँगा ही।'

'क्यों ? मैं तुम्हारा ब्राह्म-मित्र तो बना रह सकता था।'

'नहीं, किसी तरह भी नहीं। ब्राह्मों को मैं फूटी आँख भी नहीं देख सकता। मेरा एक भी ब्राह्म-मित्र नहीं है।'

'उन्हें क्यों नहीं देख सकते ?'

'अनेक कारण हैं। एक तो यह कि, जिन्होंने हमारे समाज को नीच कहकर त्याग दिया है, उन्हें मैं अच्छा कहकर किसी भी तरह अपनी ओर नहीं खींच सकता। तुम तो जानते हो, अपने समाज के प्रति मुझे कितनी ममता है। इस समाज को जिन्होंने देश में, विदेश में, सब जगह नीच कह कर बदनाम किया है, उनकी भली बातें उन्हीं में रहें, वे हमारे दुश्मन हैं।'

महिम मन-ही-मन असहिष्णु हो उठा था, कहा—'अभी तुम क्या करने को कह रहे हो, बोलो !'

सुरेश ने कहा—'वही जो अब तक बार बार कहता आ रहा हूँ।'

'अच्छा एक बार और बोलो !'

'इस युवती के मोह से जिस तरह भी हो तुम्हें अलग होना ही पड़ेगा। कम से कम महीना भर उसे नहीं देख सकोगे।'

'किन्तु, इससे भी यदि मोह दूर न हो ? यदि मोह से बढ़कर और भी कुछ हो ?'

सुरेश ने कुछ देर तक सोचने के बाद कहा—'यह सब मैं कुछ नहीं जानता, महिम। सिर्फ जानता हूँ कि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ; और तुमसे भी अधिक प्यार करता हूँ अपने समाज को। फिर भी एक बार सोचकर देखो, तुम अपने बचपन की वही चेचक की बीमारी और मुंगेर की गंगा

में नाव डूब जाने पर जब दोनों आदमी मर रहे थे तब की बात। भूली हुई कहानी याद करा दी, इसलिये मुझे माफ़ करना, महिम। और मुझे कुछ नहीं कहना है, मैं चला।' यह कहकर सुरेश अकस्मात् पीछे मुड़कर तेज़ी से चला गया।

३

एक ओर सुरेश का शरीर जितना ही शक्तिशाली था, दूसरी ओर उसका हृदय था उतना ही कोमल और उतना ही स्नेहशील। परिचित या अपरिचित किसी की भी कष्ट-कथा सुनकर वह रो पड़ता। बचपन से ही कभी वह एक चींटी तक को न मारता। जैन मारवाड़ियों की देखा-देखी वह कई बार लिफाफा भर कर सूजी और चीनी ले लेता, स्कूल से गैरहाज़िर हो जाता, और वृक्षों के नीचे खोज-खोजकर चींटियों को भोजन कराता। जीवन में उसने कितनी बार मत्स्य-माँस का परित्याग किया और फिर आरम्भ किया इसकी तो कोई गिनती ही नहीं। जिसे वह प्यार करता उसके लिए क्या-क्या करे यह सोच न पाता। स्कूल में महिम अपने क्लास के सभी लड़कों से अच्छा था। इसके अतिरिक्त उसके शरीर का फटा-पुराना पहिनावा, पाँव में जीर्ण-शीर्ण जूते, दुबला-पतला शरीर, मलिन मुख—यह सब देखकर ही वह पहले-पहल उसकी ओर आकृष्ट हुआ था और अल्पकाल में ही उन दोनों का यह आकर्षण जल की बाढ़ की तरह इस वेग से बढ़ा कि वह स्कूल के सब लड़कों की आलोचना का विषय बन गया। महिम को छात्रवृत्ति-परीक्षा में वृत्ति मिली थी। वृत्ति के इन्हीं चार रुपयों का सहारा लेकर वह कलकत्ते पहुँचा और अपने गाँव के एक बनिये की दूकान में डेरा डालकर स्कूल में भर्ती हुआ। उस समय से ही सुरेश इस मित्र को अपने ही घर पर रखने के लिये अनेक तरह से चेष्टा करता रहा, किन्तु

उसे राजी न कर पाता। इसी जगह रह कर महिम ने किसी दिन अधपेट खाकर और किसी दिन भूखे रहकर इन्ट्रेंस पास कर लिया। इसके बाद की घटना का वर्णन पहले परिच्छेद में किया जा चुका है।

एक हफ्ते से सुरेश महिम को न देखकर उस दिन स्वयं उसके डेरे पर जा पहुँचा। आज एक त्योहार के उपलक्ष्य में स्कूल-कालेज बन्द थे। वहाँ उसने सुना कि आज सवेरे से ही महिम कहीं बाहर निकला हुआ है, अब तक लौटा नहीं। वह पटलडाङ्गा में केदार मुखर्जी के घर पर ही छुट्टी का दिन बिताने गया है, इसमें सुरेश को रत्ती भर भी सन्देह नहीं रहा।

इस निलज्ज मित्र ने बचपन से चली आती हुई मित्रता की समस्त मान-मर्यादा को एक स्त्री के मोह में पड़कर तिलांजलि दे दी और सात दिन भी धैर्य न रख सका—चला गया। क्षणमात्र में ही उसके विरुद्ध सुरेश के हृदय में एकाएक विद्वेष की भीषण ज्वाला प्रज्वलित हो उठी। वह थोड़ी देर भी विचार न कर गाड़ी पर आ बैठा और सीधे पटलडाङ्गा की ओर चलने के लिये कोचवान को हुक्म देकर मन ही मन बोलने लगा—'अरे बेहया! अरे कृतघ्न! जिस प्राण को आज तू इस नारी को समर्पित कर अपने को धन्य समझ रहा है, वह प्राण तेरा होता कहाँ? अपने प्राण को तुच्छ समझकर दो-दो बार तुझे मृत्यु के मुख से किसने बचाया? उस उपकार का तू इतना भी सम्मान न रख सका?'

केदार मुखर्जी के घर की गली मात्र का पता सुरेश को था, एक-दो बार पूछ-ताछ करने के बाद गाड़ी ठीक स्थान पर पहुँची। उतर कर वह दरवान से पूछकर सीधे ऊपर बैठक में चला गया। नीचे फर्श पर एक सम्भ्रान्त वृद्ध तकिये के बल लेटा हुआ अखबार पढ़ रहा था। उसने शिर उठाकर देखा, सुरेश ने नमस्कार करके अपना परिचय दिया—'मेरा नाम श्री सुरेशचन्द्र वन्द्योपाध्याय है—मैं महिम का बाल-सखा हूँ।'

बूढ़े ने प्रति-नमस्कार कर चश्मा उतारते हुए कहा—'बैठिये।'

सुरेश ने आसन ग्रहण करने के बाद कहा—'महिम के घर जाने पर मालूम हुआ कि वह यहीं है; इसीलिये इच्छा हुई कि इसी सुयोग में श्रीमान् से भी एक बार परिचित हो जाऊँ।'

वृद्ध महाशय बोले—'मेरा अहोभाग्य—आप यहाँ पधारे! किन्तु, महिम यहाँ भी दस-बारह दिन से दिखायी नहीं पड़े। मैं आज सवेरे से यह सोच रहा था, क्या जाने, वे कैसे हैं?'

सुरेश ने मन ही मन कुछ आश्चर्यान्वित होकर कहा—'किन्तु, उसके साथ रहनेवालों ने जो कहा है—'

वृद्ध महाशय ने कहा—'मालूम होता है कहीं और जगह गये हों। कुछ भी हो, सकुशल हैं, यह जानकर निश्चिन्त हुआ।'

रास्ते में सुरेश ने मन ही मन जितनी कड़ी बातें सोच रखी थी, उन्हें वह वृद्ध महाशय के सामने न कह सका। उनके शान्त मुख से निकले धीर एवं मृदु शब्द-समूह ने उसके आन्तरिक उत्ताप को बहुत अंशो में शीतल कर दिया। फिर भी वह अपना कर्त्तव्य भूला नहीं। वह मन ही मन यह कहकर अपने को उत्तेजित करने लगा कि—ये चाहे जितने भी अच्छे हों, हैं ब्राह्म ही! स्वभावतः इनके सारे शिष्टाचार बनावटी होते हैं। ये इसी तरह भोले-भालों को फँसाकर अपना काम बना लेते हैं। इसलिये इन शिकारी जीवों के नज़दीक अपने-आपको भूलकर अपना काम बिगाड़ना ठीक नहीं; जिस तरह भी होगा इनके चंगुल से मित्र को अवश्य बचाऊँगा। उसने अपने काम की बातें शुरू करते हुए कहा—'महिम मेरा बचपन का मित्र है। इस तरह का मित्र मेरा और कोई नहीं। यदि आपकी आज्ञा हो, तो उसके सम्बन्ध में आपके साथ दो-एक बात करूँ।'

वृद्ध महाशय ने कुछ हँसकर कहा—'बड़ी खुशी से कर सकते हैं। आपका नाम मैं उसके मुख से सुन चुका हूँ।'

सुरेश ने कहा—'महिम के साथ आपकी कन्या के विवाह की बात पक्की हो चुकी है ?'

वृद्ध महाशय ने कहा—'हाँ, वह एक तरह से पक्की हो चुकी है।'

सुरेश ने कहा—'किन्तु महिम तो आपका ब्रह्मसमाजी नहीं है। फिर भी आप उसके साथ शादी कर देंगे ?'

वृद्ध महाशय चुप रह गये। सुरेश कहता गया—'अच्छा, उस बात को अभी छोड़िये। किन्तु, उसकी आर्थिक स्थिति क्या है, स्त्री पुत्र के पालन की शक्ति उसमें है कि नहीं, उसके गाँव में विरोधी हिन्दू समाज के बीच टूटे-फूटे मिट्टी के घर में आपकी कन्या रह सकती है कि नहीं, अगर न रहना चाहें तो महिम कौन उपाय करेगा, इन सारी बातों पर आपने विचार करके देख लिया है क्या ?'

वृद्ध केदार मुखर्जी एक बारगी सीधे होकर उठ बैठे और बोले—'क्या कहा आपने, ये सब बातें तो मैंने कभी सुनी नहीं। महिम ने भी कभी नहीं बतायीं।'

सुरेश ने कहा—'किन्तु मैंने इन सारी बातों पर विचार करके देखा है और महिम से कह भी दिया है। आज मैं इन समस्त अप्रिय प्रसंगों को उपस्थित करने के लिये ही आपके सामने उपस्थित हुआ हूँ। अपनी कन्या के बारे में आप खुद सोचेंगे; किन्तु मेरा प्रिय मित्र जो इस असह्य भार को अपने कंधों पर लेकर हमेशा के लिये जीवन-मृत हो जाय, यह मैं किसी भी तरह होने न दूँगा।'

केदार बाबू का मुँह सूख गया, उन्होंने कहा—'आप क्या कहते हैं, सुरेश बाबू ?'

'पिताजी !'—सतरह-अठारह साल की एक तरुणी अचानक अंदर से निकली और अपने पिता के निकट एक अपरिचित युवक को देखकर ठिठक कर खड़ी हो गयी।

'कौन, अचला ? आ बेटी, बैठ जा। लज्जा क्या है बेटी; ये हमारे महिम के परम मित्र हैं।'

वह तरुणी कुछ आगे बढ़ी और हाथ जोड़ कर उसने सुरेश को नमस्कार किया। सुरेश ने देखा—उस तरुणी का उज्ज्वल श्याम वर्ण शरीर, छरहरा पतला गठन, कपोल, चिबुक, ललाट—समस्त मुख की बनावट अत्यन्त सुन्दर एव सुकुमार। नेत्र-युगल में स्थिर बुद्धि की आभा झलकती थी। नमस्कार के बाद वह नज़दीक ही आ बैठी। उसके मुख की ओर देखकर सुरेश की आँखें मुग्ध हो गयीं। उसके पिता बोल उठे—'महिम की बातें सुनी हैं बेटी ? हम इसी सोच में मरे जा रहे थे कि वह आता क्यों नहीं ? यह सुन लो ! ये परम मित्र के नाते ही तो कष्ट करके यहाँ बताने आये हैं; अगर ये न आते तो क्या होता, कहो तो ? कौन जानता कि वह इस तरह का विश्वासघाती, इस तरह का मिथ्यावादी है। गाँव में उसके सिर्फ टूटा-फूटा एक मिट्टी का घर है। तुम्हें वह खिलायगा क्या—उसे अपने लिये भी रूखा-सूखा खाने और मोटा पहनने का कोई साधन नहीं। उफ़् ! कितना भयानक ! ऐसे आदमी के मन में भी इतना ज़हर था, ऐं !'

यह बात सुनकर अचला का मुख सूख गया, किन्तु साथ ही साथ सुरेश का मुख भी कुछ काला पड़ गया। वह काठ के पुतले की तरह अवाक् होकर उस तरुणी की ओर देखता बैठा रहा।

४

सुरेश को एक बार अनुभव हुआ, कि उसके कटु सत्य ने अचला के हृदय को गहरी चोट पहुँचाई है। किन्तु उसके पिता ने उस तरफ दृष्टिपात भी न किया। बल्कि कन्या की ओर इशारा करके बोलने लगे—'सुरेश बाबू, आप सच्चे मित्र का कर्तव्य पालन करने आये हैं, इसमें अविश्वास करने का कोई कारण नहीं। चाहे यह अप्रिय क्यों न हो, कठोर क्यों न हो, लेकिन फिर भी इसे ही वास्तविक प्रेम

कहते हैं। माता जब अपने रुग्ण शिशु को अन्न से वञ्चित करती है, क्या उसे कठोर नहीं मालूम होता ? लेकिन फिर भी यह काम तो उसे करना ही पड़ता है ! सच कहता हूँ, सुरेश बाबू ! महिम हमारे साथ इस तरह का अन्याय कर सकेंगे, ऐसा मैं स्वप्न में भी न सोचता था। दो साल पहले समाज में उनकी बातचीत और व्यवहार से मुग्ध होकर मैंने स्वयं उन्हें अपने घर पर आदर पूर्वक बुलाकर अचला के साथ परिचय कराया, सो क्या उसका बदला उन्होंने मुझसे इस तरह चुकाया ! उफ—इतनी बड़ी धूर्तता मैंने जीवन में नहीं देखी।'—यह कह कर केदार बाबू हार्दिक आवेग से घर के अन्दर ही टहलने लगे। सुरेश और अचला दोनों ही नीरव एवं शिर झुकाए बैठे रहे। केदार बाबू एकाएक खड़े होकर अपनी कन्या को लक्ष्य करके बोल उठे—'नहीं बेटी अचला, यह नहीं हो सकता। किसी भी तरह नहीं। सुरेश बाबू, आप जिस तरह सबसे ऊपर कर्तव्य को रखकर मित्र का काम करने आये हैं, मैं भी उसी कर्तव्य को अपने सामने रखकर पिता का कर्तव्य पालन करूँगा। अचला के साथ महिम का सम्बन्ध जिस हद तक बढ़ चुका है, इसका ख्याल कर बिना सबूत के अपने घर का दरवाजा उसके लिये बन्द कर देना ठीक न होगा। इसलिये एक सबूत चाहता हूँ। आप बुरा न मानें, सुरेश बाबू कि आप की बात पर मैं विश्वास कर नहीं सका; किन्तु यह भी मेरा कर्तव्य है। क्यों बेटी अचला ! एक सबूत लेना हमारे लिए उचित है कि नहीं ?'

दोनों उसी तरह चुप बैठे रहे, उचित-अनुचित कोई मन्तव्य किसी ने प्रकट किया नहीं। केदार बाबू कुछ देर प्रतीक्षा करके फिर बोले—'किन्तु इस सबूत का भार आप ही के ऊपर रहा, सुरेश बाबू ! महिम की आर्थिक स्थिति का जानना तो दूर रहा, किस गाँव में उसका घर है मैं यह भी नहीं जानता।'

दरवान ने आकर बताया—'नीचे विकाश बाबू इन्तज़ार कर रहे हैं।'

खबर सुनकर केदार बाबू घबड़ा गए। कहा—'आज तो उनके आने की बात थी नहीं। अच्छा, कह दो, मैं आ रहा हूँ।' फिरकर बोले—'सुरेश बाबू पाँच मिनट के लिये मुझे माफ करेंगे—उस आदमी को बिदा करके आता हूँ। जब आ पहुँचा है तो बिना भेंट किये हटेगा भी नहीं। बेटी अचला, सुरेश बाबू को अपना परम मित्र समझो। जो कुछ तुम्हें जानना हो, इनसे पूछ लो—मैं अभी आ रहा हूँ।' यह कहकर नीचे उतर गये।

पल भर दृष्टि-विनिमय कर दोनों ने शिर नीचे कर लिया। सुरेश कुछ देर तक चुप रह कर धीरे-धीरे बोला—'हम दोनों बचपन के मित्र हैं। किन्तु, उसके व्यवहार से आपके निकट मेरा शिर शर्म से झुका जा रहा है।'

अचला मृदु स्वर में बोली—'इसके लिये आपको शर्मिन्दा होने की ज़रूरत नहीं।'

सुरेश ने कहा—'आप क्या कहती हैं! उसके इस कपट आचरण, इस पाखण्ड व्यवहार के लिये यदि मित्र होकर मैं शर्म न करूँ, तो दूसरा कौन करेगा, कहिये? किन्तु जब वह मुझ से इस बात को सरासर छिपा गया तभी मुझे समझ लेना था दाल में कुछ काला ज़रूर है।'

अचला ने कहा—'हम ब्राह्म-समाजी हैं। किन्तु, आप इस समाज के किसी व्यक्ति के संसर्ग में रहना चाहते नहीं, इसलिये मैं समझती हूँ, उन्होंने हमारा उल्लेख आपके निकट नहीं किया।'

यह बात सुरेश को अच्छी न लगी। अचला उसी के सामने महिम को दोष-मुक्त करने की कोशिश करेगी, ऐसा उसने सोचा न था। रूखे स्वर में पूछा—'आशा करता हूँ यह बात आपने महिम से सुनी होगी।'

अचला ने शिर झुकाकर कहा—'हाँ, उन्होंने ही एक दिन कहा था।'

सुरेश ने कहा—'देखता हूँ मेरे अवगुण की बात बताना वह भूला नहीं।'

अचला उदास सी थोड़ा हँसकर बोली—'इसमें अवगुण की बात क्या है! सब की प्रवृत्ति एक सी नहीं होती। जिन्होंने आपके समाज से नाता तोड़ लिया है, यदि आप उन्हें अच्छा न समझें, तो इसके लिये मैं आपको दोषी नहीं समझ सकती।'

यह उत्तर यद्यपि सुरेश के मनोनुकूल था तथा और किसी जगह इस उत्तर के सुनने पर वह खुशी से उछल उठा होता, किन्तु इस सयत-वादिनी तरुणी ब्राह्म-महिला के मुख से ब्राह्मसमाज के प्रति अपनी नितान्त वितृष्णा की बात सुनकर भी उसको कुछ खुशी न हुई। यथार्थ में इस साम्प्रदायिक मीमांसा के लिये उसने यह बात कही न थी। बल्कि प्रत्युत्तर में अपने सम्बन्ध मे यह भी जानना चाहता था कि महिम के मुख से उसके किसी सद्‌गुण का वर्णन भी अचला के कर्णगोचर हुआ कि नहीं, किन्तु अचला उसके इस गुप्त इरादे का शायद अन्दाज़ न लगा सकी। इसलिये सवाल का सीधा जवाब देकर चुप रह गयी।

सुरेश ने क्षुब्ध होकर कहा—'आप लोगों के प्रति मेरा सामाजिक विद्वेष है या नहीं, यह आलोचना महिम करता रहे; किन्तु उसके प्रति मेरा लेशमात्र भी विद्वेष नहीं, यह मेरे मुख से सुनकर भी आप अविश्वास न करेंगी। तिसपर मैं उसकी आर्थिक स्थिति की आलोचना करने यहाँ न आता, अगर उसने मुझसे सच्ची बातें छिपायी न होतीं।'

अचला सुरेश के चेहरे पर नज़र गड़ाकर अविचलित स्वर में बोली—'किन्तु, वे तो कभी झूठ बोलते नहीं।'

इस बार सुरेश दरअसल हैरत में आ गया। स्त्री जाति के मुख से भी इस प्रकार का शांत एवं दृढ़ प्रतिवाद निकल सकता है, कुछ देर तक तो वह समझ भी न सका। किन्तु यह बात सिर्फ पल भर के लिये थी। जीवन में उसने संयम की शिक्षा पायी न थी। दूसरे

ही क्षण अपने को भूल कर रूखे स्वर में बोल उठा—'मुझे क्षमा कीजियेगा, किन्तु वह मेरा बाल-सखा है। आप से कम मैं उसे नहीं जानता। यहाँ अपने को आवद्ध कर साफ मुकर जाने को मैं सत्यवादिता नहीं कह सकता।'

अचला उसी तरह शांत एवं मृदु स्वर में बोली—'उन्होंने अपने को आवद्ध तो नहीं किया है।'

सुरेश ने कहा—'आपके पिता जी ने तो ऐसा ही कहा है। फिर अपनी दीन स्थिति को आपसे छिपाना भी सत्यप्रियता नहीं कहा जा सकता। स्त्री-पुत्र के प्रतिपालन करने की असमथता चाहे वह दूसरे से न कहे, लेकिन आपके निकट तो सब कुछ साफ साफ बता देना उसके लिये उचित था।'

अचला नीरव रही। सुरेश कहने लगा—'आप जो इस तरह उसके दोष को ढक रही हैं, आप ही बतायें अगर आप ये सारी बातें पहले से ही जानती होतीं, तो उसे इतनी अधिक मात्रा में प्रोत्साहन दे कतीं?'

अचला उसी तरह नीरव बैठी रही। उससे किसी तरह का जवाब न पाकर सुरेश अधिक उत्तेजित होकर कहने लगा—'मेरे नज़दीक उसने अपने मुँह से स्वीकार किया है कि, इस कलकत्ता शहर में आपका भरण-पोषण करने की न उसमें सामर्थ्य है, और न संकल्प ही। वह जो उस छोटे से संकीर्ण गाँव में एक अत्यन्त विरोधी हिन्दू समाज के बीच आपको एक टूटे-फूटे मिट्टी के घर में ले जाना चाहता है यह बात आपको बता देना क्या उसका कर्तव्य नहीं है! इतनी तकलीफ आप सहने को तैयार हैं कि नहीं, यह जानना क्या वह उचित नहीं समझता!' यह कह उत्तर के लिए शिर उठाकर देखा—अचला चिन्तित हो नीची निगाह किये स्थिर भाव से बैठी हुई है। जवाब न पाकर भी सुरेश समझ गया, उसकी बातों का असर हो चुका है। उसने कहा—'देखिये आपके निकट मैं अभी सच्ची बातें ही बताऊँगा। आज मैं सिर्फ

अपने मित्र को बचाने के इरादे से ही यहाँ आया था, जिससे कि वह विपत्ति में न पड़े, यही था मेरा एकमात्र उद्देश्य। किन्तु अब देख रहा हूँ, उसे बचाने की अपेक्षा आपको बचाना कहीं बड़ा कर्तव्य है। कारण यह कि, अपनी विपत्ति उसने अपने आप मोल ली है, किन्तु आप तो अनजाने कुएँ में गिरने जा रही हैं। आपके पिता जी ने जब मुझ पर ही सबूत का जिम्मा छोड़ा, तो मैंने सोचा—मित्र के विरुद्ध मैं यह भार ग्रहण नहीं कर सकता, लेकिन अब देख रहा हूँ, यह काम मुझे करना ही होगा, न करने से अन्याय होगा।'

अचला ने कहा—'किन्तु, वे क्या सुनकर दुखी न होंगे?'

सुरेश ने कहा—'कोई चारा नहीं। जिस शख्स ने पाखण्डी की तरह आपके साथ इतनी बड़ी धूर्तता की है, मित्र होकर भी मैं उसके सुख-दुख की चिन्ता करना आवश्यक नहीं समझता। किन्तु आफत यह है कि मैं उसके गाँव का नाम तक भी नहीं जानता। किसी तरह आज यदि इतना भी पता चल जाय, तो कल सबेरे ही मैं स्वयं वहाँ जा पहुँचूँ और सब सबूत ला कर आपके पिताजी के सामने रखकर मित्र के पाप का प्रायश्चित्त करूँ।'

अचला ने कहा—'किन्तु आप क्यों इतना कष्ट करेंगे? पिताजी से कहिये न, वे अपने किसी विश्वस्त व्यक्ति को भेज कर सारी बातें जान लें। चौबीस परगना का राजपुर गाँव तो अधिक दूर नहीं है।'

सुरेश आश्चर्यान्वित होकर बोला—'राजपुर! देखता हूँ, गाँव का नाम तो आप जानती हैं। और भी कुछ पता है!'

अचला ने सहज भाव से कहा—'आपने जो कहा, मैं भी उतना ही जानती हूँ। राजपुर के उत्तरपाड़ा मुहल्ले में एक मिट्टी का मकान है। अन्दर तीन कमरे, बाहर चंडीमंडप—वहीं गाँव की पाठशाला लगती है।'

सुरेश ने पूछा—'महिम की आर्थिक स्थिति?'

अचला ने कहा—'उस सम्बन्ध में आपने जो कहा, वही। कुछ थोड़ी-सी जायदाद है, उससे किसी तरह दुख-सुख से अन्न-वस्त्रमात्र मिल जाता है।'

सुरेश ने कहा—'देखता हूँ, आप तो उसके बारे में सब कुछ जानती हैं।'

अचला ने कहा—'इतना ही जानती हूँ, क्योंकि, इतना ही मैंने उनसे एक दिन पूछा था। और आप तो जानते ही हैं, वे कभी झूठ नहीं बोलते।'

सुरेश का सारा मुख काला पड़ गया। वह बोला—'जब आप सब कुछ जानती ही हैं, तो आपको सतर्क करने के लिये मेरा आना बिल्कुल बेकार हुआ। देखता हूँ, आपको वह ठगना नहीं चाहता।'

अचला ने कहा—'मैं कुछ-कुछ जानती हूँ, लेकिन आप तो मुझे बताने आये नहीं; आप जिसे बताने आये थे, वे तो अब भी नहीं जानते। अगर आप कहें, तो जितना मैं जानती हूँ, पिताजी को बता सकती हूँ।'

सुरेश ने उदास होकर कहा—'आपकी इच्छा। किन्तु, मुझे जाकर महिम को सारी बातें बताकर उससे माफी मांगनी पड़ेगी तभी मैं आराम की सांस ले सकूँगा।'

अचला ने पूछा—'इसकी क्या कोई ज़रूरत है?'

सुरेश फिर उत्तेजित हो उठा—कहने लगा—'ज़रूरत नहीं? न जाने उस पर आज जो मैंने इतना झूठा दोषारोपण किया है—यह मेरा कितना बड़ा अपराध है, आप क्या मन ही मन इसे नहीं समझ रही हैं! उसे जुआचोर, मिथ्यावादी कुछ कहने से उठा न रखा;—ये सारी बातें उसके आगे स्वीकार किये बिना मैं किस तरह छुटकारा पाऊँगा!'

अचला कुछ देर चुप रह धीरे-धीरे बोली—'किन्तु मैं कहती हूँ, इन सारी बातों की कोई ज़रूरत नहीं, सुरेश बाबू! मानसिक क्षमा-याचना से प्रकाश्य क्षमा-याचना प्रत्येक समय श्रेष्ठ है—यह मैं

नहीं मानती। जब वे सुनकर ही दुखी होंगे, तो फिर उन्हें सुनाने की ज़रूरत ही क्या है! बल्कि मैं पिताजी को भी मना कर दूँगी, जिससे वे आपकी बातें उनसे न कहें।'

सुरेश ने कहा—'अच्छा!' उसके बाद अचला के मुख की ओर कुछ देर तक चुपचाप देख फिर बोला—'मैं एक बात बराबर लक्ष्य कर रहा हूँ कि, महिम किसी तरह भी दुखी न हो, यही आपकी एकमात्र चेष्टा है। अच्छा यही सही, मैं उससे कोई बात न कहूँगा। आज उसके सम्बन्ध में मेरे मन में जितनी बातें उठ रही हैं, उन्हें भी नहीं कहना चाहता, किन्तु आपको एक बात बिना बताए बिदा भी नहीं होना चाहता।'

अचला स्नेह-पूर्ण दोनों नेत्र ऊपर कर बोली—'अच्छा, बताइये।'

सुरेश ने कहा—'उसके निकट क्षमा-प्रार्थी न हो सका, किन्तु आपके निकट चाहता हूँ, मुझे क्षमा कीजिये।' यह कहकर उसने दोनों हाथ जोड़ लिये।

'छिः छिः, यह क्या कर रहे हैं!'—इतना कहकर अचला निमिष मात्र में उसके दोनों हाथ पकड़ कर और उसी क्षण छोड़ कर बोली—'यह कितना बड़ा अन्याय है, कहिये तो!' यह कहते-कहते उसका मुख-मंडल लज्जा से लाल हो उठा।

सुरेश का सर्वांग रोमांचित हो गया। इस आश्चर्य स्पर्श, लज्जा-ललित मुख की मनोहर लाली-युक्त आभा ने एक पल में उसे बिल्कुल बेबस कर दिया। वह अचला के अवनत मुख की ओर कुछ देर तक स्तब्ध-भाव से देखता रहा और बाद में धीरे-धीरे बोला—'नहीं, मैं कोई अन्याय नहीं करता। बल्कि, मेरे सहस्र-कोटि अन्यायों के बीच यदि कोई ठीक काम हुआ है तो यही। आपके क्षमा कर देने पर ही मेरे हृदय का सारा क्षोभ धुलकर दूर हो जायगा।'

अचला ने कातर होकर कहा—'आप ऐसी बात बिल्कुल न कहें जिनको दो-दो बार आपने मौत के मुँह से निकाला है—'

'यह भी आपने सुना !'

'सुना है। आपके सदृश मित्र उनका और है कौन ?"

'नहीं, मालूम होता है, आपको छोड़कर और कोई नहीं। और इस सम्बन्ध में हम दोनों जने—'

अचला के मुख पर फिर एक लाली दौड़ गई। उसने कहा—'हाँ, मित्र। आपने उन्हें मृत्यु के मुँह से लौटाया है। इसीलिये उनके सम्बन्ध में आपका कोई भी काम मैं अन्याय नहीं मान सकती। मन में किसी तरह का क्षोभ, या लज्जा आप न रखें—क्षमा शब्द के उच्चारण से यदि आप सन्तुष्ट होंगे, तो मैं वह भी बोलने को तैयार हूँ, अगर मेरे मुख से वह निकल सकता।'

'अच्छा, ज़रूरत नहीं।'—यह कहकर सुरेश उठ खड़ा हुआ और बोला—'आपके पिताजा तो अभी तक नहीं लौटे। शायद उनको फ़ुरसत नहीं मिली। महिम के साथ हो सकेगा तो किसी दिन फिर आऊँगा। नमस्कार !'

अचला जरा हँसकर बोली—'नमस्कार ! किन्तु उनके साथ ही आ सकेंगे, इसका तो कोई मतलब नहीं।'

'सच कह रही हैं ?'

'सच कह रही हूँ।'

'मेरा परम सौभाग्य।'—कहकर सुरेश और एक बार नमस्कार कर चलता बना।

६

बाहर आने पर नशैलचो के समान सुरेश का सारा बदन झूमने लगा। आकाश की कड़ी धूप उस वक्त मन्द हो चली थी; गाड़ी लौटा कर वह अकेले ही पैदल चल पड़ा; उसकी इच्छा हुई कलकत्ते के जनाकीर्ण कोलाहलमय राजपथ के मध्य अपने को पूर्ण रूप निमग्न कर एक बार अपनी अवस्था पर विचार कर ले।

अचला के मुख, अवयव, भाषा, व्यवहार, सब कुछ शुरू से लेकर आखिर तक बारम्बार याद करके अपनेको वह छोटा समझने लगा।

उसके मुख में अलौकिक सौन्दर्य न था; वार्तालाप, व्यवहार, ज्ञान, विद्याबुद्धि की उत्कृष्टता लेशमात्र भी प्रगट नहीं हुई फिर भी उसके मन में केवल यही बात उठने लगी कि इस प्रकार की विस्मयजनक वस्तु उसने एक मात्र यही देखी है जो अब तक उसकी नज़र में और कहीं पड़ी ही नहीं, रास्ते पर चलते-चलते प्रतिक्षण अपने तईं यही प्रश्न करने लगा—'यह विस्मय किस लिये! इस तरह आज मैं क्यों दुर्बल हो गया हूँ?'

इस तरुणी में उसने इस प्रकार की एक वस्तु देखी, जिससे अपने को तल्लीन करके भी उसका सारा हृदय एक अपरिज्ञात सार्थकता से भर गया था! इस बालिका का सच्चा परिचय अभी तक उसे प्राप्त न हुआ था, यह ठीक है, किन्तु वह बड़ी है, बहुत बड़ी है उसे प्राप्त करना किसी भी पुरुष के लिये दुर्भाग्य नहीं, यह संशय एक बार भी उसके मन में क्यों नहीं उठता! इस तरह सोचते-सोचते अचानक उसकी विचार-धारा ठीक जगह पर चोट कर बैठी। उसके मन में आया, यह बालिका शिक्षा, ज्ञान, उम्र सब तरह से उसकी अपेक्षा छोटी होकर भी थोड़ी-सी देर बातचीत करके ही उसने उसे इस तरह पराजित कर दिया यह उसके असाधारण संयम का ही बल है। वह इतनी शांत होकर भी कितनी दृढ़, इतनी जानकार होकर भी कैसी अनजान बनती है। जब वह बावला होकर महिम के बारे में इतना बक गया तब यह बालिका शिर झुकाये सुनती रही, सहती रही, किन्तु क्षणमात्र के लिये भी चञ्चल होकर, वाद-विवाद छेड़कर, कलह करके अपने को उसने छोटा नहीं होने दिया। हमेशा अपने काबू में रही, छिपाती रही, यद्यपि वह सब कुछ जानती थी। महिम को वह कितना प्यार करती है, उसे उसने जानने न दिया, किन्तु उसकी अविचल श्रद्धा में लेशमात्र भी कमी नहीं हुई है यह बात उसने कितने सहज भाव से संक्षेप में जता दी।

यह विद्या उसने महिम से सीखी है और अच्छी तरह सीखी है, यह बात बार बार वह अपने तईं बोलने लगा; तथा अपने में बचपन से ही इस गुण की अत्यन्त अल्पता अनुभव करके, और इसी गुण को दूसरे व्यक्ति में प्रचुर परिमाण में पाकर उसका शिक्षित एवं उच्च अन्तःकरण स्वयम इस गौरवमयी ललना के चरणों में झुक कर अपने को धन्य समझने लगा।

अनेक रास्ते और गलियों से चक्कर लगाता हुआ सुरेश थक कर अपने घर को लौटा। बैठक खाने में घुसते ही आश्चर्य चकित होकर देखा। महिम आँखों पर हाथ रखे एक कोचपर पड़ा हुआ था, उठ बैठा और कहा—'आओ सुरेश।'

'अच्छा तुम!'—कहकर सुरेश नजदीक आकर धीरे से एक कुर्सी खींच कर बैठ गया।

महिम कभी कभी आया करता था। इसलिये जब कभी वह आता तब सुरेश उसकी बड़ी आवभगत करता। किन्तु आज उसके मुख से कोई बात न निकली। महिम ने मन ही मन विस्मित होकर कहा—'लौट कर सुना तुम मेरे यहाँ गये थे। इसलिये सोचा कि ज़रा—'

'कृपाकर एक बार चेहरा दिखा आऊँ! अरे भाई कितने दिन बाद आये, इसका भी ख्याल है!'

महिम ने हँसकर कहा—'है पर समय मिलता नहीं।' यह कह उसने गौर किया—गैस की रोशनी में सुरेश का चेहरा अत्यन्त मलिन एवं कठोर दिख रहा था। उसे खुश करने की इच्छा से प्रेमपूर्ण स्वर में बोला—'तुम चाहे बुरा मानो मैं हजार बार यह स्वीकार करता हूँ, सुरेश, सचमुच समय नहीं मिलता। आजकल पढ़ाई भी सिर पर है, और उसके अलावा सुबह-शाम दो एक ट्यूशन—'

'फिर ट्यूशन लिये हो?'

महिम ने इसका ठीक जवाब टालते हुए पूछा—'मुझे ढूँढ़ रहे थे, कोई खास ज़रूरत थी क्या ?'

सुरेश ने कहा—'हाँ। तुम अगर आज न आते तो मुझे कल सबेरे फिर जाना पड़ता।'

महिम कारण जानने के लिये उत्सुकता से देखता रहा। सुरेश मिन्टों तक चुपचाने bअप जूते की ओर देखने के बाद बोला—'तुम शायद इस बीच केदार बाबू के घर नहीं गये ?'

महिम ने कहा—'नहीं'।

'क्यों नहीं जाते, मेरे ही सबब ? अच्छा मैंने उस प्रतिज्ञा से तुम्हें मुक्त कर दिया। तुम्हारी जब खुशी हो तभी वहाँ जा सकते हो।'

महिम ने हँस कर कहा—'जाऊँगा नहीं, इस तरह की प्रतिज्ञा मैंने की थी याद नहीं।'

सुरेश बोला—'नहीं की थी तो अच्छा ही हुआ, फिर भी मेरी ओर से यदि कोई बाधा हो तो मैंने उसे हटा ली।'

'यह कृपा है या बन्धन सुरेश ?'

'तुम्हारा क्या ख्याल है महिम ?'

'जो हमेशा रहा वही।'

सुरेश ने कहा—'इसका मतलब यही कि मैं सनकी हूँ। यही न ? अच्छा यही सही, तुम्हारा जैसा भी ख्याल हो, मुझे कोई एतराज़ नहीं। सिर्फ जो रोक मैंने लगाई थी उसे आज हटा लिया।'

'किन्तु इसका कारण मैं पूछ सकता हूँ ?'

'सनक का भी कोई सबब होता है जो तुम्हारे पूछने पर मुझे बताना ही पड़ेगा।'

महिम कुछ देर चुप रहने के बाद गम्भीर होकर बोला—'किन्तु सुरेश, तुम्हारे सोचने से ही सारे संसार में बाधा आती और हट जाती तब तो अच्छा ही होता किन्तु, वास्तव में ऐसा होता नहीं। जहाँ तुम्हारे लिए बाधा नहीं, वहाँ मेरे लिये बाधा हो सकती है।'

'इसका मतलब ?'

'इसका मतलब यही कि, तुमने उस दिन ब्राह्म-महिला के बारे में जितनी बातें कही थीं, उन्हें सोचकर मैंने देखा है। अच्छी बात, उस दिन तुमने कहा था, एक महीने के भीतर ही मेरे लिये एक कन्या ढूँढ़ दोगे उसका क्या हुआ ?'

सुरेश ने शिर उठा कर देखा—महिम गम्भीरता की ओट में तीव्र परिहास कर रहा है। उसने भी गम्भीर होकर जवाब दिया—'मैंने सोच कर देखा कि घटकैती करना मेरा पेशा नहीं।' फिर हँसकर कहा—'पर मज़ाक रहने दो। तुमने इतने दिन तक मेरी बात रख ली इस लिये तुम्हें सहस्र धन्यवाद। किन्तु आज जब मेरी अनुमति पा गये तो कल सबेरे एक बार वहाँ जा रहे हो न ?'

'नहीं, कल सबेरे मैं घर जा रहा हूँ।'

'कब लौटोगे ?'

'दस-पन्द्रह दिन लगें या महीने भर भी।'

'महीने भर ! न महिम ऐसा मत करो।' कहकर अचानक सुरेश ने झुककर महिम का दाहिना साथ अपने हाथ में खींच कर कहा—'मेरा अपराध और मत बढ़ाओ, महिम; कल सबेरे ही एक बार जाना। वे तुम्हारी बाट जोहती होंगी।' इतना कहते ही उसका स्वर काँप उठा।

महिम के विस्मय की सीमा न रही। सुरेश के आकस्मिक स्वरकम्प, सविनय अनुरोध, विशेषकर ब्राह्म महिला के सम्बन्ध में सम्मानपूर्वक उल्लेख से महिम विह्वल-सा हो उठा। कुछ देर तक मित्र के मुख की ओर एकटक देख उसने पूछा—'कौन मेरा बाट जोह रही है, सुरेश ? केदार बाबू की कन्या ?'

सुरेश सहसा अपने को सम्हालकर बोला—'जोह तो सकती है न ?'

महिम कुछ देर तक फिर सुरेश के मुँह की ओर देखता रहा। वह इस बीच में ब्राह्म घर में बिना बुलाये जा कर परिचय कर ले सकता

है ऐसी सम्भावना तो उसके दिल में किसी तरह भी न उठी। कुछ देर तक चुप रहकर बोला—'न सुरेश, मैं हार गया—तुम्हारी आज की हरकत वाकई मेरी अक्ल में नहीं आती। ब्राह्मकन्या रास्ता देख रही है, यह तुम्हारी बात से समझना मेरे लिये असंभव है।'

सुरेश ने कहा—'अच्छा, यह बात किसी दिन समझा दूँगा। बताओ कल सवेरे ही एक बार मुलाकात करोगे?'

'नहीं, कल असम्भव है। मुझे सुबह की गाड़ी से जाना पड़ेगा।'

'चद मिनट के लिये भी नहीं?'

'नहीं, यह भी न हो सकेगा। किन्तु तुम्हें क्या हो गया है कहो तो?'

'सो किसी और दिन बताऊँगा--आज नहीं। अच्छा, मैं स्वयं जाकर तुम्हारी बात उससे बता सकता हूँ?'

महिम और भी ताज्जुब में आकर बोला—'बता सकते हो, लेकिन इसकी कोई ज़रूरत तो नहीं है।'

सुरेश ने कहा—'ज़रूरत न सही—ज़रूरत ही सब कुछ नहीं है। परिचय देने पर मुझे वे पहचान सकेंगे?'

'एक आदमी ज़रूर पहचानेगा।'

सुरेश बोला—'यही काफी है, तुम्हारे मित्र कहने पर तो पहचानेंगे।'

महिम बोला—'हाँ'।

सुरेश इस बार कुछ हँसने की चेष्टा करके बोला—'और पहचानेंगे—तुम्हारे एक घोर ब्राह्म-विरोधी हिन्दू मित्र के रूप में? क्यों?'

महिम ने कहा—'किन्तु यही तो तुम्हारा प्रधान गर्व है सुरेश?'

सुरेश ने कहा—'यह ठीक है।' कुछ देर नीचे की ओर चुपचाप देखता रहा और अचानक उठ कर बोला—'आज मुझे बहुत नींद आ रही है। महिम, मैं सोने चला।' यह कहकर अनमना-सा धीरे धीरे कमरे के बाहर निकल गया।

६

सुरेश मन ही मन ऐसा अनुभव तो अवश्य कर रहा था कि उसकी बात को महिम चाहे जिस तरह भी उड़ा दे, वह उसी का अनुरोध रखने के लिये ही तो इतने दिन तक अचला से मुलाकात न कर सका। चाहे वह जितना भी प्रेम करे, पर अब तक एक ब्राह्म कन्या के निकट उसने अपने बचपन के मित्र को छोटा न होने दिया, कल तक इस बात को सुनकर भी सुरेश का हृदय गर्व से फूल उठता। लेकिन आज अपनी एकान्त शैय्या पर इस बात से उसे तनिक भी आनन्द न हुआ। उसके दिमाग में सिर्फ यही बातें चक्कर काटने लगीं—किसी न किसी दिन ये सारी बातें हँसी-मजाक में ही सही अचला के कान में पड़ेंगी ही। उस दिन वह सुख की गोद में बैठकर अपने पति के इस तुच्छ मित्र के निष्फल ईर्ष्या के अभिप्राय का पता न लगा पायेगी, और हँसी के बहाने भी स्वल्प-भाषिणी वह तरुणी कुछ पूछेगी भी नहीं। होगा यही कि मन ही मन वह हँसेगी और कहेगी—'इस व्यक्ति का मित्रता का घमंड व्यर्थ ही तो था! व्यर्थ ही तो वह रूठ कर भीतर ही भीतर जलभुन कर खाक हो रहा था!'

रात में उसे अच्छी नींद न आई। जितनी बार उसकी नींद टूटती उतनी ही बार यही कटुचिन्ता उसे धिक्कारती—'दूसरे के लिये माथा-पच्ची करने कीयह बीमारी तुहेंकब छोड़ेगी सुरेश?'

सवेरे उठकर उस दिन किसी भी काम में उसका दिल न लगा और कुछ दिन चढ़ते-चढ़ते वह गाड़ी पर सवार होकर केदार बाबू के घर जा पहुँचा। दरवान ने बताया—'बाबू अलीपुर अदालत को चले गये हैं, उनके लौटने में तीन-चार घण्टे की देर हो सकती है।' सुरेश ने वापस होते हुए पूछा—'दोनों जने बाहर गये हैं?'

इस प्रश्न को दरवान समझ न सका। सिर हिलाकर कहा—'यह तो मैं जानता नहीं, बाबू जी !'

सुरेश मुश्किल में पड़ गया। गृह-पति की अनुपस्थिति में उनकी युवती कन्या के बारे में किसी प्रकार का प्रश्न करना ब्राह्म-परिवार में भी शिष्टाचार-विरुद्ध तो नहीं, यह निश्चय न कर सका। फिर भी इसी कन्या से उसका एकमात्र प्रयाजन था। सोचकर कहा—'तुम्हारे बाबू के लौटने में इतनी देर न भी हो ! मैं एक-आध घण्टा इन्तज़ार करूँ।'

दरवान ने सुरेश को बैठकखाने में बिठाकर कहा—'दीदी जी घर में ही हैं, क्या उन्हें खबर दे दूँ ?'—इतना कहकर जवाब के लिये रुक गया। अचला इस भद्र व्यक्ति से परदा नहीं करती, वह इसे कल ही देख चुका था। सुरेश ने अपनी आन्तरिक उत्कंठा को संवरण करते हुए निस्पृह भाव से कहा—'उन्हें खबर दोगे क्या ? अच्छा दो, तबतक न हो तो उन्हीं के साथ दो बातें कर लूँ।'

दरवान चला गया और थोड़ी देर बाद ही अचला बगल के दरवाजे का पर्दा हटाकर वहाँ आ पहुँची। सुरेश उठकर खड़ा हो गया और कहा—'महिम तो घर चला गया। मैंने उससे कितना कहा कि आपसे एक बार मुलाकात करता जाय—लेकिन किसी तरह भी उसने न माना, ऐसी एक—'

कुछ देर के लिये अचला का चेहरा फक़ हो गया। किन्तु नमस्कार करके एक कुर्सी पर बैठकर मधुर कण्ठ से बोली—'जाना शायद बहुत ज़रूरी था, घर पर किसी को सख्त बीमारी तो नहीं है ?'

नमस्कार करते देखकर सुरेश ने अप्रतिभ होकर प्रति-नमस्कार किया तथा अपनी अनावश्यक उत्तेजना के साथ अचला की शान्त-

गम्भीर बातों की तुलना करके सौगुना लज्जित एवं कुण्ठित हो उठा। कण्ठ-स्वर को यथासाध्य सहज व स्वाभाविक कर बोला—'ज़रूरत जो भी हो—क्या ऐसी ज़रूरत थी कि कम से कम दो मिनट के लिये भी यहाँ आकर एक बार आपके साथ बात न कर सका ? और कब वह लौटेगा इसका भी कोई ठिकाना नहीं। आप ही कहें, घर पर उसके है ही कौन—जिसकी बीमारी के लिये वह इस तरह से चला जाय ? मैं तो किसी के मरने पर भी इस तरह न जा सकता था।'

अचला के मुख पर एक सलज्ज एवं स्निग्ध हंसी दौड़ गयी। उसने कहा—'आपके अभी कोई हुई नहीं इसीलिये ऐसी बातें कर रहे हैं अगर कोई होती, तो आप भी उनकी ही तरह बेपरवाही से चले जाते—यह मै सच कहती हूँ।'

सुरेश ने अपने कुर्सी के हत्तल पर जोर से हाथ पीटते हुए कहा—'कभी नहीं। मुझे आप पहचानतीं नहीं, इसीलिये ऐसी बात कह सकीं; किन्तु पहचानने पर ऐसा नहीं कह सकती थीं।'

अचला ने कहा—'अच्छा, अब से तो पहचान सकूँगी; और जो कोई आपकी होगी उसे भी जान सकूँगी। ठीक है न ?'

सुरेश ने कहा—'जरूर ! सौ बार ! इसके अतिरिक्त महिम की तरह मैं मित्र से कोई बात छिपाकर नहीं रख सकता, और रखना अच्छा समझता भी नहीं'—इतना कहकर अकस्मात् उत्तेजित होकर बोल उठा—'आप कह रही हैं, होने पर जान सकूँगी, किन्तु मैं कहता हूँ, बिना आपको जताये, बिना आपकी राय लिये यह सब कुछ होगा भी नहीं; कारण यह कि, आपको अब महिम से अलग करके देखने की ताकत मुझमें नहीं ! आज मेरे निकट आप दोनों अभिन्न हैं।'

अचला शरमाती हुई शिर झुकाये हंसकर बोली—'अच्छा, तब देखा जायगा। किन्तु आपकी परीक्षा के शुभ-दिन के आगमन तक आपके मित्र को दोषी नहीं ठहरा सकती, सुरेश बाबू !'

सुरेश ने सहसा गम्भीर होकर कहा—'वह आपकी इच्छा। किन्तु मेरी परीक्षा का शुभ-दिन इस जन्म में उपस्थित होगा या नहीं, इसमें सन्देह है। लेकिन उसे जाने दीजिये। आज सबेरे क्यों आपके निकट आया हूँ जानती हैं? कल रात को मैं सो न सका—न आने से आज भी न सो सकता यह भी जानता था। मुझसे अनेक अपराध हुए हैं—उन सबको एक-एक करके आपके निकट स्वीकार कर मैं जाऊँगा, इसीलिये आया हूँ।'

उसकी प्रबल विरोधिता अचला से अविदित थी नहीं। इसी लिये वह शंकित मुख से चुप होकर देखती रह गयी। सुरेश कहने लगा—'कल शाम के बाद लौटकर घर जाने पर देखता हूँ—महिम बैठा हुआ है। अच्छा, आप जानती ही हैं, कि मैं ब्राह्मों को फूटी आँखों से—अर्थात्, ब्रह्म समाज को मैं उतना अच्छा नहीं समझता।'

अचला ने शिर हिलाकर कहा—'हाँ, मैं जानती हूँ।'

सुरेश कहने लगा—'जरूर जानती होंगी। किन्तु इस बात को भी मत भूलिये कि, मैं तब आपको पहचानता न था। इसीलिये महिम से अनुरोध किया कि वह यहाँ एक महीने तक न आये। यह क्या जानती हैं आप?'

अचला फिर शिर हिलाकर बोली—'नहीं। तभी शायद आप यह समझ रहे थे कि पुरुषों को भूलने के लिये एक महीने का वक्त ही काफी है। इससे अधिक विलम्ब होना ठीक नहीं।'

इस आक्षेप को सुरेश विनीत भाव से ग्रहण करके बोला—'मैं सदा से निर्बोध हूँ। ठीक है, कुछ ऐसा ही किया होगा। इसके अतिरिक्त एक भारी षड्यन्त्र भी आपके विरुद्ध मैंने रचा था। मैंने शपथ किया था एक महीने के बीच में ही किसी और सुयोग्य कन्या को ठीक करके महिम की शादी कर दूँगा। जैसे भी हो उसे रोकूँगा। मेरा मित्र होकर, एक नारी के मोह में अपने समाज को छोड़कर चला जायगा, यह किसी भी तरह न होने पायेगा।'

अचला लम्बी साँस लेकर बोली—'इसके बाद ?'

उसके सूखे हुए मुँह की ओर देखकर सुरेश ने मुस्कराकर कहा—'पर अब और कोई डर नहीं। इस पाप संकल्प का मैंने त्याग कर दिया है, आज यही बात मैं स्वीकार करके जाऊँगा। आपसे भेंट करने के लिए कल रात को मैंने उससे बहुत अनुरोध किया। एक दिन मेरे अनुरोध को उसने माना था, लेकिन कल का यह अनुरोध उसने ठुकरा दिया—आपसे बिना भेंट किये ही वह कलकत्ते से चला गया।'

अचला ने पूछा—'जाने का कोई कारण बताया था ?'

सुरेश ने कहा—'नहीं। काम है—इतना ही।'

अचला फिर एक और साँस लेकर अपने तईं बोलने लगी—'काम ! काम ! सदा से उनसे यही सुनती आयी हूँ—हमेशा काम ही उनका सब कुछ है !'

सुरेश ने कहा—'एक चिट्ठी लिखकर भी तो वह आपको खबर दे सकता था।'

अचला धीरे से सिर हिलाकर बोली—'नहीं ! चिट्ठी वे नहीं लिखते।'

सुरेश कुछ देर तक चुप रहा फिर सिर उठाकर देखा, और कहा—'कौन काम है, यह भी वह कभी नहीं बताता। उसका सुख-दुख, भला-बुरा सब कुछ उसीका अपना है। स्वार्थपरायण ! कभी किसी को उसमें हाथ बटाने नहीं देता। इसी बात पर उसने बचपन से ही मुझे कितना कष्ट पहुँचाया है जिसकी सीमा नहीं। निष्ठुर ! दिन-बदिन खुद भूखा रहकर मेरा खाना-पीना हराम कर देता था—फिर भी किसी दिन मेरे खातिर मेरा दिया कुछ नहीं लेता। मुझे यही भय है कि, जिस पाषाण को लेकर मैं कभी सुख न पा सका उसके साथ आप ही कैसे सुखी हो सकेंगी ?'—कहते-कहते अकस्मात् उसकी दोनों आँखों में आँसू छलछला आये। झट से आँसू पोंछ हँसने की कोशिश करते हुए बोला—'देखिये, आप मुझे बाहर से ही मज़बूत देखती हैं,

किन्तु भीतर से मैं उतना ही कमजोर हूँ। महिम में ठीक इसका उल्टा है—फिर भी हमारी जैसी मित्रता, मैं सोचता हूँ, संसार में बहुत ही कम होगी।'

अचला नतमुख होकर कोमल स्वर में बोली—'यह मैं जानती हूँ सुरेश बाबू और यह भी जानती हूँ कि वह मित्रता आज भी उसी प्रकार अमर है।'

शैशव की सारी स्मृतियाँ सुरेश के हृदय में आन्दोलित हो उठीं। वह गद्‌गद् स्वर में बोल उठा—'जब आप जानती ही हैं, तो आज मुझे यही भिक्षा दीजिये कि, अज्ञानतावश जो शत्रुता मैंने आप लोगों से की है, वह अपराध अब मेरे हृदय को चोट न पहुँचाये।'

उसका कण्ठ-स्वर आवेग में पुनः अवरुद्ध हो गया और इस दारुण व्याकुलता से अचला का हृदय भी आन्दोलित हो उठा। उसने उमड़ते आँसुओं को छिपाने के लिए ज्योंही मुँह फेरा तो देखा—उसके पिता दरवाजे पर खड़े हैं।

केदार बाबू सुरेश को देखकर खुशी के साथ बोल उठे—'अहा! सुरेश बाबू!'

सुरेश ने उठकर नमस्कार किया।

केदार बाबू आसन ग्रहण किये बिना ही पूछ बैठे—'महिम की क्या खबर है? उसे तो देख नहीं रहा हूँ।'

सुरेश ने कहा—'महिम किसी ज़रूरी काम से सबेरे की गाड़ी से ही घर चला गया—यही खबर देने के लिए मैं आया हूँ।'

केदार बाबू विस्मित होकर बोले—'घर चला गया!'—इतना कह फिर क्रुद्ध होकर कहने लगे—'वह घर जाय, या यहाँ रहे हम लोगों का उससे कोई सरोकार नहीं। किन्तु बेटा सुरेश, तुमको जब समय मिले अपना घर समझकर यहाँ आया-जाया करो, इससे मुझे बड़ी खुशी होगी—किन्तु, तुम्हारा वह मिथ्याचारी मित्ररत्न अब कभी भी अपना मुँह इस घर में न दिखाये। मुलाकात होने पर कह देना उसे

लज्जा न होने पर भी कम से कम अपमान का भय तो होगा ही।'... सुरेश ने गर्दन झुका ली, उसके मन के भाव का अनुमान करने की कोशिश करके केदार बाबू उत्साह के साथ बोल उठे—'नहीं-नहीं, सुरेश, तुम्हें लज्जित होने का तो यहाँ कोई कारण नहीं। बल्कि कर्त्तव्य करने का गौरव है। तुम नहीं समझ सकते कि तुमने किस विपत्ति से हम लोगों को बचाया है और हम तुम्हारे प्रति कितने कृतज्ञ हैं।'

कन्या की ओर देखते हुए बोले—'मुझे कल से इसी बात पर बड़ा आश्चर्य हो रहा है, अचला ऐसा आदमी सुरेश जैसे लड़के का किस तरह मित्र बन गया और किस तरह उस मित्रता को अब तक निभा सका। थोड़ी देर ठहरकर बोले—'जो ऐसा कर सकता है, वह हमारे जैसे दो सीधे आदमियों को भुलावा देगा, यह कोई बड़ी बात नहीं, मानता हूँ, लेकिन इससे भी अधिक आश्चर्यजनक बात तो यह है कि इस व्यक्ति का वास्तविक रूप क्या है, इसका पता लगाने का ध्यान मुझ जैसे वृद्ध अनुभवी को भी न हुआ। आश्चर्य!'

सुरेश कुछ न बोला, केदार बाबू से नज़र भी न मिला सका। केदार बाबू थोड़ी देर चुप रहने के बाद अपनी पोशाक की ओर देखते हुए बोले—'मुझे कई बातों के बारे में पूछना है बेटा; ज़रा बैठो, मैं इनको उतार आऊँ। यह कहकर जैसे ही जाने लगे सुरेश बोल उठा—'मुझे देर हो गई है। आज मैं जाता हूँ, फिर किसी दिन आऊँगा'—इतना कहकर व्यग्र भाव से उठ खड़ा हुआ और किसी तरह एक बार नमस्कार करके उनके साथ ही बाहर निकल गया।

किन्तु दूसरे दिन सबेरे ही वह फिर दिखाई पड़ा और ठीक उसी समय उसकी गाड़ी वहाँ आकर खड़ी हो गयी।

लेकिन इसके बाद दूसरे दिन भी जब उसकी गाड़ी का शब्द सुनायी पड़ा, तब दिन चढ़ गया था। पिता को नहाने-खाने के लिए ताकीद करके अचला उठने की कोशिश कर रही थी—पर केदार बाबू का उठना न हुआ, वे सुरेश को सानन्दकर उससे वार्त्तालाप करने लगे।

सुरेश यह देख चुका था इसीलिए दो-चार मामूली बात के बाद उठ खड़ा हुआ, तो उसके रूखे-सूखे सिर पर नज़र पड़ते ही आज केदार बाबू बेचैन हो गये। बोले—'अभी तक तुम्हारा स्नान-भोजन नहीं हुआ सुरेश बाबू!' सुरेश ने हंसकर कहा—'मेरा भोजन कुछ देर से ही होता है।' केदार बाबू उसकी बात अनसुनीकर बोलने लगे और पल भर में ही आग्रह करने लगे—'ऐं, अभी तक नहाना-खाना नहीं हुआ! न, अब एक मिनट भी देर न करो, सुरेश! यहीं स्नान कर लो और थोड़ा-सा खा भी लो। बेटी अचला, ज़रा जल्दी करो, बारह बज चुका है। बेहरा को ज़ोर से आवाज़ देते हुए वे ख़ुद कमरे से बाहर चले गये।'

अचला अब तक स्थिर खड़ी थी। अब भी किसी प्रकार की चञ्चलता उसने प्रगट नहीं की। पिता के चले जाने के बाद उसने धीरे से पूछा—'आप हमारे यहाँ कुछ खा सकते हैं!'

सुरेश सिर उठाकर अचला के मुख की ओर कुछ देर तक देखता रहा और बोला—'आप का क्या ख्याल है!'

'आप तो कभी ब्राह्मणों के यहाँ खाते नहीं!'

'नहीं, खाता नहीं। किन्तु आप के हाथ का खाऊँगा।' थोड़ी देर ठहरकर बोला—'मालूम पड़ता है आप सोच रही हैं, मैं मज़ाक़ कर रहा हूँ; किन्तु बात यह नहीं है। आप के हाथ से मैं सचमुच खाऊँगा' कहकर देखता रहा। इस बार अचला ज़रा सिर नीचाकर हँसी को छिपाती हुई बोली—'सचमुच, मैं सोच रही थी आप मज़ाक़ कर रहे हैं। कल तक जिनके यहाँ खाने से आप को नफ़रत थी आज उसी घर के एक आदमी के हाथ का खाने की इच्छा आप को होगी, यह बात मेरी समझमें नहीं आ रही है, सुरेश बाबू!'

सुरेश मलिन-मुख से व्यथा भरे स्वर में बोला—'तभी अब तक आप यही सोच रही थीं कि, आपके हाथ का खाने में मुझे नफ़रत है!'

अचला बोली—'किन्तु ऐसा सोचना तो स्वाभाविक है, सुरेश बाबू ! आप जैसे एक उच्च शिक्षित सम्भ्रान्त व्यक्ति का बहुत दिन का बद्धमूल सामाजिक संस्कार एक दिन अकारण ही लुप्त हो जायगा, यह सोच सकना क्या आसान है ?'

सुरेश ने कहा—'नहीं, आसान नहीं है। किन्तु अकारण ही लुप्त हो रहा है, यही क्यों सोच रही हैं ? इसका कारण भी तो हो सकता है'—यह कहकर इस तरह ताकने लगा कि जवाब देते समय अचला एकाएक विस्मित हो उठी। उसकी बात से उसे चोट पहुँची है यह मुख देखने से ही वह समझ गई थी, और एक प्रकार के हिंस्र आनन्द का अनुभव भी कर रही थी। किन्तु वह वेदना अकस्मात् पल भर में ही उसके मुख को विवर्ण कर सकता है—ऐसा न उसने सोचा, न चाहा था। वह स्त्री भी व्यथित होकर इस बात को हँसी-मज़ाक़ में बदलने के लिए, कुछ हँसने की कोशिशकर बोली—'सोचिये तो सही, आप के सदृश कठिन प्रतिज्ञावाले व्यक्ति भी—'

सुरेश ने कहा—'हाँ, मैं पथभ्रष्ट हो रहा हूँ।' उसके कण्ठ-स्वर काँपने लगे, बोला—'आप एक दिन की बात कर रही हैं—किन्तु जानती हैं आप, एक दिन के भूकम्प में आधी दुनिया रसातल को चली जा सकती है ? एक दिन कम समय नहीं होता'—यह कहकर फिर एकटक देखने लगा। अचला डर गई। सुरेश के मुख पर एक प्रकार का सूखा पीलापन, ललाट की दोनों रगें फूली हुई और आँखों में चमक थी—मानों वह झपट्टा मारना चाहता है।

एक तो इतनी गर्मी, तिस पर इतने दिन चढ़े पर भी स्नान-भोजन नहीं, पिछली रात को ज़रा भी नींद नहीं आयी—उसके पैर तले की मिट्टी खिसकने लगी। अपनी लाल-लाल दोनों आँखें फाड़कर बोला—'ब्राह्मों से घृणा करता हूँ या नहीं, इसका जवाब तो ब्राह्मों को दूँगा, किन्तु आप मेरे निकट उन लोगों से बहुत, बहुत ऊपर हैं—' उसमें पागलपन के लक्षण देखकर अचला डरकर काठ हो गयी। किसी तरह

इस बात को बंद करने के लिये डरती हुई पुकार उठी—'नौकर अरे बेहरा—'

किन्तु उसका वह अस्फुट कोमल स्वर सुरेश के दीप्त स्वर में विलीन हो गया। वह उसी तरह तीव्र स्वर में कहने लगा—'दो दिन का परिचय! ठीक है! किन्तु जानती हो अचला, दिन, घण्टा, मिनट से महिम को नापा जा सकता है—किन्तु सुरेश को नहीं। वह देश-काल से परे है! तुमने भूकम्प देखा है? जो पृथ्वी को ग्रसित कर लेता है—'

अचला व्यायभीत हरिणी की तरह झट से उठकर बोली—'आपके स्नान का प्रबन्ध—' यह कहकर उसने ज्यों ही आगे पैर बढ़ाया, सुरेश ने एकाएक सामने झुककर अचला का दाहिना हाथ पकड़कर खींचा। इस प्रकार का उन्नत एवं आकस्मिक आकर्षण सहन करने की शक्ति नारी में नहीं। वह लुढ़ककर सुरेश के गर्दन पर आ पड़ी। भय और विस्मय को लाँघकर उसके आर्त कण्ठ से—'अरे बप्पा!'—इस शब्द के काँपते होठों से निकलते-निकलते सुरेश ने उसके दोनों हाथों को जोर से खींचकर अपने सीने पर रख पुकारा—'अचला!'

अचला आँखें उठाकर संज्ञाहीन मंत्र मुग्ध की तरह देखती रही और सुरेश भी कुछ देर तक बोल न सका—उसके सीने में जो लाल-साग्नि भड़क उठी थी उसकी लपटें सारे बदन में फैलने लगीं।

कुछ देर तक इसी अवस्था में रहने के बाद सुरेश ने एक बार फिर अचला के दोनों हाथ अपने सीने पर दबाकर जोश में कहने लगा—'अचला, एक बार भूकम्प-रूपी इस उग्र हृदय-स्पन्दन का अपने दोनों हाथों से अनुभव करके देखो—इस हृदय के भीतर कैसा प्रचंड ताण्डव मचा हुआ है। यह क्या पृथ्वी के किसी भूकम्प से कम है? कह सकती हो, अचला, पृथ्वी पर ऐसी कौन जाति, कौन धर्म, कौन मत है जो इस विप्लव के बीच पड़ डूबकर रसातल को न चला जाय।'

'छोड़िये—पिताजी आ रहे हैं,'—यह कहकर बलपूर्वक अपने को मुक्त करके अचला मुड़कर अपनी कुर्सी पर शान्तभाव से जा बैठी। दूसरे क्षण केदार बाबू भी हड़बड़ाकर कमरे में घुसकर बोले—'एँ, कुछ देर हो गयी—और यह नहत समुरा बैठे-बैठे मालूम नहीं कहाँ लापता हो जाता है', 'बेटी, अचला—अरे यह क्या, तेरी तबियत कुछ खराब है क्या ? मुँह सूखकर एकदम जैसे—'

अचला किसी तरह ज़रा हँसने की कोशिश करती हुई बोली—'पिताजी, तबियत क्यों खराब होगी ?'

'फिर भी शिर-दर्द वग़ैरह ? इतनी गर्मी पड़ रही है, इसलिये—'

'नहीं, मैं अच्छी हूँ पिताजी, मुझे कुछ नहीं हुआ है।'

केदार बाबू निश्चिन्त होकर बोले—'ताहम गनीमत चेहरा देखकर मैं तो डर गया था। अच्छा, तू ज़रा देख बेटी अगर—'

अचला बोली—'बहुत अच्छा, पिताजी, मैं एक मिनट में सारा इन्तजाम किये देती हूँ। किन्तु मैं सुरेश बाबू से सिर्फ़ यही पूछ रही थी कि हमारे यहाँ स्नान-भोजन करने में उन्हें आपत्ति तो नहीं ?'

केदार बाबू आश्चर्यान्वित होकर बोले—'आपत्ति क्यों होगी ? नहीं-नहीं, सुरेश, मैंने तो तुमसे कह ही दिया है कि, एक ही दिन में मैं तुम्हें अपने लड़के की तरह समझने लगा। इस घर को अपना घर समझो। छाया की ओर देखकर गर्व के साथ कह उठे—'अगर ऐसा न हो, अचला, तो भगवान ने हमारे उद्धार के लिये यहाँ भेजा ही क्यों ? किन्तु, अब देर करना अच्छा नहीं, 'बेटा, मेरे साथ आओ—स्नानागार तो मैं तुम्हें दिखा दूँ।' किन्तु सुरेश केदार बाबू के प्रवेश करने से पूर्व जिस तरह सिर झुकाये हुए था, फिर उसे सीधा करने का साहस न कर सका।

अचला बोली—'ज़बर्दस्ती करने की ज़रूरत क्या है, पिताजी हमारे ब्राह्म-घर के भोजन करने में उन्हें विशेष बाधा भी तो है। इसके अलावा, बेमन खाने पर कहीं तबियत न खराब हो जाय।'

केदार बाबू बिल्कुल मायूस गये। सुरेश बड़े आदमी का लड़का—स्वाधीन। अपने घर को गाड़ी पर घूमता-फिरता है। उसे खिला-पिलाकर जिस तरह भी हो अपना बनाना चाहिये ही; एकाएक उसके नतमुख के एक अंश पर दृष्टि पड़ते ही वे विस्मय से चौंक उठे। 'ऐं! यह क्या हो गया, सुरेश? सूखकर सारा मुँह एक बारगी पीला हो गया है! उठो, उठो—हाथ मुँह धोने में अब एक मिनट भी देर न करो।' यह कहकर हाथ पकड़कर मानो जबर्दस्ती उसे खींच ले गये।

भोजनादि के बाद किसी भी तरह केदार बाबू ने इस धूप में सुरेश को जाने न दिया। आराम के बहाने दोपहर को उसे एक कमरे में बंद रखा। वह आँखें बन्द किये कोच के ऊपर पड़ा रहा, पर नींद बिल्कुल न आई। घर के बाहर मध्याह्न का सूर्य आकाश को तपा रहा था, भीतर अपनी दुर्बलता के लिये धिक्कार इससे भी अधिक भीषणता के साथ सुरेश के हृदय में प्रज्वलित हो उठी। इस तरह दिन भर शारीरिक और मानसिक उत्ताप से अधमरा होकर जब वह उठ बैठा और सामने की खिड़की खोलकर देखा—दिवावसान हो चुका था। केदार बाबू प्रसन्न मुख से कमरे में घुसे और एक लम्बी साँस लेकर बोले—'आः, गर्मी देखी सुरेश! इतनी उम्र बीते, मैंने कलकत्ते में कभी ऐसी गर्मी नहीं देखी। कहो, कुछ नींद-वींद तो आई?'

सुरेश ने सिर हिलाकर कहा—'नहीं, मुझे दिन में नींद नहीं आती।'

केदार बाबू उसी क्षण बोल उठे—'आना ठीक भी नहीं। इससे स्वास्थ्य की बड़ी हानि होती है। फिर भी मैंने तीन-चार बार उठ-उठ-

कर देखा—तुम्हारा पंखा वाला खींच रहा है कि सो रहा है। ये इतने पाजी होते हैं कि तुम्हें ज़रा भी झपकी आई बस वे भी खुर्राटे लेने लगते हैं। खैर, कुछ स्वस्थ तो हो गये होंगे? मैं अच्छी तरह जानता था—इस धूप में बाहर निकलने पर तुम्हारी जान न बचती।'

सुरेश चुप रहा। केदार बाबू ने घर की दूसरी खिड़कियाँ एक-एक-कर खोल दीं, बैठने की कुर्सी नज़दीक सरकाकर बोले—'मैं सोच रहा हूँ सुरेश, अब ढील डालने से न चलेगा। सब कुछ साफ़-साफ़ महिम को एक चिट्ठी में लिखे देता हूँ। तुम्हारी क्या राय है?'

सवाल क्या हुआ जैसे सुरेश की पीठ पर कोड़ा पड़ा। वह इस तरह चौंक उठा कि, केदार बाबू देखते ही के साथ बोल उठे—'कठोर कर्त्तव्य किस तरह किया जाता है, इसकी शिक्षा तो इतने दिनों के बाद तुमही ने मुझे दी सुरेश; इस वक्त तुम्हारे पीछे हटने से काम न चलेगा, बेटा।'

बात तो ठीक है। सुरेश कुछ देर चुप रहकर बोला—'किन्तु इस सम्बन्ध में आप की कन्या की सम्मति भी तो चाहिये।'

केदार बाबू मुस्कराकर बोले—'ज़रूर।'

'उन्होंने साफ़ करके चिट्ठी लिखने को कहा है?'

केदार बाबू इस सवाल का सीधा जवाब न देकर बोले—'एक तरह से ऐसा ही समझो। इस मामले में आमने-सामने सवाल-जवाब करना सबके लिए तक़लीफदेह होगा। पर वह बालिग़ हो चुकी, काफ़ी तालीम भी पा चुकी है; वक्त रहते यह सारा मामला साफ़ न कर देने से उसकी नासमझी का नतीजा क्या होगा इतना तो वह समझती है! इसीलिए मेरा इरादा है आज रात को ही मामले को निपटा दूँ।'

सुरेश ने उदास होकर कहा—'जल्दी क्या पड़ी है? दो-एक दिन सोच-समझ लेना भी तो उचित है।'

केदार बाबू ने कहा—'अब सोचने-समझने का मौक़ा कहाँ ? उसको अपनी लड़की नहीं दे सकता, यह पक्का है; तब इस मामले का जितना शीघ्र अन्त हो, उतना ही अच्छा।'

सुरेश ने पूछा—'इसमें मेरा हवाला देने की ज़रूरत है ?'

केदार बाबू ने हँसकर कहा—'मैं बूढ़ा हो गया हूँ, क्या मुझे इतनी तमीज़ नहीं, ज़रा सोचो तो ? तुम्हारा नाम कभी कोई ज़बान पर न लाएगा।'

सुरेश ने आराम की साँस ली; पर और कुछ न बोला, चुप बैठा रहा। सुरेश की यह हरकत केदार बाबू की नज़र से न चूकी। उन्होंने इस बीच सुरेश के कुछ रंग-ढंग से मन-ही-मन एक अन्दाज कर लिया था। उसके झूठ-सच की जाँच करने के इरादे से अंदाज़ी तीर छोड़ा; उन्होंने कहा—'जितना बड़ा उपकार तुमने मेरा किया है बेटा, इससे भी बड़े उपकार की आशा हम दोनों तुमसे कर रहे हैं। हम ब्रह्मसमाजी हैं सही पर उस तरह के ब्रह्मसमाजी नहीं। और मेरी कन्या तो अपनी माँ की तरह मन से हिन्दू ही रह गई है। वह हमारी ब्राह्मपन को बिल्कुल पसन्द नहीं करती।

सुरेश ने विस्मय से सिर उठाकर देखा। उसकी इस नीरव उत्सुकता को विशेषरूप से लक्ष्य करके केदार बाबू कहने लगे—'इसलिये, अपनी कन्या को मैं कवारी नहीं रख सकता। इस सम्बन्ध में मैं तुम्हारी तरह ही पूर्णरूप से हिन्दूमतावलम्बी हूँ। जिस तरह एक सम्बन्ध तुम्हारे जरिये टूट गया है सुरेश, उसी तरह तुम्हें ही दूसरा सम्बन्ध जोड़ना पड़ेगा, बेटा।'

सुरेश ने कहा—'जो हुक्म; मैं आखिर दम तक कोशिश करूँगा।'

उसके मुख के भाव को समझकर केदार बाबू ने संदिग्ध स्वर में कहा—'देख रहा हूँ समाज में इस बात को लेकर बहुत काफी वाद-विवाद होगा। किन्तु जहाँ तक जल्द हो सके, अचला की शादीकर

सारी आलोचनाएँ बन्द करनी होगी। फिर भी एक कठिनाई है सुरेश।' यह कहकर एक बार दरवाज़े के बाहर की ओर देखकर कुछ और नज़दीक खिसक धीमी आवाज में बोले—'कठिनाई यही है कि हिन्दू समाज की तरह रूप गुण से युक्त किसी भी पात्र को उसे सौंप दूँ, सो बात ऐसी नहीं है। वह शुरू से ही ऐसी शिक्षा-संस्कार के बीच पली है, कि बिना उसकी सम्मति के कुछ नहीं किया जा सकता। किन्तु, वह अपनी सम्मति किसी तरह भी नहीं दे सकती जब तक कि दोनों व्यक्तियों के बीच इस तरह का कुछ—समझे सुरेश ?'

बातचीत के बीच में ही सुरेश कुछ अनमना-सा हो गया था, पर इस प्रणय-इङ्गित के एक बार पुनराघात से वह अपनी सुध-बुध खो बैठा। दोपहर के समय अपने उच्छृंखल प्रणय-निवेदन के वीभत्स एवं उत्कट आचरण को स्मरण करके दारुण लज्जा से उसका सारा मुख लाल न होकर एकाएक पीला हो गया; और सबेरे से अब तक जो अखबार उसके पैर के पास फर्श पर पड़ा हुआ था, उसे उठा विज्ञापन-वाले पृष्ठ पर अपनी नज़र गड़ाये बैठा रहा।

केदार बाबू ने यह देखा, और इस आकस्मिक भाव-परिवर्तन का बिल्कुल उल्टा अर्थ समझकर वे मनही-मन अत्यन्त प्रफुल्ल हो उठे। और मौक़ा समझकर उन्होंने एक बड़ी चाल चल दी; कहने लगे—'मैं बराबर एक बड़ी आश्चर्य-जनक चीज़ देखता आ रहा हूँ सुरेश, कि न जाने क्यों किसी के जन्म भर साथ रहने पर भी उस पर रत्ती भर भी विश्वास नहीं होता, और दूसरे से सिर्फ़ दो ही घण्टे का साथ होने पर मन करता है कि, उसके हाथ अपना प्राण तक सौंप दूँ। मालूम पड़ता है, जैसे जन्म-जन्मान्तर का परिचय है—सिर्फ़ दो घण्टे का नहीं। यही जैसे कि तुम। कितनी देर का परिचय है ज़रा देखो तो ?'

ठीक इसी समय अचला कमरे में आई। सुरेश पल भर ऊपर दृष्टि कर फिर अखबार पढ़ने में तल्लीन हो गया।

'पिताजी, तुम इस वक्त चाय पियोगे या कोको ?'

'मैं कोको ही पिउँगा बेटी।'

'सुरेश बाबू, आप तो चाय पियेंगे ?'

सुरेश ने अखबार पर ही नज़र गड़ाये धीमे स्वर में उत्तर दिया—'मुझे चाय ही दीजियेगा।'

'आप के प्याले में चीनी कम तो नहीं देना पड़ेगा ?'

'नहीं, सब जिस तरह की पीते हैं, मैं भी वैसी ही पीता हूँ।'

अचला चली गई। केदार बाबू ने बात-चीत के टूटे सिलसिले को फिर छेड़कर धीरे-धीरे कहना शुरू किया—'यही देखो न सुरेश, मैं अपनी इस कन्या के लिये ही इस बुढ़ापे में विपत्ति में पड़ा हूँ, यह बात तो तुमसे छिपा न सका। नहीं तो क्या कोई अपनी फटी हालत किसी से ज़ाहिर करता है। जो मैं कभी न कर सका, इतने बन्धु-बान्धवों के रहते हुए भी वह बात सिर्फ़ तुमसे ही कहने में संकोच क्यों नहीं होता ? क्या इसमें तुमको कोई रहस्य नहीं मालूम होता ? इसका कोई खास सबब है ऐसा समझते हो।'

सुरेश विस्मित होकर देखता रह गया। केदार बाबू कहने लगे—'यह इश्वरीय निर्देश है—इसे छिपाने की शक्ति मुझमें कहाँ ? मुझे कहना ही पड़ेगा !' यह कहकर कुर्सी के हत्तल पर उन्होंने एक हाथ दे मारा।

किन्तु उनकी इस लम्बी-चौड़ी भूमिका के बाद भी उनकी हालत अपनी लड़की के सबब किस हद तक खराब हुई है, इसका अन्दाज़ा सुरेश न लगा सका। केदार बाबू तब विस्तारपूर्वक वर्णन करने लगे—किस तरह उनका आर्डर-सप्लाई का रोजगार केवल धूर्तता और कृतज्ञता के कारण नष्ट हो जाने पर भी उन्होंने कैसे सब्र से काम लिया और दिन बदिन कर्ज़ बढ़ते रहने पर भी अपनी इकलौती बेटी की तालीम के वास्ते खर्च में कोई कसर न रखी। वे कहने लगे—'पाँच-छः किता डिग्री जारी होने पर उनका खाना-पीना हराम हो गया और फुटकर

क़र्ज़ के तक़ाज़े से ज़िन्दगी दूभर हो गई। फिर भी मुँह खोलकर किसी से कर्ज़ के तगादे से कुछ न कह सके। हालाँ कि इसी कलकत्ता शहर में ही अनेक ऐसे मित्र हैं जो आसानी से रुपये दे सकते हैं।'

थोड़ी देर रुककर फिर कुछ सोचकर बोले—'किन्तु तुमसे सारी बातें बता दीं—कुछ भी हिचक-संकोच न हुआ—यह क्या ईश्वर का स्पष्ट आदेश नहीं ?'—इतना कहकर उन्होंने अति भक्ति के साथ दोनों हाथ मस्तक से लगा नमस्कार किया।

सुरेश को ईश्वर में विश्वास था नहीं, वह इस वृद्ध के भक्ति-उद्‌गार में साथ न दे सका, बल्कि वह एक प्रकार से सकुचा गया। नरमियत से पूछा—'आप पर ऋण है कितना !'

केदार बाबू ने कहा—'ऋण ! अगर मेरा कारबार क़ायम रहता, तो फिर यह कोई ऋण है ! यही ज़्यादा से ज़्यादा तीन-चार हजार।' वे एक बात और कहने जा रहे थे किन्तु इसी बीच अचला बेहरा के हाथ चाय की सामग्री तथा अपने हाथ में जलपान की थाल लिए वहाँ आ पहुँची।

केदार बाबू गर्म कोको का एक चम्मच मुँह में डालकर, हर्षसूचक एक अव्यक्त निनाद करके प्याले को टेबिल पर रखते हुए बोल उठे—'देखो सुरेश, मैं अपने ऊपर ईश्वर की एक आश्चर्यजनक कृपा सदा से देखता आ रहा हूँ कि, उन्होंने मुझे कभी निराश न होने दिया। महिम से यह बात कहने की इच्छा होते हुए भी न जाने क्यों नहीं कह सकता था—ईश्वर मेरा मुँह बन्द कर देते थे—इतने दिनों के बाद अब समझ में आया !'—इतना कहकर उन्होंने ईश्वर की असीम दया के लिए सिर से हाथ लगाकर फिर एक बार नमस्कार निवेदन किया।

सुरेश ने अपने प्याले पर नज़र गड़ाये हुए पूछा—'रुपये की आपको कब ज़रूरत है !'

केदार बाबू मुँह से कोको के प्याले को फिर से नीचे करके बोले—'मुझे तो ज़रूरत नहीं है सुरेश, ज़रूरत तो तुम लोगों को है।' यह

कहकर ठठाकर हस पड़े। इस पहेली को सुरेश न समझ सका और सिर उठाकर देखा कि अचला जिज्ञासू के रूप में पिता के मुख की ओर देख रही है। उन्होंने एक बार कन्या के मुख पर और एक बार फिर सुरेश के मुख पर नज़र दौड़ाकर कहना शुरू किया—'इसका अर्थ समझना कठिन तो नहीं है। घर को मैं अपने साथ तो लेता जाऊँगा नहीं! जायगा तो तुम्हारा ही जायगा और रहेगा तो तुम्हीं दोनों का रहेगा।'—यह कहकर मुस्कराने लगे।

उन दोनों की चार आँखें हुईं—और पल भर में दोनों के मुख पर लाली दौड़ गयी, दोनों ने शरमाकर सिर नीचा कर लिया।

दो प्याला कोको चट करने के बाद केदार बाबू को एक ज़रूरी चिट्ठी लिखने की बात याद आ गयी। तुरन्त उठ खड़े हुए और बोले—'आज तुम्हारे भोजन में बहुत तकलीफ़ हुई सुरेश, कल दोपहर के वक्त यहीं पर खाना'—यह निमंत्रण देकर पश्चिम दरवाज़े को खोलकर अपने कमरे में चले गये।

खुले हुए दरवाज़े में से अस्तोन्मुख सूर्य की किरणें सुरेश के मुख पर आ पड़ीं। उसने गर्दन फिराकर देखा—अचला एकटक उसकी ओर निहार रही है—उसने भी आँखें नीची कर लीं। दो मिनट तक बड़ी घड़ी के खट्-खट् शब्द के अतिरिक्त सारे घर में निस्तब्धता का साम्राज्य छाया रहा।

८

कमरे की नीरवता भंग करते हुए सुरेश ने कहा—'एकाएक यह मैं क्या कर बैठा!'

अचला कुछ न बोली।

सुरेश ने फिर कहा—'आप सचमुच मुझे एक राक्षस समझ रही होंगी। समझता हूँ अकेले बैठने का आपको साहस न हो रहा होगा।

है न यही बात ?' यह कहकर हँसने की कोशिश करने लगा। अचला ने तब भी सिर न उठाया। अगर उठाती तो देखती कि, सुरेश की इतनी चेष्टा को निष्फल हास्य सिर्फ़ उसीके मुख को बारम्बार अपमानित करके लज्जा से विकृत हो उठी है।

फिर सारा कमरा निस्तब्ध हो गया; और वही दीवाल-घड़ी सिर्फ़ खट्-खट् करके उस स्तब्धता को मापने लगी। कुछ देर तक जब यही कठोर नीरवता एकदम असह्य हो उठी, तब सुरेश ने अपने शरीर को पूर्ण रूप से सीधा और मज़बूत करके कहा—'देखिये, जो हो चुका है, उसके बाद हमें न शर्माना चाहिए। दिन टल चुका—मैं अब जाऊँगा। पर जाने के पेश्तर दो-एक बातों का जवाब सुनना चाहता हूँ, देंगी ?'

अचला ने सिर उठाया, उसकी दोनों आँखें व्यथा से भर गयी थीं। बोली—'कहिये !'

सुरेश कुछ देर तक स्थिर रह बोला—'आपके पिताजी के ऋण-परिशोध के लिए कल-परसों तक एकबार आऊँगा; पर आपके साथ मुलाकात की ज़रूरत नहीं। मैं जानता चाहता हूँ, हम दोनों के सम्बन्ध में उनका मंशा क्या आप जानती हैं ?'

अचला ने कहा—'मुझसे उन्होंने साफ़ करके कुछ बताया नहीं।'

सुरेश बोला—'मुझसे भी नहीं। फिर भी मुझे यक़ीन है। वे मुझे ही—लेकिन शायद आप राज़ी न होंगी ?'

अचला ने कहा—'नहीं।'

'कभी भी नहीं ?'

अचला ने नीची निगाह किये कहा—'नहीं।'

'किन्तु, अगर महिम की आशा न ह '

अचला ने दृढ़ स्वर में कहा—'ऐसी आशा तो है ही नहीं।'

सुरेश ने पूछा—'शायद, तब भी नहीं ?'

अचला ने सिर न उठाया, पर उसी प्रकार शान्त एवं दृढ़ स्वर में बोली—'तब भी नहीं।'

सुरेश कोच की पीठदान के सहारे लेटे हुए साँस लेकर बोला—'जाने दीजिये, एक मामला तो हल हो गया! जान बची।' यह कह-कर कुछ देर तक चुप रहा, फिर सीधा होकर बैठ गया और बोला—'किन्तु, मुझे यही एक कठिनाई दिखलाती है कि, आपके पिताजी का कर्ज़ पटेगा किस तरह?'

अचला डरती-डरती थोड़ा सिर उठाकर अत्यन्त संकोच के साथ बोली—'अब तो आप दे सकेंगे नहीं?'

'दे नहीं सकूँगा? क्यों?'—यह प्रश्न करके सुरेश तीक्ष्ण दृष्टि से देखता रहा। उस दृष्टि के सामने अचला ने फिर माथा झुका लिया। कई मिनट तक उत्तर की प्रतीक्षाकर सुरेश हँसा। किन्तु, इस बार की हँसी में आनन्द न था, तो कृत्रिमता भी नहीं। उसने कहा—'देखिये, मेरे साथ जान-पहचान होने तक मेरे किसी आचरण को सभ्य नहीं कहा जा सकता, यह मैं भी जानता हूँ; किन्तु, मैं इतना नीच नहीं हूँ। आपके पिताजी को मैं यह रुपया रिश्वत के रूप में नहीं देना चाहता, बल्कि उनकी विपत्ति में मदद करना चाहता था। इसलिए आपके मतामत पर मेरा देना निर्भर नहीं करता। निर्भर करता है उनके लेने पर। अब वे किस तरह ले सकेंगे, यही मैं सोच रहा हूँ! अच्छा, आइये, इस सम्बन्ध में हम एक परामर्श करें।'

अचला सिर उठाकर बोली—'कहिये।'

सुरेश कहने लगा—'सौभाग्य से भारी सम्पत्ति मेरे हाथ लगी। फिर भी मुझे रुपये-पैसे का मोह नहीं। चार हज़ार रुपया मैं खुशी से छोड़ दे सकता हूँ। और आपके सुख के लिए तो और भी अधिक दे सकता हूँ। जाने दीजिये इस बात को। अब समस्या यही है कि, आपके पिताजी की धारणा है, इस रुपये के भुगतान की ज़रूरत न

पड़ेगी, मगर किसी न किसी रूप में वे इसका भुगतान करेंगे ही। समझीं न आप ?'

अचला ने सिर हिला अस्फुट स्वर में कहा—'हाँ।'

सुरेश कहने लगा—'मैं साफ़-साफ़ कह रहा हूँ, इसे बुरा न मानें ! समझता हूँ, रुपया उन्हें ज़रूर चाहिये, और इतना रुपया क़र्ज़ लेकर भुगतान करने की शक्ति उनमें है नहीं। और, मेरी तरफ़ से इसकी कोई ज़रूरत भी नहीं है—खैर, यह तो आसानी से हो सकता है। परसों तक आप अपने मन का भाव उन्हें प्रगट न करें तो फिर कोई अड़चन ही न रहे। ऐसा कर सकती हैं न आप ?'

अचला उसी तरह नतमस्तक बैठी रही। सुरेश ने कहा—'रुपये के लोभ से आपने जो अपनी सम्मति नहीं दी, इससे मेरी श्रद्धा बहुत बढ़ गयी है। बल्कि सम्मति देने पर शायद मैं डरकर पीछे हट जाता। मुझसे कोई चीज़ असम्भव नहीं। मैं चला—' यह कहकर सुरेश उठ खड़ा हुआ और मुस्कराकर बोला—'मुझे बोलने का अब मुँह नहीं रहा—फिर भी, चलते समय आपसे यही मिन्नत है कि मेरे कसूर का ख्याल न करना। कुछ सकोच से बोला—'नमस्कार ! बुराई का बोझ लेकर बिदा हो रहा हूँ—किन्तु, वास्तव में मैं पिशाच भी नहीं हूँ। छोड़िये इसे, जब विश्वास ही जाता रहा, तो कहना व्यर्थ है ' यह कहकर दोनों हाथ उठा, नमस्कारकर सुरेश द्रुतगति से बाहर निकल गया।

धीरे-धीरे सीढ़ियों पर उसकी पद-ध्वनि विलीन हो गई अचला ने अनुभव किया; और इसके बाद ही बिना किसी सबब उसकी दोनों आँखों से टप्-टप् करके आँसू गिरने लगे।

केदार बाबू कमरे में पैठते ही बोले—'सुरेश ?'

अचला चट से आँखों के आँसू पोंछकर बोली—'अभी-अभी गये हैं।'

केदार बाबू आश्चर्यान्वित होकर बोले—'मुझसे मुलाकात किये बिना ही चला गया ? कल यहाँ भोजन करने की बात तुमने उसे जाने के समय याद दिलाई ?'

अचला लज्जित होकर बोली—'मुझे याद नहीं रहा पिताजी !'

'याद न रहा ! अच्छा !'—यह कहकर केदार बाबू पास की कुर्सी पर निश्चेष्ट होकर बैठ गये। कन्या की भर्राई हुई आवाज़ से ही उनको कुछ खटका हुआ सही पर शाम के अँधेरे में उसका चेहरा न दिखाने के कारण वह मिट गया। बोले—'इस बुढ़ापे में जिस काम को ख़ुद न करूँ, जिस ओर ख़ुद न देखूँ, वहाँ कुछ न कुछ कसर रह ही जाता है, ऐसा होना नहीं चाहिए। जाऊँ, नौकर की मार्फत अभी एक चिट्ठी भेज दूँ। सुरेश के घर का पता क्या है ?'—यह कहकर उठने के लिए तैयार हो गये।

'मैं तो जानती नहीं पिताजी !'

'यह भी नहीं जानती। क्या कह रही हो !'—यह कहकर फिर कुर्सी से टिक गये पर फिर जल्दी उठ बैठे और नाराज़ी से कहने लगे—'तुम अपने हाथ-पाँव में खुद कुल्हाड़ी मारना चाहती हो तो मारो बेटी, मेरा क्या बिगड़ेगा। अरे, इतना तो कम से कम सोचना चाहिये कि जो एक बात पर इतना रुपया देना चाहता है, वह व्यक्ति किस प्रकार का है ? उसके घर का पता तक न मालूम किया। तुम जितनी बड़ी होती जा रही हो, उतनी ही तुम्हारी अक्ल मारी जा रही है, अचला !'—यह कहकर लम्बी साँस ली।

ऋण-जाल में फँसा हुआ विपदग्रस्त पिता जो अपने मिथ्याचार से एवं अपमान-जनक परिस्थिति में रहकर अब आत्मरक्षा का कोशिश कर रहा है, यह सब अचला समझती है। उसके दिल को चोट पहुँचती पर चुपचाप वह सब कुछ सहती। इस समय भी उसने अपने पिता की अकारण विरक्ति का प्रतिवाद न किया। किन्तु वह जो मन

ही मन अत्यन्त लज्जित एवं अनुतप्त हो रही थी, केदार बाबू यही समझकर ख़ुश हुए।

बेहरा रोशनीकर चला गया। वे प्रेमपूर्ण तिरस्कार के स्वर में कहने लगे—'महिम की ख़बर तुमने कभी ली नहीं। ख़ैर सो अच्छा ही हुआ। ईश्वर जो करते हैं हमारे मङ्गल के लिये। किन्तु सुरेश के सम्बन्ध में ऐसा करने से काम न चलेगा। देखा—जैसे ईश्वर ने स्वयम् उसे यहाँ भेजा हो!'

अचला ने सिर उठाकर पूछा—'सुरेश बाबू से क्या तुम रुपया क़र्ज़ लोगे पिताजी?'

केदार बाबू की ईश्वर-भक्ति अचानक बाधा पाकर विचलित हो उठी। कन्या की ओर देखकर बोले—'हाँ—नहीं, ठीक क़र्ज़ नहीं; समझती हो बेटी, सुरेश बड़ा अच्छा लड़का है—आज-कल इस तरह का अच्छा लड़का लाखों में एक मिलता है। उसकी इच्छा है कि क़र्ज़ के लिये मकान न चला जाय। घर बचा रहने पर तुम्हीं लोगों का रहेगा—अब मैं हूँ ही कितने दिन—समझी न बेटी?'

अचला चुप रही। केदार बाबू उत्साहित होकर कहने लगे—'तुम तो जानती ही हो, मैं हमेशा साफ़ बात पसन्द करता हूँ। ज़बान पर कुछ और दिल में कुछ यह मुझसे न हो सकेगा। इसीलिये साफ़ कह दिया कि सारी बातें जानकर भी महिम के हाथ में कन्या देने की अपेक्षा उसे पानी में फेंक देना अच्छा होगा। सुरेश की भी जब यही राय है, तो यह कहना ही पड़ेगा कि, उसके दोस्त के साथ शादी की बात जब बहुत दूर तक फैल गयी है, तब सम्बन्ध तोड़ लेने से काम चलेगा नहीं—एक नया सम्बन्ध गढ़ना ही पड़ेगा; नहीं तो समाज को मुँह नहीं दिखा सकता। किन्तु जो भी कहो, लड़का है यही सुरेश! इसलिये मैं मङ्गलमय (ईश्वर) को बार-बार प्रणाम करता हूँ।'

एक बार और पिता की भक्ति प्रदर्शन निर्विघ्न समाप्त होने पर अचला धीरे-धीरे बोली—'इनसे इतना रुपया न लिया जाय तो काम नहीं चलेगा पिताजी ?'

केदार बाबू शङ्का से चकित हो उठे। बोले—'न लिया जाय तो काम नहीं चलेगा, नहीं! खूब! 'किन्तु हम ऋण तो चुका सकते नहीं।'

'चुकाने की बात क्या सुरेश ने—' विकलता और संशय के साथ वृद्ध महाशय यह बात पूरा न कर सके। उनका चेहरा सूख गया। उस चेहरे को देख अचला व्यथित हो उठी। तुरत बोली—'उन्होंने कहा था—परसों आकर रुपये दे जाऊँगा।'

'चुकाने की बात—'

'नहीं, इसके बारे में उन्होंने कुछ नहीं कहा।'

'लिखा-पढ़ी वग़ैरह—'

'नहीं, शायद ऐसी मन्शा उनकी क़तई नहीं है।'

'तब ठीक है!'—यह कहकर वृद्ध ने आराम की गहरी साँस ली और कुर्सी पर टेक लगा आँखें मूँद दोनों पैर सामने की टेबिल पर फैला दिया। आनन्द और विश्राम के कारण मानो उनका सारा अंग कुछ देर के लिये शिथिल पड़ गया। कुछ देर तक इस तरह रह पैर नीचा रख जोशीली आवाज़ में बोले—'एक बार सोचकर देख बेटी, कैसे क्या होता है? इस मामले में ईश्वर का हाथ है वह स्पष्ट रूप में देख नहीं रही हो?' अचला चुपचाप पिता के मुख की ओर देखती रही। वे उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही कहने लगे—'मैं सामने देख रहा हूँ, यह सिर्फ़ उनकी कृपा है। क्या बताऊँ बेटी, इस दो साल के अन्दर मैं एक रात के लिये भी आराम की नींद न सो सका—सिर्फ़ उन्हीं को पुकार रही। और सुरेश को देखते ही मालूम हुआ, मानो वह पूर्वजन्म की मेरी सन्तान हो!'

अचला चुप बैठी रही। पिता की सांसारिक दुरवस्था की बात वह जानती थी ठीक, पर वह भीतर-ही-भीतर इतनी दूर तक बढ़ गयी

थी, यह न जानती थी। आज दो साल की एकाग्र आराधना के फलस्वरूप मङ्गलमय के आशीर्वाद से उनके दुख की समस्या का अचानक समाधान हो गया है, किन्तु उसकी अपनी समस्या एकाएक भयानक रूप से जटिल होती दीख पड़ी। सुरेश से रुपया लेने के सम्बन्ध में मन-ही-मन उसने जो संकल्प किया था, उसे अब परित्याग करना पड़ा। लेशमात्र भी बाधा देने की बात अब मन में सोच न सकी। जो भी हो, रुपया अब उसे लेना ही पड़ेगा।

संध्योपासना के लिये केदार बाबू उठ गये। अचला इन सारी बातों पर शुरू से लेकर आखिर तक विचार करने के लिये वहीं चुपचाप बैठी रही।

दोनों मित्र आज अचानक उसके जीवन के सन्धि-स्थल में इस तरह जो अगल-बगल खड़े हो गये हैं उनमें से एक को आज 'जाओ' कहकर बिदा करनी ही पड़ेगी, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं लेकिन किसको? वह कौन है? जो महिम संशयहीन विश्वास के साथ न जाने किस कर्त्तव्य के मोह में निश्चिन्त, निरुद्वेग बैठा हुआ है, उसके शान्त एवं गम्भीर चेहरे का ध्यान करते ही अचला की दोनों आखें प्रबल अश्रुवेग से भर आयी, जिसने किसी भी दिन कोई अपराध नहीं किया, और 'जाओ' कहते ही वह बिना चूँ किये बाहर निकल जायेगा। इस जीवन में, किसी भी तरह, किसी भी बहाने उन दोनों के मार्ग में वह अब उपस्थित न होगा। अचला स्पष्ट रूप में देखने लगी—उस अभावनीय चिर-बिदा के अवसर पर भी उसकी अचल गम्भीरता रंचमात्र भी विचलित नहीं होगी, किसी को दोष भी नहीं देगा, कारण भी नहीं जानना चाहेगा—अति गूढ़ विस्मय एवं तीव्र वेदना की एक अस्पष्ट रेखा उसके चेहरे पर कदाचित् झलके पर सिवाय उसके और किसी की भी दृष्टि में न पड़ेगी।

इसके बाद एक दिन सुरेश के साथ विवाह की बात उसके कान में पड़ेगी ही। तब क्षणिक असावधानी की स्थिति में एक लम्बी आह

भर लेगा, नहीं तो थोड़ा-सा मुस्कराकर अपने काम में लग जायगा। इन बातों की कल्पना-मात्र से इस सुन-सान कमरे में भी उसके नेत्र और मुख लज्जा एवं घृणा से लाल हो उठे।

६

दस-बारह दिन बीत गये। केदार बाबू का रंग-ढंग देखकर मालूम पड़ता—इतनी फुर्ती उनकी जवानी में भी न थी। आज शाम के वक्त वायस्कोप देखकर लौटते वक्त रास्ते में गोलदीघी के पास पहुँचने पर वे अचानक गाड़ी से उतरते हुए बोले—'सुरेश, मैं यहाँ से थोड़ा-सा पैदल ही समाज में जा रहा हूँ, बेटा, तुम लोग घर जाओ—' यह कहकर हाथ की छड़ी घुमाते-घुमाते तेज़ी से चल पड़े। सुरेश ने कहा—'तुम्हारे पिताजी का स्वास्थ्य आजकल बहुत अच्छा मालूम होता है।'

अचला उसी ओर देख रही थी, बोली—'हाँ, यह आपकी इनायत है।'

गाड़ी के मोड़ पर घूमते ही वे आँखों से ओझल हो गये। सुरेश अचला का दाहिना हाथ अपने हाथ में लेकर बोला—'तुम जानती हो इस बात से मेरे दिल में चोट लगती है। क्या इसीलिये तुम बारबार इसे दुहराती हो अचला!'

अचला एक उदासीनतामिश्रित मुस्कानसहित बोली—इतनी बड़ी मिहरबानी कहीं भूल न जाऊँ, इसलिये जब तब याद कर लेती हूँ। आपको तकलीफ़ देने के खयाल से नहीं बोलती।'

सुरेश ने उसके हाथ को ज़रा दबाकर कहा—'इसीलिये तो मुझे और दुख होता है।'

"क्यों?"

'मैं अच्छी तरह समझता हूँ, सिर्फ़ इस मिहरबानी का ख्याल करके ही तुम्हारे दिल को ताक़त मिलती है। इसको छोड़कर तुम्हारे लिये और कोई सहारा नहीं, है न यही बात, सच बताना ?'

'अगर न बताऊँ ?'

'इच्छा न हो, तो मत बताओ। किन्तु, किसी दिन मुझे 'तुम' कहकर भी न बोल सकोगी क्या ?'

अचला का मुख मलिन हो उठा। नीची निगाह किये धीरे से बोली—'एक दिन बोलना ही पड़ेगा, इसे तो आप जानते ही हैं।'

उसका म्लान मुख देखकर सुरेश ने एक गहरी साँस ली और बोला—'अगर यही बात है, तो फिर दो दिन पहले ही बोलने में क्या हर्ज है ?'

अचला ने उत्तर न दिया। अनमनी-सी होकर सड़क की ओर देखती रही। कुछेक क्षण चुप रहने के बाद सुरेश अचानक बोल उठा—'मालूम पड़ता है, महिम सारी बातें जान चुका है।'

अचला ने चौंककर मुँह फेर ली। उसका एक हाथ अब तक सुरेश के हाथ में ही जकड़ा था, उसे खींचकर पूछा—'आपने कैसे जाना ?'

उसका विकल स्वर सुरेश के कानों में खटका। बोला—'नहीं तो क्या इतने दिनों तक आता न ! पन्द्रह-सोलह दिन तो बीत चुके ?'

अचला सिर हिलाकर बोली—'आज लेकर उन्नीस दिन हो गये। अच्छा, पिताजी ने उन्हें कोई चिट्ठी-पत्री लिखी है, आप जानते हैं ?'

सुरेश ने संक्षेप में कहा—'नहीं, मैं नहीं जानता।'

'वे घर से लौटे या नहीं, आप जानते हैं ?'

'नहीं, यह भी नहीं जानता।'

अचला गाड़ी से बाहर की ओर फिर नज़र गड़ाकर मृदु स्वर में बोली—'तो फिर उनका पता लगाकर उन्हें एक चिट्ठी में सारी बातें

साफ़-साफ़ बता देनी तो पिताजी को उचित है। अचानक किसी दिन फिर न आ पहुँचें।'

फिर कुछ देर तक दोनों चुप रहे। सुरेश एक बार फिर उसके सुस्त हाथ को अपने साथ में लेकर धीरे-धीरे कहने लगा—'मुझे सबसे अधिक कष्ट तब होता है, जब मैं सोचता हूँ, कि तुम मुझ पर कभी श्रद्धा तक न कर सकोगी। तुम हमेशा यही सोचोगी--सिर्फ़ रुपये के बल पर ही मैं तुम्हें छीन लाया हूँ। मेरा दोष--'

अचला जल्दी से मुख फिराकर रोकती हुई बोली—'ऐसी बातें आप न कहें--मैं आप को कोई दोष नहीं दे सकती।' कुछ ठहरकर फिर बोली—'रुपये का बल संसार में सभी जगह है, यह तो जानी बात है; किन्तु, उस बल का सहारा तो आप ले नहीं रहे हैं। पिताजी न समझें, पर मैं सारी बातें समझ-बूझकर भी अगर आप पर अश्रद्धा करूँ, तो नरक में भी मेरे लिये जगह न होगा।'

हमेशा से थोड़ी सहानुभूति से ही सुरेश का हृदय पिघल जाता था। अचला के इस प्रिय वाक्य को सुनकर उसकी आँखों में आँसू भर आये। वे आँसू उसने अचला के दोनों हाथों को ले उन्हीं से पोंछ लिया और कहा—'ऐसा मत समझना, कि मैं इस अपराध, इस अन्याय की सीमा नहीं समझता हूँ, किन्तु मैं बहुत कमज़ोर हूँ। बहुत कमज़ोर! इस चोट को महिम बर्दाश्त कर लेगा—पर मेरा कलेजा फट जायगा।' यह कहकर मानों एक भारी धक्के को सम्हालते हुए रुँधे स्वर से बोला—'तुम मेरी नहीं हो, किसी और की हो, ऐसा सोचने की ताक़त मुझमें नहीं। तुम्हें न पाऊँगा यह सोचते ही मेरे पाँव-तले की धरती तक खिसकती-सी मालूम पड़ती है।'

उस वक्त सड़क पर रोशनी जलाई जा रही थी। उनकी गाड़ी ज्योंही गली में घुसी एक रोशनी सुरेश के मुख पर पड़ी जिसमें उसके आँखों के छलकते हुए आँसू अचला ने देख लिये। पल भर की करुणा के वशीभूत होकर जो वह कभी न करती आज कर बैठी!

सामने झुककर अपने हाथ से उसके आँसू पोंछकर बोली—'मैं कभी भी पिताजी की आज्ञा से बाहर नहीं हूँ। उन्होंने तो मुझे तुम्हारे ही साथ सौंपा है।'

सुरेश अचला का वही हाथ अपने मुँह पर खींच बारबार उसे चूमते हुए कहने लगा—'यही मेरा सबसे बड़ा पुरस्कार है अचला, इससे अधिक मुझे न चाहिये। किन्तु कम से कम इतने से तो मुझे कभी वंचित न करना।'

गाड़ी घर के सामने आ-खड़ी हुई। सईस दरवाज़ा खोलकर हट गया। सुरेश नीचे खुद उतरकर बड़े यत्न और सावधानी के साथ अचला का हाथ पकड़कर उसे नीचे उतारते ही दोनों ने एक साथ ही देखा—ठीक सामने महिम खड़ा है और पलक मात्र में ये दोनों नर-नारी एक बारगी ही पत्थर की प्रतिमा बन गये।

दूसरे ही क्षण अचला अव्यक्त आर्तनादकर बलपूर्वक हाथ छुड़ाती हुई पीछे खड़ी हो गयी।

महिम ने विस्मय से हतबुद्धि होकर कहा—'सुरेश, तुम यहाँ कैसे?' सुरेश का तो जैसे गला घुट गया हो। बाद में दम लेकर अपने सूखे चेहरे पर फीकी मुस्कराहट लाने की कोशिश करते हुए बोला ईद के चाँद हो रहे हो। बात क्या है? कब आये? चलो चलो, ऊपर चलो।' यह कहकर उसके निकट आया और उसका हाथ पकड़कर हास्य का अभिनय करके बोला—'अच्छा तमाशा किया, इनके पिताजी तो समाज में गये, और इनके पहुँचाने का जिम्मा पड़ा इस ग़रीब पर। एक तरह से अच्छा ही हुआ—नहीं तो महिम से मुलाकात ही न होती। घर पर इतने दिनों तक कर क्या रहे थे, सुनाओ तो ज़रा?'

महिम ने कहा—'काम था।' विस्मय के वशीभूत होकर अचला को एक बार नमस्कार तक करना वह भूल गया।

सुरेश ने उसे एक धक्का देते हुए कहा—'तुम भी अच्छे आदमी हो यार! हम लोग सोच में मरे जा रहे थे, तुमने एक चिट्ठी तक न

दी ? खड़े क्यों ! ऊपर चलो ।' यह कहकर एक तरह ज़बरदस्ती उसे ऊपर ले गया । किन्तु जब बैठकखाने में आकर सभी बैठ गये, तब अचानक उसकी अस्वाभाविक प्रगल्भता एकबारगी ही विलुप्त हो गयी । गैस की तेज़ रोशनी में उसका चेहरा स्याह हो गया । दो मिनट तक कोई कुछ न बोला । महिम ने एक बार मित्र की ओर फिर अचला की ओर शून्य दृष्टि से देखकर पूछा—'कुशल-मंगल तो है' ?

अचला ने सिर हिला दिया पर शिर उठाकर देखा नहीं । महिम ने कहा—'मैं दंग रह गया । सुरेश के साथ तुम लोगों की जान-पहचान हुई कैसे ?'

अचला सिर उठाकर जैसे लाचारी से बोली—'इन्होंने पिताजी के चार हज़ार का कर्ज़ चुका दिया है ।' उसके मुख की ओर देखकर महिम के मुँह से निकला सिर्फ़—'इसके बाद ?'

'इसके बाद तुम पिताजी से पूछ लो ।' यह कहकर अचला जल्दी से बाहर चली गयी । महिम कुछ देर तक बैठा रहा । अन्त में मित्र की ओर देखकर बोला—'बात क्या है, सुरेश ?'

सुरेश ने रुखाई ले ताना देते हुये कहा—'तुम्हारी तरह रुपया ही मेरा प्राण नहीं है । भले आदमी ने विपत्ति में पड़कर मदद चाही, मैंने दी—बस, यहीं तक । वे अगर रुपये न चुका सकें, तो आशा करता हूँ इसमें मेरा दोष नहीं । फिर भी अगर तुम मुझे ही दोषी समझते हो तो सौ बार समझ सकते हो, मुझे कोई आपत्ति नहीं ।'

दोस्त की इस बे-सिर-पैर की क़ैफ़ियत तथा कहने के अजीब तरीक़े को देखकर महिम दरअसल हक्का-बक्का रह गया । अन्त में बोला—'सहसा तुम्हें ही दोषी क्यों समझ लिया जाय, इसका कोई मतलब तो समझ में नहीं आया सुरेश । कृपा करके ज़रा और साफ़-साफ़ न बताओगे तो मैं समझ भी न सकूँगा ।'

सुरेश ने उसी तरह रूखे स्वर में कहा—'फिर साफ़ क्या बताऊँ ! और बताने को है ही क्या !'

महिम ने कहा—'है तो। मैं उस दिन जब घर जा रहा था, उस वक्त इन लोगों से तुम्हारी जान-पहचान तक न थी। इसी बीच इतना घनिष्ठ परिचय हुआ ही कैसे, और एक ब्राह्म-परिवार की विपत्ति में चार हज़ार रुपये देने की उदारता तुममें कहाँ से आ गयी, सिर्फ़ इतना ही बता दो, तो मैं कृतार्थ हो जाऊंगा सुरेश।'

सुरेश ने कहा—'यह हो सकता है। किन्तु अभी बात करने की मुझे फ़ुर्सत नहीं। अभी मुझे जाना है। इसके सिवा, केदार बाबू से ही क्यों नहीं पूछ लेते, सारी बातें बताने के लिये ही तो वे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

'अच्छी बात है।' यह कहकर महिम उठ खड़ा हुआ। बोला—'सुनने की बड़ी उत्कण्ठा थी, लेकिन फिर भी उनके लिये ठहरने की मुझे फ़ुर्सत नहीं। मैं चला—'

सुरेश स्थिर बैठा रहा कुछ न बोला।

महिम नेबाहर आकर देखा—सामने रेलिंग पकड़कर उसीकी ओर देखती हुई अँधेरे में अचला खड़ी है। किन्तु नज़दीक आने या कुछ कहने के लिये उसने कोई कोशिश न की, देखकर वह भी चुपचाप सीढ़ी से धीरे-धीरे नीचे उतर गया।

१०

कई बहुत ज़रूरी दवाएँ ख़रीदने के लिये महिम कलकत्ते आया था इसलिये रात की गाड़ी से ही वह घर लौट गया। सुरेश ने पता लगा-कर मालूम किया कि महिम अपने डेरे पर नहीं गया। चार दिन बाद शाम के वक्त केदार बाबू के बैठकखाने में यही चर्चा हो रही थी। केदार बाबू को वायस्कोप का नया चस्का लगा था; चाय-पानी के बाद ही आज भी उनके बाहर जाने का प्रोग्राम था। सुरेश की गाड़ी खड़ी

थी—इसी समय महिम अशुभ ग्रह की तरह धीरे-धीरे आकर दरवाजे के आगे खड़ा हो गया।

सब ने सिर उठाकर देखा और सबके चेहरे पर एक परिवर्तन का भाव दीख पड़ा।

केदार बाबू ने मुर्झाये हुए चेहरे पर जबरन हँसी लाकर उसका स्वागत किया—'आओ महिम। कुशल-मंगल तो है ?'

महिम नमस्कार करके भीतर आकर बैठ गया। घर पर इतनी देर होने का कारण पूछने पर जवाब में उसने सिर्फ़ यही बताया 'कि, ज़रूरी काम था।' सुरेश टेबिल के ऊपर से उस दिन का अखबार हाथ में लेकर पढ़ने लगा और अचला पास की कुर्सी पर से अपना 'कसीदा' लेकर उसमें मशगूल हो गयी। इसलिये अकेले केदार बाबू के साथ ही बातचीत चलने लगी।

अचानक एक बार अचला उठकर बाहर गयी और एक मिनट के बाद फिर वापस आकर बैठ गयी। एक क्षण के बाद ही सिर के ऊपर का पंखा धीरे-धीरे चलने लगा। एकाएक हवा पाकर केदार बाबू ख़ुश होकर बोल उठे—'यह भी ख़ैर समझो। पंखा खींचनेवाले की दया तो इतनी देर बाद हुई।'

सुरेश ने तीखी और तिरछी नज़र से देख लिया—महिम का माथा पसीने से तरबतर हो रहा था। अचला उठकर बाहर क्यों गयी थी, और पंखेवाले की अकारण दया क्योंकर हुई, यह सारा इतिहास उसके मस्तिष्क में बिजुली की भाँति चमक उठा। जिस हवा को पाकर केदार बाबू इतने ख़ुश हुए, वही हवा उसके अंग-अंग को जलाने लगी। वह अचानक घड़ी देखकर तीखे स्वर में बोल उठा—'पाँच बज गये अधिक देर करने से काम नहीं चलेगा केदार बाबू।'

केदार बाबू ने बातचीत बन्द करके चाय के लिये आवाज़ दी और बेहरा ने फ़ौरन सारा सरंजाम हाजिर कर दिया। कसीदे को रखकर

अचला ने दो प्याले चाय तैयार करके सुरेश और पिता के आगे रख दी। उन्होंने पूछा—'क्या तुम नहीं पियोगी बेटी ?'

अचला गर्दन हिलाकर बोली—'नहीं पिताजी, बड़ी गर्मी है !'

अचानक महिम की ओर उनकी नज़र पड़ते ही बेचैनी से बोल उठे—'अरे महिम को चाय नहीं दी ! तुम क्या चाय नहीं पियोगे महिम ?'

उसके जवाब देने से पहले ही अचला मुड़कर खड़ी हो गयी और उसके मुँह की ओर देखकर स्वाभाविक मृदु स्वर में बोली—'नहीं, इतनी गर्मी में तुम्हें चाय पीने की ज़रूरत नहीं। इसके अलावा, इस वक्त तो चाय तुम्हें बर्दाश्त भी नहीं होती।'

महिम के सीने पर से जैसे किसी ने भारी पत्थर सरीखे वज़न को जादू-मंत्र से ठेलकर गिरा दिया हो। वह कुछ कह न सका, सिर्फ़ अव्यक्त विस्मय के साथ टकटकी लगाये देखता रहा। अचला ने कहा—'ज़रा ठहरो, मैं तुम्हारे लिये 'लाइमजूस' का शरबत तैयार किये देती हूँ।' यह कहकर हाँ-ना की प्रतीक्षा किये बिना ही कमरे से बाहर हो गयी। सुरेश एक ओर मुँह फिराकर मशीन के पुतले को भाँति धीरे-धीरे चाय पीने तो लगा, लेकिन चाय का प्रत्येक घूट उसके लिये फीका और कड़वा बन गया था।

चाय-पानी खत्म करके केदार बाबू जल्दी-जल्दी कपड़े बदलकर तैयार होकर आये, तो देखते हैं—अचला अपनी जगह पर बैठी हुई अपने कसीदे में मसगूल है। व्यग्र और आश्चर्यान्वित होकर बोले—'अब भी बैठकर कसीदे काढ़ रही हो, तैयार नहीं हुई ?'

अचला सिर उठाकर थकी-सी हुई बोली—'मैं नहीं जाऊँगी पिताजी !'

'जाओगी नहीं ! यह कैसी बात है ?'

'नहीं, पिताजी, आज तुम लोग जाओ—मेरी तबियत सुस्त है।' यह कहकर थोड़ा मुस्कुरायी।

सुरेश ने अभिमान व आंतरिक क्रोध को दबाकर कहा—'चलिये केदार बाबू आज हमही लोग चलें। शायद उनकी तबियत ठीक नहीं है, जबर्दस्ती करने की ज़रूरत क्या है ?'

केदार बाबू उसकी ओर देखते ही उसके भीतरी क्रोध को भाँप गये। कन्या से बोले—'क्या तुम्हारी तबियत खराब है ?'

अचला ने कहा—'नहीं, पिताजी तबियत खराब क्यों होगी, मैं अच्छी ही हूँ।'

सुरेश महिम की ओर बिल्कुल पीठ किये खड़ा था। उसके मुख का भाव समझ नहीं सका; बोला—'हम चलें केदार बाबू! उन्हें घर पर कोई ज़रूरी काम होगा—जबर्दस्ती ले जाने की ज़रूरत क्या है ?'

केदार बाबू ने कड़े स्वर में पूछा—'घर पर तुम्हें कोई काम है ?'

अचला ने सिर हिलाकर कहा—'नहीं !'

केदार बाबू एकाएक चिल्ला उठे—'कहता हूँ चलो। बेअदब जिद्दिन लड़की !'

अचला के हाथ का कसीदा खिसककर नीचे गिर पड़ा। वह दंग रह गई। आँखें फाड़कर पहले सुरेश की ओर, बाद में पिता की ओर देखकर एकाएक मुँह फेरकर जल्दी से उठकर चली गई।

सुरेश लज्जित होकर बोला—'आप हर बात में जबर्दस्ती करते हैं। किन्तु मैं अधिक देर रुक नहीं सकता—आज्ञा हो तो जाऊँ।'

केदार बाबू अपने अशिष्ट आचरण पर मन ही मन लज्जित हो रहे थे—सुरेश की बात पर क्रुद्ध हो गये पर वह क्रोध जा पड़ा महिम के ऊपर। वह अत्यन्त व्यथित और क्षुब्ध होकर उठना ही चाहता था। केदार बाबू बोले—'तुम्हें क्या कोई ज़रूरी काम है महिम ?'

महिम अपने पर काबू करके उठ खड़ा हुआ और बोला—'नहीं।'

केदार बाबू चलने के लिये तैयार होकर बोले—'अच्छा, तो आज हम लोग ज़रा जल्दी में हैं। किसी दिन फिर आना—'

महिम ने कहा—'जैसी आज्ञा, आऊँगा। किन्तु आने का क्या कोई विशेष प्रयोजन है ?'

केदार बाबू सुरेश को सुनाकर बोले—'मेरा अपना कोई प्रयोजन नहीं। फिर भी, अगर ज़रूरी समझो तो आना—एक-दो बातों पर विचार किया जायगा।'

तीनों जने बाहर निकल पड़े। नीचे आकर सुरेश ने महिम की ओर देखा तक नहीं और केदार बाबू के साथ अपनी गाड़ी पर जा बैठा। कोचवान ने गाड़ी हाँक दी।

महिम कुछ दूर आगे बढ़ा ही था कि पीछे से अपना नाम सुनते ही घूमकर देखा—केदार बाबू का बेहरा! वह बेचारा हाँफता हुआ नज़दीक आकर एक कागज का टुकड़ा हाथ में दिया। उस पर पेंसिल से सिर्फ़ लिखा था—'अचला।' बेहरा ने कहा—'एक बार आपको बुलाया है।'

लौटकर आने पर सीढ़ी पर पैर रखते ही देखता है—अचला सामने खड़ी है। उसके लाल आँखों की पलकें अब भी गीली हैं। नज़दीक आते ही बोल उठी—'तुम अपने कसाई मित्र—जो तुम्हारे साथ इतनी बड़ी दगाबाजी कर सकता है—के हाथ क्या मुझे जबह करने के लिए छोड़े जा रहे हो? यह कहकर फूट-फूटकर रोने लगी।

महिम दंग होकर खड़ा रह गया। दो-एक मिनट बाद अचला आँचल से आँखें पोंछकर बोली—'मुझे शर्म करने का अब समय नहीं। ज़रा मैं तुम्हारा दाहिना हाथ देखूँ।' यह कहती हुई महिम का दाहिना हाथ खींचकर अपनी अँगुली से सोने की अँगूठी निकालकर उसकी अँगुली में पहनाकर बोली—'अब मैं अधिक सोच-विचार नहीं कर सकती। अब तुम्हें जो करना हो करो।' यह कह झुककर महिम के पाँव छूकर नमस्कार करके धीरे-धीरे घर में चली गई।

महिम ने हाँ ना कुछ कहा नहीं। बहुत देर तक रेलिंग के सहारे चुपचाप खड़ा रहा। फिर धीरे-धीरे उतरकर घर से बाहर हो गया।

११

शाम के बाद सिर झुकाए धीरे-धीरे महिम जब अपने डेरे की ओर जा रहा था, उस वक्त, उसके चेहरे को देखकर कोई नहीं कह सकता कि ठीक उसी समय उसके दिल को इतनी सख्त तकलीफ थी कि उसकी जान कलेजे को छेदकर बाहर निकलने की कोशिश कर रही थी। कैसे सुरेश यहाँ आया, किस तरह ऐसा घनिष्ठ परिचय कर लिया—इस तरह की छोटी-मोटी घटनायें उसकी समझ में नहीं आईं सही, पर असल बात अब उससे छिपी न रह सकी। केदार बाबू को वह पहचानता था। जब एक बार उन्होंने रुपये की गन्ध ले ली है, उस तरफ से सहज ही वे किसी तरह भी मुँह नहीं फेर सकते, इसमें उसे तिलमात्र भी संशय न था। सुरेश को भी वह बचपन से ही अनेक रूप में देखता आ रहा है। सयोग से जिसे वह प्यार करता है, उसे प्राप्त करने के लिये वह कौन-सी चीज़ है जिसे वह नहीं दे सकता, इसकी कल्पना भी कठिन है। रुपया तो कोई चीज़ नहीं—यह तो हमेशा से ही उसके लिये एक अत्यन्त तुच्छ वस्तु रहा है। एक दिन उसी के लिये जिसने मुंगेर की गङ्गा में अपने प्राणों तक की भी परवाह न की थी, आज अगर वह किसी दूसरे के प्रेम के प्रबल मोह में फँसकर उसी महिम की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता, तो उसे वह दोष कैसे दे सकता है? इसलिये उसने इन सारी बातों को एक मर्मान्तिक दुर्घटना समझने के सिवा किसी भी व्यक्ति को किसी भी तरह दोषी ठहराने की कोशिश न की। किन्तु यह जो इतनी विरुद्ध एवं प्रचण्ड शक्तियाँ उसके सामने अचानक आ खड़ी हुई हैं, उन्हें

कुचलकर अचला उसके पास आ जायगी, ऐसा विश्वास उसे था नहीं। इसलिये उसकी आखिरी बात, उसका शेष आचरण महिम को कुछ देर तक चञ्चल करने के सिवा वस्तुतः किसी तरह का भरोसा न दे सकी। अँगूठी की ओर बार-बार देखकर भी उसे रत्ती भर भी सान्त्वना न मिली। फिर भी, कोई न कोई निर्णय हो जाना अत्यन्त आवश्यक था। इस तरह अपने को भुलावे में डालकर अब एक क्षण भी नहीं रहा जा सकता। जो होनाहै सो हो, पर एक अंतिम निर्णय उसे करना ही पड़ेगा। यह संकल्प स्थिर करके ही आज वह अपने दीन-हीन छात्रावास में आठ बजे रात के बाद उपस्थित हुआ।

दूसरे दिन तीसरे पहर केदार बाबू के घर जाने पर उसे पता चला कि वे सब अभी-अभी बाहर गये हैं—कहीं न्योता है। उसके दूसरे दिन जाने पर भी मुलाकात न हुई। बेहरा ने बताया—'सब कोई बायस्कोप देखने गये हुए हैं, लौटते-लौटते रात हो जायगी। 'सब' में कौन-कौन हैं, इसे बिना पूछे ही महिम ने अनुमान कर लिया। अपमान और अभिमान चाहे जितना भी बड़ा क्यों न हो, लगातार दो-दो दिन जाकर लौट आना ही उस जैसे आदमी के लिये काफी था; किन्तु, हाथ में पड़ी हुई अँगूठी ने उसे अपने डेरे पर टिकने नहीं दिया, दूसरे दिन फिर उसे ठेलकर जाने को मजबूर कर ही दिया। आज सुना कि 'बाबू घर पर हैं—ऊपर के कमरे में बैठकर चाय-पानी कर रहे हैं!' महिम को द्वार पर खड़ा देखकर केदार बाबू ने सिर उठाकर गंभीर स्वर में सिर्फ़ इतना कहा—'आओ महिम।' महिम ने हाथ उठाकर मौन नमस्कार किया।

कुछ दूर पर खुली खिड़की के पास एक सोफ़े पर अगल-बगल अचला और सुरेश बैठे थे। अचला की गोद में तस्वीरों की एक भारी किताब पड़ी थी। दोनों जने मिलकर तस्वीरें देख रहे थे। सुरेश ने एक नज़र देख, फिर तस्वीरें देखने में दत्तचित्त हो गया; किन्तु अचला आँख उठाकर भी न देखी। उसका झुका हुआ चेहरा दिख तो नहीं

रहा था, लेकिन वह जिस प्रकार अत्यन्त आग्रह के साथ किताब के पन्नों की ओर झुकी रही, उससे ऐसा सोचना बिल्कुल अनुचित नहीं होता, कि पिता का कण्ठ-स्वर और आगन्तुक का पद-शब्द—कुछ भी उसके कानों में नहीं पड़ा।

महिम कमरे में घुसकर एक कुर्सी खींचकर बैठ गया! केदार बाबू मिन्टों तक कुछ बोले नहीं—एक-एक घूँट करके चाय पीने लगे। जब प्याला खाली हो गया और चुप बैठे रहना बिल्कुल नामुमकिन हो गया तब उस प्याले को नीचे रखते हुए बोले--'अच्छा, अब तुम क्या कर रहे हो? तुम्हारे कानून की परीक्षा-फल निकलने में मालूम पड़ता है अभी एक महीने की देर होगी।'

महिम ने सिर्फ़ कहा--'जी हाँ।'

केदार बाबू ने कहा—'अगर तुम पास हो ही गये—और पास तुम हो ही जाओगे, इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं—किन्तु, कुछ दिन प्रैक्टिस करके जब तक कुछ रुपये जमा न कर लो, तब तक किसी दूसरी तरफ़ ख्याल नहीं दौड़ा सकते? 'क्या बोलते हो सुरेश, महिम की आर्थिक स्थित, सुनता हूँ उतनी अच्छी तो नहीं है।'

सुरेश ने कुछ कहा नहीं। महिम ज़रा मुस्कराकर धीरे-धीरे बोला—'प्रैक्टिस करने पर भी रुपये जमा हो जायेंगे, इसका भी तो कोई निश्चय नहीं।'

केदार बाबू ने सिर हिलाकर कहा—'नहीं, नहीं भी हो सकता—यह तो ईश्वर के हाथ में है, लेकिन प्रयत्न करने पर कोई काम असंभव नहीं। हमारे शास्त्रकारों का कथन है—'पुरुष सिंह—'; तुम्हें वैसा ही पुरुष सिंह बनना पड़ेगा। और किसी तरफ़ ख्याल करने की ज़रूरत नहीं—सिर्फ़ तरक्क़ी और तरक्क़ी। इसके बाद गृहस्थी—जैसी इच्छा हो करो, कोई दोष नहीं—नहीं तो महापाप!' यह कहकर सुरेश की ओर एक बार देखकर बोले—'क्यों भई सुरेश, उनकी परवरिश नहीं कर सकते, बाल-बच्चों को पढ़ा-लिखा नहीं सकते—ऐसे ही तो हिन्दू गारत

हुए। हम ब्रह्मसमाजी भी अगर अच्छे आदर्श न दिखा सकें तो सभ्य-जगत के सामने किसी भी तरह मुँह न दिखा सकेंगे, ठीक है कि नहीं ! क्या कहते हो सुरेश !'

सुरेश पहले की तरह चुप रहा। महिम भीतर-ही-भीतर असहिष्णु होकर बोला—'मैं आपका उपदेश याद रखूँगा। किन्तु, क्या आपने यही सब आलोचना के लिए मुझे आने को कहा था ?'

केदार बाबू उसके मन का भाव समझ गये; बोले—'नहीं, सिर्फ़ यही नहीं, और भी बातें हैं, किन्तु —' यह कहकर सोफ़ा की ओर देखने लगे।

सुरेश उठकर खड़ा हो गया और बोला—'हम लोग ज़रा उस कमरे में जाकर बैठते हैं।' यह कह झुककर अचला की गोद से तस्वीर की किताब उठा ली। मगर उसका यह इशारा अचला के निकट बिल्कुल ही बेकार रहा। वह जैसे बैठी थी, उसी तरह रही, उठने की ज़रा भी कोशिश न की। केदार बाबू यह देखकर बोले—'तुम दोनों थोड़ा उस कमरे में जाकर बैठो तो बेटी, महिम के साथ मुझे कुछ बात करना है।'

अचला ने सिर उठाकर पिता के मुख की ओर देखकर सिर्फ़ इतना कहा—'मैं रहूँ पिताजी !'

सुरेश ने कहा—'अच्छा, ठीक है, मैं ही जा रहा हूँ।' यह कहकर कुछ नाराज़ी से हाथ की किताब अचला की गोद में फेंक भन-भनाता हुआ कमरे से बाहर हो गया।

अपनी कन्या की जिद्द पर केदार बाबू खुश न हुए, यह उनके चेहरे से ही झलक गया, किन्तु ज़िद्द भी उन्होंने नहीं की। थोड़ी देर मुँह फुलाकर चुप बैठे रहने के बाद बोले—'महिम, तुम यह न समझना, मैं तुमसे नाराज़ हूँ, बल्कि तुम्हारे प्रति मेरी अधिक श्रद्धा है। इसीलिए मित्र की भाँति सलाह दे रहा हूँ, कि अभी किसी तरह की जिम्मेदारी लेकर अपने को बेकार मत बनाओ। अपनी तरक्की

करो, कामयाब होवो, इसके बाद ज़िम्मेदारी उठाने के लिये क़ाफी मौक़ा आवेगा।'

महिम ने फिरकर एक बार अचला की ओर देखा। उसने तुरत आखें नीची कर लीं। तब उसके पिता की ओर देखकर कहा—'आपकी आज्ञा शिरोधार्य; लेकिन आपकी कन्या की भी क्या यही इच्छा है?'

केदार बाबू तत्क्षण बोल उठे—'ज़रूर! ज़रूर!' फिर थोड़ी देर चुप रहने के बाद बोले—'कम से कम इतना तो निश्चय समझो कि सब कुछ जान-सुनकर मैं अपनी कन्या तुम्हारे हाथ नहीं सौंप सकता।'

महिम ने शान्त स्वर में कहा—'अंग्रेज़ों में एक यह रवाज है कि ऐसी हालत में वे एक दूसरे का इन्तजार करते हैं। क्या आपका भी यही मंशा मैं समझूँ?'

केदार बाबू एकाएक आग-बबूला होकर बोल उठे—'देखो महिम, मैंने हलफ़ लेने के लिये तुम्हें नहीं बुलाया है। तुम जिस तरह का व्यवहार हम लोगों के साथ कर रहे हो, अगर कोई दूसरा बाप होता तो महाभारत मच जाता। किन्तु, मैं अत्यन्त शान्ति-प्रिय व्यक्ति हूँ, किसी तरह का गोलमाल या हंगामा पसंद नहीं करता, इसीलिये जहाँ तक हो मीठे शब्दों में मैंने अपने मन का भाव तुम्हें जता दिया। अब तुम इन्तजार करोगे या नहीं, साहेब लोगों में क्या रवाज़ है, इतनी क़ैफ़ियत की हमें ज़रूरत नहीं। इसके अलावा, हम अंग्रेज नहीं, बंगाली हैं; हम लोगों की कन्याएँ बड़ी होते ही माँ-बाप की नींद हराम कर देती हैं, मुँह में अन्न-जल नहीं रुचता, इस बात को क्यों तुम खुद नहीं समझे?'

पलक-मात्र में महिम का चेहरा लाल हो उठा, फिर भी उसने दिल को काबू में रख आहिस्ते से कहा—'मैंने ऐसी कौन-सी हरकत की है जिसके लिये किसी दूसरी जगह महाभारत मच जाता—यह सवाल मैं आपसे नहीं करना चाहता। सिर्फ़ आपकी कन्या के मुख से एक-बार सुनना चाहता हूँ—उनकी भी यही मंशा है या नहीं।' यह

कहकर ख़ुद उठकर अचला के सामने जा खड़ा हुआ और बोला—'क्या, यही बात है ?'

अचला ने न तो सिर उठाया, और न कुछ कहा।

दिल की कसक को जबरन रोकते हुए महिम ने फिर कहा—'तुम्हारे मन की बात एकान्त में जानने, या पूछकर जानने का मौक़ा मुझे मिला नहीं—इसके लिए मैं माफ़ी चाहता हूँ। उस रोज़ शाम के वक्त सनक में आकर जो काम कर बैठी हो, उसके लिए भी मैं तुम पर जवाबदेही नहीं डालता। सिर्फ़ एक बार कह दो—'उस अँगूठी को वापस चाहती हो या नहीं ?'

सुरेश ने तेज़ी से कमरे में घुसकर कहा—'केदार बाबू मुझे माफ़ कीजियेगा, मैं अब एक मिनट के लिए भी नहीं ठहर सकता।'

उपस्थित सभी व्यक्ति मौन-विस्मय के साथ आँखें फाड़कर देखते रहे। केदार बाबू पूछ बैठे—'क्यों ?'

सुरेश अभिनय के रूप में दोनों हाथों को मटकाकर बोला—'नहीं, नहीं—इस भूल की कोई क्षमा नहीं। मेरा प्रिय मित्र प्लेग का शिकार होकर मृत्यु-शैया पर पड़ा हुआ है, और मैं सब भूलकर यहाँ वृथा समय गंवा रहा हूँ।'

केदार बाबू घबड़ाकर बोले—'क्या कहते हो सुरेश, प्लेग ? क्या तुम जाओगे वहाँ ?'

सुरेश ज़रा हँसकर बोला—'निश्चय ! बहुत पहले ही मेरा वहाँ जाना उचित था।'

केदार बाबू अत्यन्त शंकित हो उठे। बोले—'लेकिन प्लेग जो है ! वे क्या तुम्हारे कोई अपने रिश्तेदार—'

सुरेश ने कहा—'अपना ! अपने से भी बढ़कर, केदार बाबू !' महिम की ओर कटाक्ष करके यह पहली बात उसने कही। फिर बोला—'महिम, अपने निशीथ को कल रात से ही प्लेग हो गया है, बचेगा,

इसकी उम्मीद नहीं। मुझे एक बार तुमसे भी कह देना उचित है—चलोगे देखने ?'

महिम निशीथ को न पहचान सका। बोला—'कौन निशीथ ?'

'कौन निशीथ ? क्या कहते हो महिम ? इतनी जल्दी अपने निशीथ को भूल गये ? जिसके साथ सारा सेकण्ड इयर पढ़े, उसकी इस विपत्ति के दिन में उसे भूल गये ?' यह कहकर गर्दन फिराकर एक बार अचला के मुख की ओर देख ताना देकर बोला—'याद क्यों आयेगा ! प्लेग जो है !'

इस ताना को चुपचाप सहकर महिम ने पूछा—'वे क्या भवानीपुर से आते थे ?'

सुरेश ने व्यंग्यकर कहा—'जी हाँ ! लेकिन निशीथ दो-चार तो थे नहीं महिम, जो अब तक तुम्हें याद न आये। बोलो चलोगो ?'

महिम ने पहचानकर कहा—'निशीथ आजकल कहाँ रहता है ?'

सुरेश ने कहा—'और किस जगह ? अपने घर भवानीपुर में। इस समय उसे एक बार देखना क्या कर्त्तव्य नहीं समझते ? मैं डाक्टर हूँ, मुझे तो जाना ही पड़ेगा; और इतनी बड़ी मित्रता अगर भूल नहीं गये हो, तो तुम भी मेरे साथ चल सकते हो। केदार बाबू, समझता हूँ आप लोगों की बातचीत खत्म हो गई होगी। उम्मीद करता हूँ, कम से कम कुछ देर के लिये भी इन्हें एक बार छुट्टी दे सकेंगे ?'

यह कटाक्ष फिर किसके ऊपर किया गया, इसे अच्छी तरह न समझकर, केदार बाबू व्यग्र हो उठे और एक बार महिम के ओर एक बार कन्या के मुख की ओर देखने लगे। उनके इस धनवान भावी दामाद का मिजाज कैसे और किस तरह बिगड़ जाता है इस बात को वृद्ध महाशय आज तक ठीक तरह से न जान पाये थे। उनके मुख से कोई बात न निकली। महिम भी हतबुद्धि की तरह चुपचाप देखता रहा।

देखते ही देखते अचला का सारा मुँह लाल हो उठा—वह धीरे से आकर हाथ की किताब सामने की टेबिल पर रखती हुई इतनी देर बाद बोली—'तुम डाक्टर हो, तुम्हारा तो जाना ही उचित है; किन्तु उनकी वकालत की किताबों में प्लेग की चिकित्सा तो लिखी हुई नहीं है ! वे जायेंगे क्यों, मैं ज़रा सुनूँ !'

सुरेश को ऐसे जवाब की कतई उम्मीद न थी, वह अवाक् हो गया। किन्तु दूसरे ही क्षण बोल उठा—'मैं उस जगह डाक्टरी करने तो जा नहीं रहा हूँ, उसे डाक्टरों की कमी नहीं। मैं जा रहा हूँ मित्र की सेवा करने। मित्रता को मैं अपने प्राणों से भी बढ़कर समझता हूँ।'

एक निठुर हँसी की आभा अचला के होठों पर नाच उठी। वह बोली—'सभी तुम्हारे जैसे ही महान बन जायँ, ऐसी तो कोई बात नहीं। मित्रता का इतना बड़ा ज्ञान अगर उनमें नहीं है तो मैं इसमें शर्म की बात नहीं समझती। चाहे कुछ भी हो, उनको किसी भी हालत में वहाँ न जाने दिया जायगा।

सुरेश का चेहरा स्याह हो गया। केदार बाबू सशंक हो उठे। डरकर बोलने लगे—'यह सब तू क्या बोल रही है अचला ? सुरेश जैसा—ठीक ही तो—निशीथ बाबू जैसे—'

अचला प्रतिवाद करती हुई बोल उठी—'निशीथ बाबू को तो पहले पहचान पाये नहीं। इसके अलावा वे हैं डाक्टर—वे जा सकते हैं। लेकिन और किसी को विपत्ति में घसीटने की ज़रूरत क्या है !'

आहत होने पर सुरेश की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती। वह टेबिल के ऊपर बड़े ज़ोर से घूँसा मारकर जो कुछ मुँह में आया चिल्ला-चिल्लाकर बकने लगा—'मैं डरपोक नहीं—प्राणों की परवाह नहीं करता।' महिम को संकेत करके बोलने लगा—'इस नमकहराम से ही पूछकर देखो, मैंने इसे मरने से बचाया था या नहीं !'

अचला कड़ककर बोली—'नमकहराम हैं वे ! खून ! लेकिन जिसे एक बार बचाया जाय, क्या दूसरी बार जानबूझकर उसका खून किया जा सकता है ?'

केदार बाबू हतबुद्धि की तरह कहने लगे—'ठहरो अचला, ठहरो सुरेश ! यह सब क्या मामला है ज़रा बताओ तो ?'

सुरेश आँखें लालकर केदार बाबू की ओर देखकर बोला—'मैं लेग के बीच जा सकता हूँ—इसमें कोई दोष नहीं ! महिम की ही जान तो जान है, और मेरी कुछ नहीं ! देखा आपने !'

लज्जा और क्षोभ से अचला रो पड़ी। रुँधे हुए गले से बोलने लगी—'अपनी जान वे दे सकते हैं, मैं मना नहीं कर सकती; लेकिन जहाँ रोकने का मेरा पूरा हक़ है, वहाँ मैं रोकूँगी ही। मैं किसी भी तरह उन्हें वैसी जगह जाने नहीं दे सकती।' यह कहकर वह जाने की तैयारी कर ही रही थी, कि केदार बाबू डाँटकर बोल उठे—'कहाँ जाती है अचला ?'

अचला ठिठककर खड़ी हो गई, बोली—'नहीं पिताजी, दिन-रात इतना ज़ुल्म मुझसे बर्दाश्त नहीं हो सकता, जो बिल्कुल असम्भव है, जिसे प्राण रहते मैं किसी भी तरह स्वीकार नहीं कर सकती, उसी को लेकर तुम लोग रात-दिन मुझे तंग करते हो—' यह कहकर उमड़ती हुई रुलाई के वेग को रोकती हुई तेज़ी से कमरे से बाहर निकल गई। बूढ़े केदार बाबू हक्के-बक्के कुछ देर तक ताकते रहे, अन्त में बार-बार कहने लगे—'क्या नासमझी है—यह सब क्या मामला है !'

१२

क़रीब महीने के बीत चुका है। केदार बाबू राज़ी हो गये हैं—महिम के साथ अचला की शादी आ गई। रविवार को होने के लिये पक्की हो चुकी है। उस दिन जैसा उत्पात मचाकर सुरेश गया था, उससे

दरअसल केदार बाबू के दिल को चोट पहुँची थी। किन्तु उस दिन के बेइज्ज़ती का ख्यालकर महिम से ख़ुश हो उन्होंने अपनी रज़ामन्दी दी हो, ऐसी बात नहीं। सुरेश ख़ुद न जाने कहाँ ग़ायब हो गया था—इतने दिनों तक उसका कोई पता न लग सका। सुनने में आया, वह उसी रात को न जाने पछाँह की तरफ़ किसी जगह चला गया—कब लौटेगा, कोई नहीं बता सका।

उस दिन जब रुलाई को रोकती हुई अचला कमरे से बाहर हो गई, तब बहुत देर तक तीनों जने मुँह फुलाये बैठे रहे। लेकिन बात कहना शुरू किया सबसे पहले सुरेश ने ख़ुद। केदार बाबू के मुँह की ओर देखकर बोला—'अगर आपत्ति न हो, तो मैं आपके सामने ही आपकी कन्या से कुछ बातें करना चाहता हूँ।'

केदार बाबू व्यग्र होकर बोले—'आश्चर्य! तुम बात करोगे, इसमें मुझे आपत्ति क्यों होगी सुरेश? क्या नादानी है!'

'तो एक बार बुला भेजिये, मेरे पास ज्यादा वक्त नहीं है।'

उसके मुख और कंठ-स्वर में अस्वाभाविक गम्भीरता देख केदार बाबू मन-ही-मन शंकित हो उठे। किन्तु चेहरे पर जबर्दस्ती हँसी लाकर, फिर वही सुर अलापने लगे--'सबके सब नादान ही रहे! लेकिन थोड़ा-सा न सँभलने से—समझे न सुरेश, ब्लेग-ब्लेग का नाम सुनते ही—आखिर लड़कियों का ही तो दिल ठहरा न। एक बार सुनते ही होश-हवाश गायब—समझते हो न बेटा—'

सुरेश के दिल की हालत किसी भी तरह की कैफ़ियत सुनने के लायक़ नहीं थी। बेसब्री से बोले—'मैं सच कहता हूँ केदार बाबू, इन्तज़ार करने का मेरे पास वक्त नहीं।

'सो तो ठीक है! सो तो ठीक है। वहाँ कौन है रे?' पुकारते हुए केदार बाबू ने महिम की ओर टेढ़ी निगाह से देखा। महिम उठकर खड़ा हो गया और नमस्कार करके चुपचाप कमरे से बाहर हो गया।

केदार बाबू जब खुद जाकर अचला को बुला लाये, उस वक्त अपराह्न-सूर्य की रक्तिम आभा पश्चिम वाली खिड़की में से घरके भीतर थिरक रही थी। इस आलोक में उस तरुणी का छरहरा बदन चमक उठा। उसकी ओर देखकर सुरेश के विक्षुब्ध मन पर क्षण भर के लिए मोह और पुलक का स्पर्श खेल गया, किन्तु वह स्थिर न रह सका। उसके चेहरे पर नज़र पड़ते ही उसका यह भाव पलक मारते ही विलुप्त हो गया। लेकिन, फिर भी वह आँखें फेर न सका, एकटक देखता हुआ स्तब्ध होकर बैठा रहा। यह ठीक है कि अचला के मुख पर सीधे आकाश से आलोक पड़ नहीं रहा था, लेकिन सामने की दीवाल पर प्रतिफलित आरक्त आभा से उसका सारा चेहरा सुरेश की आँखों में ब्रोञ्ज की बनी मूर्ति की तरह प्रतीत हुआ। वह साफ़ देख रहा था—मानो एक घोर पितृष्णा से इस नारी का समस्त माधुर्य, समस्त कोमलता, शुष्क होकर चेहरे की नस-नस तक एकदम धातु की तरह कठोर बन गयी है। सहसा, केदार बाबू की लम्बी साँस कान में पड़ते ही चौंककर सुरेश सीधा होकर बैठ गया।

केदार बाबू फिर एक बार अपने पिछली बात को दुहराते हुए बोले—'यह सब पागलपन की बातें,—किससे क्या कहूँ, कुछ समझ में नहीं आता—'

सुरेश ने अचला को लक्ष्य करके अत्यन्त गम्भीर स्वर में पूछा—'आपने अभी जो कहा वही ठीक है?'

अचला ने गदन हिलाकर कहा—'हाँ!'

'अब इसमें कोई भी रद्दोबदल की गुंजाइश नहीं?'

अचला ने सिर हिलाकर कहा—'नहीं।'

रगों में खून की दौरान से सुरेश का चेहरा तमतमा उठा; लेकिन उसने कंठ-स्वर को मुलायम करके ही कहा—'जब मेरे प्राणों तक की कोई कीमत नहीं, तभी मैं समझ गया।' उस वक्त उसका हृदय भीतर से जल रहा था। कुछ स्थिर होकर बोला—'अच्छा, पूछता हूँ—मैं ही

क्या आप लोगों का पहला शिकार हूँ, या मेरे जैसे और भी कितने इस जाल में पड़कर धोखा खा चुके हैं !'

असह्य विस्मय के साथ अचला दोनों आँखें फाड़कर देखने लगी। सुरेश ने केदार बाबू की ओर देखकर कहा—'बाप-बेटी का मिलकर षड्यन्त्र करके शिकार पकड़ने का व्यापार बिलायत में, सुनता हूँ नया नहीं है, लेकिन; यह भी कहे देता हूँ केदार बाबू, आप लोगों को किसी दिन जेल की हवा खानी पड़ेगी !'

केदार बाबू चिल्ला उठे—'यह सब तुम क्या बक रहे हो सुरेश !'

सुरेश ने दृढ़ स्वर में उत्तर दिया—'चुप रहिये केदार बाबू; नाटक का अभिनय बहुत दिन तक चला। पुराना भी हो गया—कम से कम मैं इसे नहीं भूलने का। मेरे रुपये गये सो गये—इसके बदले में मुझे नसीहत भी कम नहीं मिली; लेकिन यहीं अब इसका आखीर हो जाना चाहिए।

अचला रो पड़ी—'तुमने क्यों इनसे रुपये लिए पिता जी ?'

केदार बाबू पागल की तरह एक टुकड़ा सादा कागज़ के लिए इधर-उधर हाथ बढ़ाने लगे, बाद में एक पुराने अख़बार को ज़ोर से खींचकर चिल्ला उठे—'मैं अभी हैंडनोट लिखे देता हूँ।'

सुरेश बोला—'रहने दीजिये—रहने दीजिये, लिखा-पढ़ी की अब कोई ज़रूरत नहीं ! आप जैसे रुपये अदा करेंगे, सो मैं समझता हूँ। लेकिन मैं भी इन थोड़े से रुपये के लिए नालिश करके आपके साथ अदालत में जाकर खड़ा नहीं हो सकता।'

जवाब देने के लिए केदार बाबू के दोनों होंठ फड़फड़ाने लगे, लेकिन ज़बान न खुली।

सुरेश अचला की ओर फिरकर देखने लगा। उसके बिलकुल सूखे हुए चेहरे और डबडबाई हुई आँखों को देखकर भी उसे रत्ती भर दया न आई, बल्कि हृदय की जलन सौगुनी बढ़ गई। वह पैशाचिक निष्ठुरता के साथ बोल उठा—'तुम्हें किस चीज़ पर नाज़ है, अचला—यह तो है तुम्हारे मुख की सुन्दरता, यह काठ की तरह देह,

और यह शरीर का रंग ! फिर भी जो मैं लट्टू हो गया था--सो क्या तुम्हारे रूप पर ! ऐसा कभी सोचना मत ।'

पिता के सामने इस निर्लज्ज अपमान से आहत होकर अचला दुख और घृणा से दोनों हाथों से आँखें ढक कोच पर औंधी पड़ी रही ।

सुरेश खड़ा होकर बोला—'ब्राह्मों को मैं फूटी आँखों भी नहीं देख सकता । जिनकी छाया मात्र से घृणा होती थी, उनके घर में घुसते ही जब मेरे जन्म भर के संस्कार—इतने दिनों के विद्वेष क्षण भर में लुप्त हो गये, उसी वक्त मुझे शक होना चाहिये था—यह जादू की करामात है ! मेरा जो कुछ हुआ सो हुआ, लेकिन जाते वक्त आप लोगों को शाबाशी दिये बग़ैर मैं जा नहीं सकता । धन्यवाद अचला !'

अचला मुँह नीचे किये हुए ही रुँधे हुए गले से बोल उठी—पिता जी, उन्हें ज़बान बन्द करने को कहो, हम पेड़ के नीचे रहेंगे, वह भी अच्छा—लेकिन उनसे जो कुछ लिये हो, उसे लौटा दो—

सुरेश उठकर बोला—'पेड़ के नीचे ! एक रोज़ यह भी तुम लोगों को नसीब न होगा, यह मैं कहे देता हूँ । लेकिन, उस रोज़ मुझे याद करना ।' यह कहकर किसी जवाब के लिये बिना रुके ही बड़ी जल्दी घर से बाहर हो गया ।

केदार बाबू कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहे । अन्त में एक लम्बी साँस लेकर बोले—'उफ्, कैसा ख़तरनाक आदमी है । अगर यह जानता होता तो क्या मैं कभी उसे घर में घुसने देता !'

पिता की बात अचला के कान में पड़ी, लेकिन वह कुछ बोली नहीं; औंधी होकर जिस तरह रो रही थी, उसी तरह बहुत देर तक चुपचाप आँसू बहाती रही । बगल की चौकी पर बैठकर केदार बाबू यह सब देखने लगे, किन्तु धीरज बँधाने के लिये एक शब्द भी मुँह से निकालने का साहस न कर सके । शाम हो गई । बेहरा ने ज्योंही रोशनी जलाने की तैयारी की अचला चुपचाप उठकर कमरे से बाहर हो गई ।

किन्तु, महिम को इन बातों का ज़रा भी पता न था। सिर्फ़ जिस रोज़ केदार बाबू ने बिना किसी संकोच के अपनी कन्या के साथ शादी का वचन दिया, उसी दिन वह कुछ क्षण के लिये अवाक् की तरह स्तब्ध रह गया। तरह-तरह की बातें, तरह-तरह के संदेह उसके मन में उत्पन्न हुए सही, लेकिन उसके इस सौभाग्य का मूलकारण सुरेश ही था, यह कल्पना तक उसके दिल में न उठी। अचला के प्रति प्रेम, स्नेह और कृतज्ञता के भाव से उसका हृदय भर उठा; लेकिन वह हमेशा से मितभाषी था; अपनी उत्कण्ठा वह प्रगट नहीं कर सकता था, प्रगट करने पर भी उसके मुख से यह नितान्त अप्रत्याशित घटना होती और सुननेवालों और देखनेवालों की दृष्टि में यह आचरण अस्वाभाविक ही प्रतीत होता। बल्कि आज शाम के वक्त जब वह अकेले केदार बाबू के साथ दो-चार बातें करने के बाद डेरे पर लौट आया, उस समय अन्य दिनों की तरह अचला के साथ मिलकर एक साधारण नमस्कार भी न कर सका। केदार बाबू ने बात खुद छेड़ी थी। प्रसंग उत्थापन से आरम्भ करके सम्मति देने, व दिन नियत करने तक सब कुछ उन्होंने अकेले ही पूरा किया। लेकिन यह सब कुछ जैसे विवश होकर ही किया; उनके चेहरे पर स्फूर्ति या उत्साह का चिह्न भी न था। फिर भी दिन बीतने लगे और विवाह का दिन करीब आ पहुँचा।

परसों विवाह होगा। लेकिन कन्या की शादी में किसी तरह का धूमधाम न करने का उन्होंने पहले से ही सोच लिया था, इसलिये इस शुभ कर्म का आयोजन जहाँ तक चुपचाप हो सकता था, इसमें कोई कोर-कसर न रखी।

आज भी शाम के वक्त वे मामूल के मुताबिक चाय पीने बैठे थे। अपना कसीदा लेकर अचला भी नज़दीक के एक कोच पर बैठी थी। उतने दिनों तक अनेक बाधाओं और विपत्ति से पार होकर आज कई दिनों से उसके मन में जो शान्ति थी उसीके झलक में उसका

पीला मुख म्लान ज्योत्सना की तरह स्निग्ध प्रतीत हो रहा था। चाय पीते-पीते बीच-बीच में केदार बाबू यही देख रहे थे। सुरेश झगड़कर जब से चला गया तब से अब तक वे टूटे हुए दिल से दिन बिता रहे थे। वह लौटकर न मालूम क्या कर डाले—यही एक फ़िक्र उन्हें सता रही थी। इसके अलावा, इस सम्बन्ध में उनका अपना क्या कर्त्तव्य होना चाहिये—हैण्डनोट लिखें या रुपया अदा करने के लिये किसी और जगह से कर्ज लेने की कोशिश करें, या महिम पर ही इसका जिम्मा छोड़ें—क्या करें न करें इसी सोच में डूब-उतरा रहे थे। फिर भी कुछ न कुछ करना बहुत ज़रूरी है। सुरेश के लापता हो जाने की हालत पर ही अधिक दिनों तक निर्भर नहीं रहा जा सकता, या कन्या की तरह ख्याल में डूबे आँखें मूँदकर बैठे रहने से ही इस विपत्ति से छुटकारा मिल नहीं सकता, यह बात भी खूब समझ रहे थे। वह निराश प्रेमी एक न एक दिन तैयार होकर रुपये के लिये आ ही पहुँचेगा; रुपया न पाने पर चारों ओर बदनामी फैलाकर जबर्दस्त बखेड़ा खड़ा कर देगा। यह सही है कि उसने चेक काटकर रुपये दिये हैं—किसी प्रकार की लिखा-पढ़ी न रहने पर भी अदालत में इनकार किया जा नहीं सकेगा, यह सोच-सोचकर एक तरह से इस बारे में उन्हें किसी तरह की शंका न रह गयी थी। किन्तु कन्या के साथ इस बारे में किसी तरह का सलाह-मशविरा तक न कर सकते थे। सुरेश का नाम तक लेने से वे डरते थे। ऐसी हालत में, अचला की उस शान्त गंभीर मुख-छवि की ओर निरख-निरखकर उनके हृदय में, यह विचार आने लगा कि उनकी सारी विपत्तियों की जड़ यही कन्या है। वैसे तो, कितना अच्छा मौक़ा हाथ लगा था और आइन्दा के वास्ते भी क्या-क्या न हो सकता!

जिस निष्ठुर कन्या ने अपने बूढ़े बाप के बार-बार मना करने पर भी, उसके सुख-दुख का ख्याल न किया, सब कुछ सब खेल चौपट कर दिया—उसी स्वार्थपरायण सन्तान के विरुद्ध उनका छिपा हुआ क्रोध अभिशाप की तरह जब तब यही कामना करता—इसका फल उसे ज़रूर

मिलेगा, एक दिन रो-रोकर वह बोली, 'पिताजी, तुम्हारा कहना न मानने का ही यह दण्ड मैं पा रही हूँ।' पात्र के विचार से सुरेश महिम की अपेक्षा सहस्र गुणा श्रेष्ठ है, यह विश्वास उनके मनमें ऐसा मज़बूती से जम गया था, कि उससे सम्बन्ध टूट जाने को वे बहुत भारी नुक़सान समझ रहे थे। दिल से वे उससे नाराज़ न थे। इतना हो जाने पर भी यदि उसे फिर से पा सकने का उपाय रहता, तो वे इस उपस्थित विवाह को भंग करने में शायद रत्ती भर भी आनाकानी न करते। किन्तु, कोई उपाय नहीं—कोई चारा नहीं! अचला के निकट इस विचार का आभास मात्र भी प्रगट करना असाध्य था।

कसीदा काढ़ते-काढ़ते अचला ने सहसा सिर उठाकर कहा—'पिताजी, सुरेश बाबू की ख़बर तुमने पढ़ी है?'

अचला के मुख से सुरेश का नाम! केदार बाबू चौंक उठे! उन्हें अपने कानों पर विश्वास न हुआ। सबेरे का अख़बार टेबिल पर पड़ा हुआ था, अचला ने उसे उठाकर फिर वही प्रश्न किया। सरसरी निगाह से अख़बार की प्रत्येक ख़बर उन्होंने सबेरे ही देख ली थी, किन्तु किसी की ख़ास ख़बर जानने की उन्हें कोई उत्कण्ठा अब न रह गई थी। बोले—'कौन सुरेश?'

अचला अख़बार में वही जगह ढूँढ़ती-ढूँढ़ती बोली—'जान पड़ता है, ये हमारे ही सुरेश बाबू हैं।'

केदार बाबू आश्चर्य से दोनों आखें फाड़कर बोल उठे—'अपने सुरेश बाबू? वे क्या कर रहे हैं? कहाँ हैं वे?'

अचला उठकर पिता के हाथ में अख़बार देकर उसी जगह को दिखाकर कहा—'पढ़कर देख न लो पिता जी!'

केदार बाबू चश्मे के लिये पाकेट में हाथ डालकर बोले—'चश्मा तो अपने कमरे में ही छोड़ आया हूं। तुम्हीं पढ़ो न बेटी, मामला क्या है, ज़रा सुनूँ?'

अचला ने पढ़कर सुनाया—फैजाबाद शहर से किसी सम्वाददाता

ने लिखा था—'उस दिन शहर की गरीब-बस्ती में भयंकर अग्निकाण्ड हो गया था। एक तो प्लेग, तिस पर यह दुर्घटना, दुखी लोगों के दुख की कोई सीमा न रही। कुछ दिनों से सुरेश नामक एक सम्भ्रान्त युवक यहाँ आकर पैसे से, दवा-दारु से, अपने तन से रोगियों की सेवा-शुश्रुषा कर रहे थे। इस विपत्ति के समय उपस्थित होने पर उन्हें मालूम हुआ कि रोगशय्या पर पड़ी हुई कोई स्त्री एक जलते हुए घरके बीच घिर गयी है—उसको बचानेवाला कोई नहीं था।' आगे सम्वाद-दाता ने लिखा था—'उसे बचाने के लिये यह अत्यन्त साहसी बंगाली युवक अपने प्राणों की परवाह न कर जलती हुई अग्नि के बीच घुस पड़ा—...'

पढ़ना खत्म हो गया—केदार बाबू बहुत देर तक चुप बैठे रहे और एक साँस लेकर बोले—'किन्तु, क्या तुम्हें यक़ीन है कि यह हमारा ही सुरेश है ?'

अचला ने शान्तभाव से कहा—'हाँ पिताजी, यह अपने ही सुरेश बाबू हैं।'

केदार बाबू एक बार और चौंक उठे। शायद अनजान में ही अचला के मुँह से यह 'अपने ही' लफ्ज़ पर ज़रा जोर दिया हो। यह तो सिर्फ़ निश्चित विश्वास प्रगट करने के लिये ही उसके मुँह से निकला था लेकिन केदार बाबू के हृदय में एक दूसरा ही ख़्याल पैदा हो गया; और डूबता हुआ आदमी जिस तरह एक तिनके को पकड़ने के लिये अपनी दोनों बाहें बढ़ा देता है, ठीक उसी तरह यह वृद्ध पिता कन्या के मुख से निकले हुए इसी एक मात्र शब्द को अत्यन्त आग्रह के साथ हृदय में धारण किया। इस एक ही बात से उनके कानों में पलभर में कैसे-कैसे मुमकिन और ग़ैरमुमकिन मनसूबे बँधे व हौसले उनके दिल में पैदा हुये जिसकी कोई हद नहीं ! उनके चेहरे पर आज इतने दिनों के बाद एकाएक आशा और आनन्द की आभा छिटक उठी। बोले—'अच्छा, बेटी, तुम्हें क्या ऐसा नहीं मालूम पड़ता कि.....'

पिता को अचानक रुकते देखकर अचला उनकी तरफ़ देखती हुई बोली—'क्या नहीं मालूम पड़ता पिताजी !'

केदार बाबू आगे सावधानी के विचार से मुँह की बात मुँह में ही रखकर बोले—'तुम्हें यह नहीं मालूम होता कि सुरेश जिस तरह का सलूक हमारे साथ कर गया, उसके लिये वह बहुत दुखी है !'

अचला तत्क्षण हाँ में हाँ मिलाती हुई बोली—'ज़रूर मुझे तो ऐसा ही मालूम होता है, पिताजी ।'

केदार बाबू बड़े ज़ोर से माथा हिला-हिलाकर बोलने लगे—'ज़रूर ! ज़रूर ! सौ बार ! अगर ऐसा न होता, तो वह इस तरह न भागता—कहीं की एक मामूली औरत को बचाने के लिए आग में न कूदता । मुझे तो यह निश्चय प्रतीत हो रहा है, कि वह केवल अनुतापदग्ध हो प्राण विसर्जन करने गया था । है न यही बात बेटी !'

अचला पिता को ठीक जवाब न देकर आस्ते-आस्ते बोली—'सुना है, दूसरों को बचाने के लिए इसी तरह और एक दो बार उन्होंने अपने प्राण संकट में डाल दिये थे ।'

यह बात केदार बाबू को उतनी अच्छी न लगी । बोले—'यह तो दूसरी बात है अचला ! किन्तु, यह जो आग में कूद पड़ना ! यह जो जानबूझकर मौत को गले लगाना ! दोनों में फ़र्क़ नहीं देख रही हो ?'

अचला इसका प्रतिवाद न करके बोली—'हो सकता है । लेकिन जो महापुरुष होते हैं, वे किसी भी हालत में दूसरों की विपत्ति में अपनी जान की परवाह क़तई नहीं करते—'

केदार बाबू उत्साह के मारे उछल पड़े । दृढ़-स्वर से बोले—'ठीक, ठीक ! यही तो मैं तुमसे कह रहा हूँ अचला—वह एक महापुरुष है ! उसके महापुरुष होने में कोई शक नहीं ! उसके साथ क्या किसी

और की तुलना हो सकती है ! और भी तो कितने लोग हैं, लेकिन कौन किसको एक बात पर पाँच-पाँच हज़ार रुपया दे सकता है, कहो तो ! उसने कुछ भी क्यों न किया हो, लेकिन किया है बहुत दुखी होकर—यह मैं तुम्हें शपथपूर्वक कहता हूँ।'

मगर शपथ की तो कोई ज़रूरत थी नहीं। इस सत्य को अचला स्वयं जितना जानती थी, वे उसके शतांश का एक अंश भी न जानते थे। लेकिन वह जवाब न दे सकी—कहीं उसके मुँह पर क्षण भर के लिए लज्जा का भाव न दिख पड़े, इस डर से झट गर्दन झुकाकर मौन हो गई। किन्तु वृद्ध की सतृष्ण दृष्टि से वह छिप नहीं सकी। वे पुलकित होकर कहने लगे—'मनुष्य तो देवता नहीं—आख़िर वह मनुष्य ही है ! उसमें दोष और गुण दोनों का मिश्रण है। लेकिन इसी बहाने उसकी क्षणिक दुर्बलता को ही उसका स्वभाव समझ लेना ठीक नहीं ! दूसरे लोग चाहे जो कहें अचला, लेकिन हम भी अगर इसे उसका दोष समझें, तो उनमें और हममें फ़र्क़ क्या बताओ तो ! बड़े आदमी तो बहुत हैं, पर कौन इस तरह देना चाहता है ! क्या लिखा है उस जगह ज़रा एक बार और तो पढ़कर सुनाओ बेटी ! आग के बीच से उसे बाल-बाल बचाकर निकाल लाया। ओह, कैसी महान आत्मा ! देवता और कहते हैं किसे !' यह कहकर उन्होंने एक लम्बी साँस ली।

अचला उसी तरह बिना जवाब दिये गर्दन झुकाये बैठी रही।

केदार बाबू क्षण भर स्तब्ध रहने के बाद अचानक बोल उठे—'अच्छा, हमें एक तार देकर उसकी ख़बर लेनी उचित नहीं ? उसकी इस विपत्ति के दिन में भी हमारा नाराज़ रहना क्या ठीक है !'

इस बार अचला ने सिर उठाकर कहा—'लेकिन हम तो उनका पता-ठिकाना जानते ही नहीं पिताजी !'

केदार बाबू बोले—'पता-ठिकाना ! फ़ैज़ाबाद शहर में ऐसा कोई है जो आज हमारे सुरेश को न जानता हो ! उस पर मैं बहुत नारा

था, लेकिन अब मेरे मन में कुछ नहीं है । एक तार लिखकर इसी वक्त भेज दो बेटी; मैं उसका समाचार जानने के लिए बहुत विकल हूँ ।'

'अभी दिये देती हूँ पिताजी !' यह कहकर वह तार का एक फ़ार्म लाने ज्यों ही कमरे से बाहर निकली त्यों ही वह एकदम सुरेश के सामने पड़ गई ।

हृदय के फ़िक्र और रंज से इन्सान का चेहरा इतनी जल्दी इस तरह सूख सकता है, इस तरह बेरौनक हो सकता है; ज़िन्दगी में आज यह पहले-पहल देखकर अचला चौंक उठी । कुछ देर तक दोनों में से किसी के मुँह से कोई बात न निकली । इसके बाद अचला ही बोली—'पिताजी बैठे हुए हैं; आइये, अन्दर आइये । फैज़ाबाद से कब आये ? तबियत तो आपकी ठीक है ?'

अनजाने उसके कण्ठ-स्वर से स्नेह की कितनी वेदना प्रकाशित हो गई यह वह स्वयं न जान सकी, लेकिन सुरेश तो जैसे पानी-पानी हो गया; मगर, फिर भी आज उसने विगत दिन की कठोर शिक्षा को विफल न होने दिया । उसने अचला के आरक्त पदकमल के आगे घुटने टेककर अपनी उद्दंडता और अपराध को क्षमा-याचना निवेदन करने के प्रबल इच्छा को जी-जान से निरोध करते हुए सम्मानपूर्वक कहा—'मेरे फैज़ाबाद रहने की बात आपने कैसे जान ली ?'

अचला—उसी तरह प्रेम-पूरित स्वर में बोली—'अखबार में इसी बात को देखकर पिताजी ने अभी मुझे तार देने के लिए कहा था । आपके लिए वे बहुत विकल हैं । आइये, एक बार उन्हें दर्शन दीजिए !' इतना कहकर वह ज्योंही लौटने लगी, सुरेश बोल उठा—'वे तो शायद माफ़ कर भी सकते हैं, लेकिन तुमने कैसे मुझे माफ़ कर दिया अचला ?'

अचला के होंठ पर एक हल्की-सी मुस्कराहट नाच गई। वह बोली—'इसकी ज़रूरत ही नहीं कि मैं कभी भी आपसे नाराज़ न थी—आइये, अन्दर आइये !'

१३

सुरेश ने जब यह बताया कि, वह महिम की चिट्ठी से शादी की खबर पाकर ही इतनी जल्दी आ पहुँचा है, उस वक्त केदार बाबू शरमा गये सही, लेकिन अचला के चेहरे से कुछ ज़ाहिर न हुआ।

सुरेश बोला—'महिम की शादी में मेरे न आने से कैसे चलता, नहीं तो कुछ दिन और अस्पताल में रह जाता तो अच्छा होता।'

केदार बाबू ने बड़ी उत्कंठा से पूछा—'अस्पताल में क्यों सुरेश, ऐसी तो कोई बात—'

सुरेश बोला—'जी नहीं, ऐसी कोई बात नहीं—फिर भी, तबियत ठीक नहीं थी।'

केदार बाबू स्थिर होकर बोले—'भगवान को इसके लिए कोटि-कोटि प्रणाम करता हूँ। अचला ने जब अखबार में तुम्हारी अलौकिक कहानी सुनाई सुरेश, तुमसे क्या कहूँ—मेरी आँखों से आनन्द और गर्व के आँसू निकल पड़े। मन-ही-मन कहा—हे ईश्वर ! मैं धन्य हूँ जो इस प्रकार के महापुरुष भी मेरे मित्र हैं !' यह कहकर दोनों हाथ जोड़कर मस्तक से स्पर्श किया। कुछ ठहरकर बोले—'लेकिन, फिर भी कहूँगा, बेटा, अपने प्राणों को बार-बार विपत्ति में डालना क्या ठीक है ? एक सामान्य प्राण को बचाने के प्रयत्न में अगर इतना महान प्राण नष्ट हो जाता, तो क्या संसार की बहुत बड़ी क्षति न होती ?'

'क्षति क्या होती !' इतना कहकर सुरेश शरमाकर मुँह फेरते ही देखता है—अचला इतनी देर से एकटक उसी के मुँह की ओर देख रही थी—अब उसने आँखें नीची कर लीं।

केदार बाबू बार-बार कहने लगे—'इस तरह की बात ज़बान पर लाना भी ठीक नहीं; कारण अपने सम्बन्धियों को इससे कितनी बड़ी व्यथा पहुँचती है, जिसकी सीमा नहीं।'

सुरेश हँसने लगा और बोला—'मेरा अपना और कोई नहीं है, केदार बाबू ! सिर्फ़ एक बुआजी हैं—मेरे चले जाने पर संसार में उन्हीं को कुछ कष्ट हो।'

उसके मुँह पर हँसी रहने पर भी, उसके कोई नहीं है—यह सुनकर केदार बाबू की सूखी आँखें भर आईं। बोले—'सिर्फ़ क्या बुआजी को ही कष्ट होगा सुरेश ! ऐसी बात नहीं बेटा, इस बूढ़े को भी कम शोक न होगा। छोड़ो इस बात को, कम-से-कम जितने दिन मैं ज़िन्दा हूँ उतने दिन अपनी देह का थोड़ा ख़्याल रखना सुरेश, यही मेरा एकान्त अनुरोध है।'

घड़ी में रात के दस बज गये। घर लौटने की चेष्टा करते हुए सुरेश ने अचानक हाथ जोड़कर कहा—'मेरी एक प्रार्थना है केदार बाबू, महिम का ब्याह मेरे ही घर पर होना तय हुआ है, लेकिन वह तो परसों की बात है। कल रात को भी इस सेवक के घर को एक बार अपने चरण-रज से पवित्र करें—अगर आप नहीं आयेंगे, तो मुझे विश्वास न होगा कि आपने मुझे क्षमा कर दिया है। बोलिये इतनी भिक्षा तो देंगे ?' इतना कहकर वह अकस्मात् नीचे झुक केदार बाबू के पैर छूने लगा।

केदार बाबू ज़ल्दी में शायद ज़बरन उसे रोकने की कोशिश करने लगे, कि एकाएक उसकी धीमी कराह सुनकर चौंक उठे। पीठ की जली हुई जगह पर पट्टी बँधी हुई थी, उसे सुरेश अब तक दुशाले के अन्दर छिपाये हुये था। अनजाने खींचातानी में उन्होंने उस पट्टी को खसका

दिया। अब उस खुले हुए घाव की ओर देखकर वह महाशय डर से चिल्ला उठे। बिजली की तरह दौड़कर अचला ने पट्टी को थामकर कहा—'डरने की कोई बात नहीं, मैं अभी ठीक किये देती हूँ।' यह कहकर उसे दूसरी तरफ़ एक सोफ़ा के ऊपर बैठाकर बड़ी सावधानी से ठीक जगह पर पट्टी बाँधने लगी।

केदार बाबू अपनी कुर्सी पर धूप से आँखें बन्दकर बैठ गये—बहुत देर तक उनके मुँह से कोई आवाज़ न निकली। कोच की पीठपर दोनों कुहनी टेककर पीछे खड़ी-खड़ी अचला चुपचाप पट्टी बाँध रही थी। देखते-देखते उसकी आँखें भर आयीं और क्षणभर बाद ही मोतियों की तरह एक-एक करके आँसू के बूँद झरने लगे। सुरेश यह सब कुछ न देख पाया; इस तरफ़ उसका ध्यान ही न था। वह सिर्फ़ आँखें मूँदकर बैठा हुआ अपनी परम प्रेयसी के कोमल हस्त-युगल का करुण स्पर्श हृदय के भीतर अनुभव करने लगा।

किसी तरह आँसू पोंछकर अचला एक बार आस्ते-आस्ते बोली—'आज मेरे नज़दीक आपको एक प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी।'

सुरेश का ध्यान भंग हो चौंक उठा पर उसने भी उसी तरह कोमल स्वर में पूछा—'कैसी प्रतिज्ञा?'

'इस तरह से आप अपने प्राण नहीं गँवा सकते।'

'लेकिन मैं अपनी इच्छा से प्राण गँवाना नहीं चाहता! सिर्फ़ दूसरे की विपत्ति को देखकर अपने-आपको भूल जाता हूँ—बचपन से ही मेरा ऐसा स्वभाव है, अचला!'

अचला ने इसका प्रतिवाद नहीं किया, लेकिन उसने जो एक लम्बी साँस ली उसे सुरेश समझ गया। पट्टी के बँध चुकने पर वह खड़े होकर आस्ते-आस्ते बोला—'लेकिन कल इस दीन की कुटिया को अपने पद-धूलि से अवश्य पवित्र करें—' उसकी आँखें डबडबा आयीं, लेकिन कण्ठ स्वर से व्याकुलता नहीं प्रगट हुई।

अचला सिर झुकाये गर्दन हिलाकर बोली—'अच्छा।'

सुरेश केदार बाबू को नमस्कार करके हँसकर बोला—'देखिये, मुझे निराश न कीजियेगा।' इतना कहकर अचला के मुँह की तरफ़ देखकर और एक बार उसके प्रति मौन निवेदनकर धीरे-धीरे बाहर निकल गया।

दूसरे दिन नियत समय पर सुरेश की गाड़ी आ पहुँची। केदार बाबू तैयार थे ही। कन्या को साथ लेकर निमन्त्रण रक्षार्थ चल पड़े।

सुरेश के घर के हाते के अन्दर पाँव रखते ही केदार बाबू अवाक रह गये। वह बड़ा आदमी है, यह तो जानी हुई बात थी; लेकिन कितना बड़ा—सिर्फ़ अटकल से इसका निश्चय करना अब तक कठिन था, आज इस बारे में उन्हें अब बिल्कुल किसी तरह का शक न रह गया।

सुरेश ने आदरपूर्वक दोनों का स्वागत किया। हँसकर बोला—'महिम की ज़िद आज भी न तोड़ सका, केदार बाबू। कल दोपहर से पहले इस घर में घुसने के लिए वह किसी तरह भी राज़ी न हुआ।'

केदार बाबू ने इस बात का कोई जवाब न दिया। तीनों जने ज्यों-ही बैठकखाने में घुसे, एक प्रौढ़ा रमणी द्वार की ओट से निकलकर अचला का हाथ पकड़कर उसे अन्दर ले गयीं। उनके कमरे में एक दरी बिछी हुई थी, उसी पर अचला को बड़े आदर के साथ बिठाकर उन्होंने अपना परिचय दिया। बोलीं—'मैं रिश्ते में तुम्हारी सास होती हूँ, बहू रानी। मैं महिम की बुआ हूँ।

अचला ने पैर छूकर प्रणाम किया और विस्मय के साथ उनके मुँह की ओर देखकर कहा—'आप यहाँ कब आयीं?'

महिम के बुआ थी इसे वह न जानती थी। प्रौढ़ा उसके विस्मय का कारण अनुमान करके बोलीं—'मैं इसी जगह रहती हूँ बेटी, मैं सुरेश की बुआ हूँ; लेकिन महिम भी तो मेरा पराया नहीं है, इसीलिये मैं उसकी भी बुआ होती हूँ, बेटी!'

उनके स्वाभाविक कोमल स्वर से एक इस तरह का स्नेह व आत्मीयता प्रकट हुई, कि एक ही क्षण में अचला का हृदय अन्दोलित हो उठा। उसके माँ न थीं, इस अभाव की पूर्त्ति के लिये घर के अन्दर इस तरह की कोई आत्मीय-महिला नहीं। होश सम्हालने से लेकर अब तक पिता की ही स्नेहमयी छाया में वह इतनी बड़ी हुई है। लेकिन उस स्नेह ने अब तक उसके हृदय में कितनी खाली जगह रख छोड़ी थी, यह एक ही क्षण में स्पष्ट हो गया, जबकि आज दूसरे के घर में दूसरे की बुआ ने उसे 'बहू-रानी' कहकर सम्बोधन किया और आदर के साथ अपने नज़दीक बिठाया। पहले तो इस नये सम्बोधन से वह कुछ शर्मा-सी गयी; लेकिन उसकी मधुरता, उसका गौरव उसके नारी-हृदय के गंभीर अन्तस्तल में बहुत देर तक ध्वनित होता रहा।

देखते ही देखते दोनों में बातचीत का सिलसिला जम गया। अचला कुछ शर्माती-सी बोली—'अच्छा बुआजी, आपने अपने पास मुझे बिठा लिया, लेकिन, ब्राह्म कन्या समझकर घृणा तो नहीं की।'

बुआजी चट से अपनी अँगुली उसके ठोड़ी से भिड़ाकर उसे चूमती हुई बोलीं—'तुमसे मैं घृणा क्यों करूँगी बेटी!' फिर मुस्कराकर बोली—'हम हिन्दू-कन्याएँ क्या इतनी निर्बोध होती हैं; क्या इतनी हीन, बहू-रानी, कि सिर्फ़ धर्म की विभिन्नता के कारण तुम्हारी जैसी कन्या को भी अपने पास बिठाने में संकोच करूँगी! घृणा करने की बात तो बहुत दूर बेटी?'

अचला अत्यन्त लजाकर बोली—'मुझे क्षमा कीजियेगा बुआजी, मैं जानती न थी। अपने समाज से बाहर अन्य किसी कन्या से हमारा सम्पर्क नहीं हुआ; सिर्फ़ मैंने सुन रखा था, कि वे हमसे घृणा करती हैं; ऐसा कि, एक साथ उठने-बैठने पर भी उन्हें स्नान करना पड़ता है।'

बुआजी बोलीं—'यह तो घृणा नहीं है बेटी, यह तो एक आचार है। हम लोगों के बाहरी आचरण को देखकर तो तुम लोग ऐसा ही समझोगी, लेकिन सच कहती हूँ बेटी, वास्तव में घृणा—हम किसीसे

भी नहीं करतीं। हमारे देश के घर में आज भी 'वाग्दी' खानदान की मेरी ताई जीवित हैं—उन्हें मैं कितना प्यार करती हूँ, यह कह नहीं सकती।'

थोड़ा रुककर बोलीं—'अच्छा, एक बात पूछती हूँ बेटी, तुमने—यह बात सुरेश के मुँह से सुनी है, या, आज मुझे देखकर वह बात तुम्हें याद हो आयी?'

सुरेश का नाम सुनते ही अचला आस्ते-आस्ते बोली—'बहुत दिन पहले एक बार उन्होंने भी कहा था।'

बुआजी बोलीं—'यह उसका स्वभाव है। एक बात जहाँ मन में आयी खैरियत नहीं—वह चारों तरफ़ उसीकी रट लगाता फिरेगा। किसी दिन भी ब्रह्म-समाजियों के साथ सम्पर्क न रहने से ही वह ऐसा सोचता था, कि उनसे बड़ी घृणा करता है। इसी बात को लेकर महिम के साथ कई बार उसका झगड़ा हो गया था। लेकिन मैंने ही तो एक तरह से उसे पाल-पोसकर बड़ा बनाया है, मैं जानती हूँ कि वह किसी से भी घृणा नहीं करता—और करने की सामर्थ्य भी उसमें नहीं है।' यही देखो न बेटी, जिस दिन से उसने तुम्हें देखा, उस दिन से—'

किन्तु बात को बिना पूरा किये ही अचला के मुँह की तरफ नज़र पड़ जाने से बीच में ही उन्हें एकाएक रुक जाना पड़ा। वे उन दोनों के बारे में कहाँ तक जानती हैं, इसे न समझने पर भी अचला को संदेह हुआ, कि आखिर बुआ जी को थोड़ा बहुत जरूर मालूम है। कुछ देर तक दोनों मौन रहीं; अचला ने अपनी लज्जा किसी तरह दबाने के लिये दूसरी बात छेड़ दी। उसने पूछा—'बुआजी, क्या आपने ही सुरेश बाबू को पाल-पोसकर बड़ा किया है?'

बुआजी बड़े आवेग के साथ बोलीं—'हाँ, बेटी, मैंने ही उसे बड़ा किया है। छः साल की उम्र में ही उसके माँ-बाप स्वर्ग सिधार गये। आज भी मेरा वह काम पूरा नहीं हुआ—आज भी वह बोझ मेरे सर से टला नहीं। किसी का दुख-कष्ट, किसी की आपत्ति-विपत्ति वह

जर्दाश्त नहीं कर सकता, प्राणों का मोह त्यागकर उनकी विपत्ति में कूद पड़ता है। कितनी डरती-डरती रात-दिन बिताती हूँ बहू-रानी, सो तुमसे कहा नहीं सकती।'

अचला ने आस्ते से पूछा—'फैजाबाद की घटना आपने सुनी है?'

बुआजी गर्दन हिलाकर बोली—'ज़रूर सुनी है बेटी! इसीलिये भगवान से हमेशा प्रार्थना करती रहती हूँ—हे ईश्वर मेरे जीते जी मुझे कोई वैसी बात न दिखाना—सिर पर पैर रख एक बार ही मुझे रसातल में डुबो न देना। मैं इसे किसी भी तरह सह न सकूँगी।' कहते-कहते उनका गला भर गया। उनकी उस मातृ-स्नेह-परिपूर्ण मुख से इस कातर प्रार्थना को सुनकर अचला की आँखें भर आयीं और वह करुण स्वर में बोली—'आप उन्हें मना क्यों नहीं कर देतीं बुआजी?'

बुआजी उन अश्रुपूर्ण नेत्रों से ही कुछ हँसकर बोलीं—'मना! मेरे मना करने से क्या होता है बेटी? जिसके मना करने से सचमुच कुछ हो सकता है, मैं उसीको आज वर्षों से ढूँढ़ रही हूँ। लेकिन यह तो किसी ऐसी-वैसी लड़की का काम है नहीं। उसे इन आपदाओं से बचानेवाली कोई ऐसी लड़की अगर भगवान न दें तो मैं कहाँ से पाऊँगी बेटी?'

अचला कुछ देर चुप रहकर आस्ते-आस्ते बोली—'आपको मन की लड़की क्या कहीं मिल नहीं रही है?'

बुआजी बोलीं—'यही जो तुमसे कहा बेटी, भगवान के दिये बिना कोई कभी कुछ नहीं पा सकता। जो सुरेश कभी इस तरह की बात तक कान में न लेता था, उसीने जब एक दिन आकर बताया कि—'बुआजी, इस बार तुम्हारे लिये एक दासी लाकर हाजिर कर दूँगा'—उस दिन मुझे जितना आनन्द हुआ था, उसका वर्णन मैं कर नहीं सकती। मनही-मन आशीर्वाद देती हुई बोली—तेरे मुँह में घी शक्कर पड़े बेटा। मैं वह दिन कब देखूँगी, जब बहू-बेटे को बरण करके घर

में लूँगी। कितना कहा—सुरेश, मुझे एक बार उसे दिखा लाओ, लेकिन किसी तरह भी राजी न हुआ, हँसकर कहा—बुआजी, आशीर्वाद के दिन एक दम जाकर दिन स्थिर कर आना। इसके बाद एक दिन योंही आकर बोला—काम नहीं बना बुआजी, मैं रात की गाड़ी से पश्चिम की ओर चला—। कितना भी पूछा—क्योंकर काम नहीं बना, मुझसे साफ समझाकर कहो, लेकिन बताया कुछ नहीं और उसी रात को चला गया। मैंने मनही-मन सोचा—सिर्फ़ मेरे लड़के की इच्छा से ही तो काम चल नहीं सकता, ऐसे बर के लिये उस लड़की को जन्म-जन्म की तपस्या भी तो होनी चाहिये! कहो बेटी?'

अचला ने चुपचाप गर्दन हिला दी। अब उसे पता चला कि वह लड़की कौन थी यह बुआजी को पता नहीं। उसके मन में एक बार आया यही—उसकी छाती पर से एक पत्थर का बोझ उतर गया, लेकिन वह पत्थर आसानी से नहीं हटा, हृदय की अनेक जगह पर उसके छिल-पिस गया है, दूसरे क्षण उसे यही अनुभव होने लगा।

भोजन तैयार होने पर बुआजी ने अचला को अलग बिठाकर भोजन कराया और साथ लेकर घर का हर एक कमरा, सब चीज-वस्तु उसे घुमा-घुमाकर दिखा लायीं और सहसा एक साँस लेकर बोलीं—'बेटी, भगवान की दया से कमी किसी भी चीज़ की नहीं—लेकिन इसे लक्ष्मी-नारायण बैकुण्ठ समझो! कभी-कभी आँखों में आँसू नहीं थमते, बहूरानी!'

नौकर ने आकर खबर दी—बाहर केदार बाबू जाने के लिए तैयार बैठे हैं। अचला प्रणाम करके ज्योंही पद-रज माथे लेने लगी कि बुआजी उसका एक हाथ पकड़कर कुछ संकोच के साथ बोलीं—'अगर बुरा न मानो तो बेटी एक बात पूछना चाहती हूँ?'

अचला उनके मुँह की ओर देखकर सिर्फ़ ज़रा मुस्कराई।

बुआजी बोलीं—'सुरेश के मुँह से तुम्हारी और महिम की सारी बातें सुन चुकी हूँ, बेटी! उसी के मुँह से सुना कि ग़रीब होने के

कारण तुम्हारे पिताजी की इच्छा नहीं थी। सिर्फ़ तुम्हारे सबब से ही.....'

अचला गर्दन झुकाकर मृदु स्वर में बोली—'सच है बुआजी !'

बुआजी मानो उफ़नाते हुए आवेग से अचला के दोनों हाथ थामकर बोलीं—'यही तो चाहिए बेटी ! जिसे प्यार किया, उसके आगे रुपया-पैसा, धन-दौलत क्या चीज़ है ! मन में किसी तरह की ग्लानि न रखो बेटी ! मैं महिम को ख़ूब जानती हूँ, वह ऐसा लड़का है—कि चाहे उसके लिए जितना भी कष्ट झेलो सब एक दिन भगवान की दया से सार्थक होगा। भगवान इतने बड़े प्रेम को किसी भी तरह अमर्यादित न करेंगे, यह मैं तुमसे बिल्कुल ठीक कह रही हूँ।

अचला ने एक बार और झुककर उनके पैर छुए।

उन्होंने उसकी ठोड़ी पकड़कर उसे चूम लिया और कोमल स्वर में बोलीं—'अहा, अगर इसी तरह की एक बहू लेकर मैं अपना घर बसा पाती !'

सुरेश दोनों को गाड़ी पर बिठाकर बिना कुछ कहे नमस्कार करके लौट आया। जाते वक्त लालटेन की रोशनी में पल भर के लिए उसके चेहरे पर अचला की नज़र पड़ी। उस चेहरे पर क्या था सो तो परमात्मा जानें, लेकिन आँसुओं के प्रबल वेग से उसका गला रुँध गया, बग्गी रास्ते पर पहुँच गयी। रास्ता सुनसान हो चला था, उस तरफ़ देखकर उसे अचानक जान पड़ा, मानों वह अब तक एक बड़ा स्वप्न देख रही थी। वह स्वप्न सुख का था या दुख का, यह कहना कठिन है। केदार बाबू अब तक मौन थे—मानो सुरेश के ऐश्वर्य की प्रतिमा उनके दिमाग में चक्कर लगा रही थी, सहसा एक लम्बी साँस लेकर बोले—'हाँ, सचमुच बड़ा आदमी है !'

कन्या की ओर से इसमें उन्हें कोई योग-दान नहीं मिला। उत्साह के अभाव में बाकी रास्ता चुप रहकर ही काटना पड़ा।

गाड़ी जब उनके दरवाज़े पर आ लगी और सईस जब के वाङ खोलकर खड़ा हो गया, तब वे फिर एक बार चौंक उठे। फिर एक साँस लेकर मनही-मन बोल उठे—'सुरेश को हममें से किसी ने पहचाना नहीं! वह एक देवता है!'

१५

आज अचला का विवाह है। विवाह-मण्डप के पास पल भर के लिए सुरेश दिखाई पड़ा था। इसके बाद न जाने वह कहाँ ग़ायब हो गया कि सारी रात केदार बाबू के घर पर उसका पता न चला।

विवाह हो गया। एक-दो दिन से अचला के मन में विप्लव मचा हुआ था। उस निमंत्रण की रात सुरेश की बुआजी ने जो बातें कही थीं उन्हें वह किसी भी तरह न भूल सकती थी, आज उनसे छुटकारा मिल गया।

महिम की अटल गम्भीरता आज भी ज्यों की त्यों क़ायम रही; उसके मुख पर सुख या दुख का लेशमात्र भी चिह्न दिखाई न पड़ा। फिर भी शुभ-दृष्टि के समय उसी मुख को देखकर अचला का हृदय आनन्द और माधुर्य से परिप्लावित हो उठा। मन-ही-मन पति के चरण-कमल पर माथा रखकर बोली—'नाथ, अब मुझे किसी बात का डर नहीं, तुम्हारे साथ जहाँ भी जिस अवस्था में रहूँगी, वहीं मेरे लिए स्वर्ग है; आज से हमेशा के लिए तुम्हारी कुटिया ही मेरे लिए राजमहल है।'

अचला के ससुराल जाने के समय केदार बाबू अपने कुरते की बाँही में आँखें पोंछकर बोले—'बेटी, मैं आशीर्वाद देता हूँ, पति के साथ दुख-दारिद्रय को गले लगाकर कर्त्तव्य के पथ पर निर्विघ्न रूप से आगे बढ़ो। भगवान तुम दोनों का कल्याण करेंगे।' यह कहकर उसी तरह आँखें पोंछते-पोंछते बगल के कमरे में घुस गये।

इसके बाद श्रावण की बदली छाई दुपहरी, ऊपर सघन बादलों से भरा आकाश, नीचे सकरे एवम् कीचड़ वाले, फ़िसलने वाले, ग्राम पथ से पालकी पर बैठी हुई अचला पति के घर आ पहुँची। लेकिन रास्ते में ही मानो उसकी नई शादीका आधा मज़ा जाता रहा।

देहाती-दुनिया से उसका परिचय सिर्फ़ किताबों के ज़रिये ही हुआ था। वह परिचय दुख और दरिद्रता की हज़ारों गाथाओं के बीच भी जगह-जगह कविता और कल्पना के सौरभ से भरा हुआ था। पालकी से उतरकर घरके भीतर आकर उसने एकबार चारों ओर नज़र दौड़ाकर देखा—कहीं भी ऐसा कुछ न दिखा जो उसके हृदय में कवित्व का भाव उत्पन्न करता। उसकी कल्पना की देहाती दुनिया आँखों के सामने इतनी निरानन्द, निर्जन—मिट्टी के घरों में इस तरह की सीड़, अँधेरा, खिड़की और दरवाज़ा इतने सकरे और छोटे, ऊपर बाँस का भद्दा घरन और मचान—स्वप्न में भी ऐसा वह नहीं सोच सकती थी। इसी टूटे-फूटे घर में उसे ज़िन्दगी बितानी पड़ेगी—यह सोचकर ही उसकी छाती फटी जा रही थी। पति का सुख, विवाह का आनन्द ये सारी बातें माया-मरीचिका की तरह उसके हृदय से विलीन हो गईं। घर में सास-ससुर या ननद कोई नहीं, दूर रिश्ते की एक दादीजी अपनी इच्छा से ही बर-बधू का गृह-प्रवेश कराने के लिए दूसरे मुहल्ले से वहाँ आई थीं। वे आजन्म-परिचित वैवाहिक पहनावे का बिल्कुल अभाव देख विस्मय से कुछ देर तक खड़ी रहीं; बाद में बधू का हाथ पकड़कर उसे घर में लाकर बिठाया। बधू को देखने के लिए मोहल्ले की जो अन्य स्त्रियाँ आई थीं, वे अचला की उम्र का अन्दाज़ा लगाकर परस्पर आँखें मारने लगीं, एक दूसरे से सटकर काना-फूसी करने लगीं और लौटने के वक्त उनके मुँह से धीमी आवाज़ 'बेम्म' (ब्राह्म), 'मलेच्छ' आदि एक-दो मीठे शब्द अचला के कानों तक पहुँचे।

शीघ्र ही गाँव भर में यह बात फैल गई, कि यह बात सच्ची है कि महिम म्लेच्छ-कन्या को ब्याहकर घर ले आया है। विवाह के पहले ही ऐसी अफ़वाह उड़ी थी और कुछ-कुछ आलोचना-प्रत्यालोचना होने लगी थी; अब बहू को देखकर किसी को रत्ती भर भी सन्देह न रहा कि जो बात उठी थी वह सोलह आने सच निकली।

पड़ोसिनों के चले जाने पर दादीजी आकर बोलीं—'नत-बहू (नाती की पत्नी); तो मैं अब चली! बहुत दूर जाना है, और घर गये बिना चलेगा नहीं—वहाँ सिर्फ़ एक छोटा नाती है—' यह कहते-कहते अनुरोध-उपरोध का अवसर दिये बिना ही वहाँ से खिसक गईं। अचला को यह समझते देर न लगी कि वे अब तक सिर्फ़ अपने रिश्ते के नाते से अटकी हुई थीं और दिल ही दिल में इसलिए छट-पटा रही थीं। सच पूछो तो दादीजी का अपराध नहीं था। अगर वे पहले से जानतीं ऐसा मामला होगा तो वहाँ झाँकने भी न आतीं। कारण, गाँव में बास करके इन बातों से न डरना, इतना साहस-प्रदर्शन देहाती इतिहास में अत्यन्त दुर्लभ है।

दादीजी के अन्तर्धान होने पर, घर का नौकर जद्दू और उड़िया रसोइया तथा कलकत्ते से अभी-अभी आई हुई अचला के मायके की महरी हरि की माँ को छोड़कर वह वैवाहिक-गृह सूना मालूम होने लगा। कुछ देर के लिए बारिस बन्द हो गई थी, अब फिर बूँदा-बूँदी शुरू हो गई। हरि की माँ निकट आकर आस्ते-आस्ते बोली—'ऐसा घर तो देखा नहीं दीदी, कोई भी कहीं नहीं दीखता—'

अचला गर्दन झुकाये चुपचाप बैठी थी। अनमनी-सी सिर्फ़ बोली—'हुँ।'

हरि की माँ फिर बोली—'जमाई बाबू भी तो नहीं दिखते? वही जो एक दफ़े दिखाई देकर न जाने कहाँ चले गये—'

अचला ने इस बार भी जवाब न दिया।

किन्तु इस बन-जंगल से घिरी हुई शून्य पुरी में चाहे हरि की माँ का दिल कितना ही क्यों न घबड़ा गया हो, उसने अचला को बचपन से ही पाल-पोसकर बड़ा किया था, इसलिए उसे कुछ ढाढ़स देने के लिए बोली—'डर किस बात का। निराश्रय तो हैं नहीं। जमाई बाबू के आते ही सब ठीक हो जायगा। तब तक ये सब कपड़े बदल डालो दीदी, मैं ट्रंक में से और कपड़े बाहर किये देती हूँ—'

'अभी रहने दो हरि की माँ'—यह कहकर अचला उसी तरह सिर झुकाये कठ-पुतली की तरह बैठी रही। ज़िन्दगी उसे फ़ीकी मालूम हो रही थी।

वर्षा होने लगी। उस बढ़ती हुई जल-धारा के बीच सन्ध्या का वह क्षीण आलोक विलीन हो गया, श्रावण के गाढ़ मेघाच्छन्न आकाश को चीरकर मलिन देहाती घर में कब सन्ध्या उतर आई, कुछ भी मालूम न पड़ा। केवल आनन्द से सर्वथा विहीन अन्धेरे घर के कोने-कोने में अँधियाली और भी गाढ़ी होने लगी। जदू नौकर आकर घर के बीच लालटेन जलाकर रख गया। हरि की माँ ने पूछा—'जमाई बाबू कहाँ गये?'

'क्या जानूँ'—कहकर जदू लौटने लगा। उसके संक्षिप्त एवं अशिष्ट उत्तर को सुनकर हरि की माँ शंकित होकर बोली—'क्या जानूँ का क्या मतलब? बाहर वे नहीं हैं क्या?'

'नहीं'—कहकर जदू चलता बना। वह इन आगन्तुकों पर प्रसन्न नहीं है यह अच्छी तरह मालूम हो गया। हरि की माँ अत्यन्त डरकर अचला के निकट सरक आई और भय-विह्वल स्वर में बोली—'रंग-ढंग तो मुझे अच्छा नहीं मालूम पड़ता दीदी! साँकल चढ़ा दूँ?'

अचला आश्चर्य चकित होकर बोली—'साँकल क्यों चढ़ायेगी?'

हरि की माँ बचपन में ही देश छोड़कर कलकत्ते आ गई थी, और कभी गाँव आई नहीं थी। देहात की चोरी-डकैती की किस्से-कहानी की बात के सिवा और वह सब कुछ भूल चुकी थी। उसने

बाहर की ओर अँधेरे में भय-विह्वल दृष्टि निक्षेप करके अचला की देह से सटकर चुपके से कहा—'देहात का मामला है—कुछ कहा नहीं जा सकता दीदी।' यह कहते-कहते उसके रोंगटे खड़े हो गये।

ठीक इसी समय आँगन के बीच से आवाज़ आई—'कहाँ हो दादी ?'—इतना कहते-कहते बीस-इक्कीस साल की दुबली-पतली और छरहरे बदन की एक लड़की पानी में भींगती हुई दरवाज़े पर आ खड़ी हुई, और बोली—'पहले ज़रा प्रणाम कर लूँ दादो, बाद में कपड़े बदलूँगी' यह कहकर घर में घुस गई और अचला के पैर के निकट सिर झुकाकर उसने प्रणाम किया। लालटेन को अचला के मुँह के पास ले जाकर कुछ देर तक गौर से देखती रही और फिर चिल्लाकर बोल उठी—'सफले भैया, ओ सफले भैया—'

महिम घर पहुँचते ही इसी लड़की को लेने स्वयं गया था। दूसरे कमरे में से बोला—'क्या है री मृणाल ?'

'इधर आओ, तो बताऊँ—'

महिम ने दरवाज़े के बाहर खड़े होकर पूछा—'क्या है री ?'

मृणाल ने लालटेन की रोशनी में फिर एक बार अचला का मुँह निहारकर कहा—'ना—तुम्हीं जाते भैया ! मुझसे शादी करके ठग जाते भैया !'

महिम बाहर से ही डाँटकर बोला—'मेरी बात तुम बिल्कुल नहीं सुनोगी मृणाल ! फिर नहीं हँसी-मज़ाक ? क्या तू मेरी बात नहीं सुनेगी ?'

'वाह, इसमें मज़ाक़ की बात क्या है—' अचला की ओर देखती हुई मुस्कराकर बोली—'दादो, क़सम खाकर कहती हूँ यह मज़ाक़ नहीं है। अच्छा तुम अपने स्वामी से ही पूछ देखो—'मुझ पर किसी समय वे लट्टू थे कि नहीं ?'

महिम ने कहा—'अच्छा, तू बकती जा, मैं बाहर चला।'

मृणाल बोली—'तो जाओ न, तुम्हें किसीने बाँध थोड़े ही रखा है!' अचला की ठोडी एक बार अत्यन्त प्रेम के साथ हिलाकर बोली—'अच्छा, दादीजी, क्या डाह नहीं होगी? मैं ही तो इस घर की मालकिन बननेवाली थी! लेकिन मेरी मुँहजली माँ ने न जाने सफले भैया के कान में कौन-सा मंत्र फूँक दिया कि मैं सफले भैया की आँखों का काँटा बन गई। नहीं तो—अरे जद्दू, घोषाल महाशय किधर गये?'

जद्दू ने कहा—'पोखर में हाथ-पाँव धोने गये हैं।'

'ऐं, इस अँधेरे में पोखर?' मृणाल का हँसता हुआ चेहरा क्षण भर में ही दुश्चिन्ता से म्लान हो उठा। बिकल होकर बोली—'जद्दू, जाओ भाई एक बार लालटेन लेकर पोखर पर। बूढ़े आदमी हैं, कहीं अँधेरे में फिसलकर हाथ-पैर न तोड़ बैठें।'

दूसरे ही क्षण अचला के मुँह की ओर देखकर लजाती हुई मुस्कुराकर बोली—'कैसी करनी की थी दादी, कि कहाँ का एक बहत्तर साल का बूढ़ा मेरे मत्थे मढ़ दिया गया। उसकी सेवा करते-करते और उसे सम्हालते-सम्हालते जान पर आ बनी है। अच्छा भई, पहले उस घर से भींगे कपड़े बदल आऊँ तो फिर बातें होंगी। किन्तु सौत समझकर मुझ पर क्रोध न करना, सो मैं कहे देती हूँ—और अगर कहो तो अपने बूढ़े का भी हिस्सा तुम्हें दूँ—' यह कहकर हास्य-ध्वनि से मानो सारे घर को मुखरित करती हुई द्रुतगति से चल दी।

इस तरह के हँसी-मजाक से अचला कभी परिचित थी नहीं। सारा मजाक ही उसे इस तरह कुरुचिपूर्ण और भद्दा मालूम हो रहा था, कि वह मारे शर्म के बिल्कुल गड़ गई। इतनी बड़ी निर्लज्ज प्रगल्भता किसी भी औरत में हो सकती है, ऐसा वह सोच भी नहीं सकती थी। इसलिये यह सारा हास-परिहास उसके आजन्म के शिक्षा-संस्कार की भित्ति पर चोट पहुँचा रहा था। लेकिन फिर भी वह अनुभव करने लगी कि उसके आने से निर्वासन का आधा कष्ट दूर

हो गया है; और यह कौन है, कहाँ से आई है, इसके साथ कौन-सा रिश्ता है—यह सब जानने के लिये अचला उत्सुक हो उठी।

हरि की माँ बोली—'यह लड़की कौन है दीदी? बड़ी खुश-मिजाज है।'

अचला ने गर्दन हिलाकर सिर्फ इतना ही कहा—'हाँ।'

भीगे कपड़े बदलकर मृणाल इस घर में आकर बोली—'सिर्फ हँसी मज़ाक करके चली गई दादी, असल परिचय तो अब तक न दे सकी। और परिचय ही ऐसा कौन-सा है? तुम्हारे जो स्वामी हैं वे हैं मेरी माँ के बाप। इसीलिये मैं बचपन से ही उन्हें दादा महाशय कह-कर पुकारती हूँ।' यह कहकर थोड़ी देर तक चुप रही फिर बोली—'मेरे पिताजी और तुम्हारे ससुर—दोनों बड़े मित्र थे। अचानक एक दिन जब गाड़ी के नीचे दबकर उनका दाहिना हाथ टूट गया और पिताजी की नौकरी छूट गई, तो तुम्हारे ससुर ने इसी घर में उन्हें आश्रय दिया। उसके बहुत दिन बाद मेरा जन्म हुआ दादा उस वक्त आठ साल के थे। उनकी माँ तो उनके जन्मते ही स्वर्ग सिधार गई; बड़े दो लड़के पहले ही डिपथिरिया रोग से अकाल में ही काल के गाल में समा गये थे। इसीलिये मेरी माँ इस घर में आते ही मालकिन बन गई। इसके बाद पिताजी की मृत्यु हो गई पर हम लोग इसी घर में रहे। इस घटना के बहुत दिन बाद तुम्हारे ससुर भी मर गये। हम लोग लेकिन यहीं बने रहे। यही पाँच साल हुए दादा ने पलाशी घोषाल के यहाँ मेरी शादी करके मुझे निकाल दिया! माँ अगर जिन्दा होतीं तो कुछ बस भी चलता।'

'बड़ी बहू इस घर में हैं क्या?'—यह कहते हुए एक नाटे एवं गौरवर्ण के वृद्ध सज्जन दरवाजे के सामने आकर खड़े हो गये।

मृणाल ने कहा—'आओ, आओ।'—कहती हुई अचला की ओर देखकर मुस्कराकर बोली—'यही मेरे मालिक हैं दादी! अच्छा, तुम्हीं

कहो तो दादी इस बहत्तरी बूढ़े के साथ मुझे शोभा दे रहा है ? इस जन्म का रूप-यौवन सब मिट्टी में नहीं मिल गया क्या ?'

अचला इसका जवाब क्या दे, शर्म के मारे सिर झुका लिया।

उन सज्जन का नाम था भवानी घोषाल। वे हँसकर बोले—'विश्वास न करना दादीजी—सब झूठ बात है। मुझे नीचा दिखाने के लिये उसकी यह चाल है। अन्यथा उम्र तो मेरी कुल यही बावन या ति—'

मृणाल बीच में ही बोल उठी—'चुप रहो, चुप रहो। ये दादा मेरे कैसे दुश्मन हैं सो भगवान ही जानते हैं। मुझे हर तरह से बरबाद कर दिया—अच्छा, इस बूढ़े के हाथ में सौंपने के बजाय हाथ-पैर बाँधकर मुझे पानी में फेंक देते सो अच्छा न होता दादी ! सच कहना बहन।'

अचला के चेहरे पर लाली दौड़ गई पर चुप बैठी रही।

घोषाल महाशय धीरे-धीरे घर में बैठकर कुछ देर चुपचाप अचला के लज्जा से झुके हुए मुख की ओर देखकर सहसा एक बड़े आराम की साँस लेकर बोले—'दादी आपने बचा लिया, इस छोकड़ी का गर्व इतने दिन बाद चूर हुआ। अपने रूप के गर्व में चूर होकर इसे कुछ सूझता ही न था।'

पत्नी को लक्ष्य करके बोले—'क्यों, ले अब ! जंगल में अब तक सियार राजा बना हुआ था। शहर का रूप कैसा होता है, इस बार अपनी आँखों से तो देखो !'

मृणाल बोली—'इससे क्या ! जहाँ मेरा घमण्ड है, उसे चूर करने की ताकत है किसमें !' यह कहकर उसने पति के प्रति एक गुप्त कटाक्ष निक्षेप किया जो अचला की आँखों में अचानक पड़ ही गया।

घोषाल महाशय हँसकर बोले—'सुना दादीजी—जरा होशियार रहियेगा, दोनों जने के बीच जो प्रेम है, आना-जाना लगा है उससे कहा नहीं जा सकता—और मैं तो ठहरा बहत्तरी बूढ़ा, मेरा रहना या

न रहना बराबर है ! अपनी चीज़ को सम्हालकर रखियेगा—बूढ़े का यही अनुरोध है।'

'मृणाल, तुम लोग क्या रात भर इसीमें लगी रहोगी ?'

'क्या करूँ सफले भैया ?''

'एक बार रसोई की भी फ़िक्र न करोगी ?'

मृणाल उछलकर खड़ी हो गई और बोली—'भूल हो गई सफले भैया, उड़िया रसोइये को मुझे पहले ही देख आना चाहिये था। अच्छा, तुम लोग बाहर चलो, हम लोग जाती हैं !'

महिम ने पूछा—'हम लोग कौन ?'

मृणाल ने कहा—'मैं और दादी।' अचला को लक्ष्य करके बोली—'मैं जब आ गई हूँ, तब इस घर का सारा चार्ज तुम्हारे हाथ सौंपकर ही मैं जाऊँगी।'

महिम और भवानी बाहर चले गये। मृणाल ने अचला से फिर कहा—'मेरा दो दिन पहले ही आना उचित था। लेकिन सास के दमे की बीमारी के कारण घर छोड़ने से लाचार थी। अच्छा, तुम कपड़े बदलकर तैयार हो जाओ, मैं अभी लौटकर तुम्हें ले चलूँगी'—यह कहकर मृणाल रसोईघर की तरफ़ चल पड़ी।

उस वक्त वर्षा बन्द थी और घने बादल के छँट जाने से नवमी के चन्द्रमा से आकाश स्वच्छ दिख रहा था।

रसोई का सारा प्रबन्ध ठीक करके मृणाल अचला के पास आकर बैठ गई। उसका एक हाथ अपने हाथ में लेकर बोली—'दादी की अपेक्षा भाभी कहकर पुकारना अच्छा होगा, क्यों ?'

अचला ने मृदु स्वर में कहा—'हाँ।'

मृणाल ने कहा—'रिश्ते में तुम बड़ी होती हो, लेकिन उम्र में मैं बड़ी हूँ। इसीसे कहना चाहती हूँ—मुझे तुम मृणाल-जीजी कहकर पुकारा करो, क्यों ठीक है न ?'

अचला ने कहा—'अच्छा।'

मृणाल ने कहा—'आज तुम्हें रसोईघर दिखा दिया, लेकिन कल म भण्डार-घर की चाभी आँचल में बाँध दूँगी, क्यों ?'

अचला बोली—'चाभी की मुझे कोई जरूरत नहीं, बहन !'

मृणाल ने हँसकर कहा—'जरूरत नहीं ? बाप रे, यह कैसी बात कह रही हो ? भण्डार को क्या तुम इतना तुच्छ समझ रही हो—चाभी से तुम्हें कोई मतलब नहीं ? गृहिणी के राज की राजधानी तो वही है री !'

अचला बोली—'उसे राजधानी कह सकती हो, मेरा उस पर कोई लोभ नहीं। लेकिन तुम पर मेरा बड़ा भारी लोभ है। जल्दी नहीं छोड़ूँगी मृणाल जीजी।'

मृणाल ने दोनों बाहों में अचला को जकड़कर कहा—'सौत को झाड़ू मारकर निकाल बाहर करने के बजाय पकड़कर घर में रखना चाहती हो—यह तुम्हारी कैसी अक्ल है ?'

अचला आहिस्ते-आहिस्ते बोली—तुम्हारा यह हँसी-मजाक मुझे तो अच्छा नहीं लगा बहन। अच्छा, इस देश में सभी क्या इसी तरह की मजाक किया करती हैं ?'

मृणाल खिल-खिलाकर हँस पड़ी। बोली—'नहीं री, मेरी दादी, नहीं करते। सिर्फ मैं ही करती हूँ। यह चीज दूसरों को मिलेगी कहाँ से ?'

अचला बोली—'हम तो इसे पाकर भी अपनी जबान पर ला नहीं सकतीं, बहन ! हमारे कलकत्ता के समाज में बहुत तो ऐसा सोच भी नहीं सकतीं कि कोई सम्भ्रान्त महिला इस तरह की बातें जबान पर ला भी सकती हैं।'

मृणाल बिल्कुल शर्मिन्दा न हुई बल्कि जोर से अचला को एक बार और चिपकाकर बोली—'तुम्हारे शहर की कितनी भद्र महिलाएँ मेरी तरह इस प्रकार लिपट सकती हैं, कहो तो भाभी ! सभी क्या सब काम कर सकती हैं ! यही देखो, तुमसे मुलाकात हुए

कितनी देर हुई है, और इसी बीच मन में हो रहा है, मेरे कोई बहन न थी, सो एक छोटी बहन पा गई। और यह सिर्फ मैं बात नहीं बना रही हूँ, जिन्दगी भर इसके लिये मुझे सबूत जुटाना पड़ेगा—सो मन में याद रखो। इसमें हँसी-मजाक नहीं चलेगा।'

अचला पढ़ी लिखी लड़की थी। इस देहाती दुनिया के विरोधी समाज के बीच उसका भावी जीवन कैसे कटेगा, इस घर में पैर रखते ही समझ गई थी। इस सुअवसर को उसने योंही हाथ से न जाने दिया। हँसी को गम्भीरता में परिणत करके बोली—'मृणाल जीजी, क्या सचमुच तुम इसके लिये जिन्दगी भर सबूत जुटाती रहोगी?'

मृणाल बोली—'मैं तो शहरी औरत हूँ नहीं, बहन—ज़रूर जुटाती रहूँगी! एक बार जो तुम्हें छूकर कह दिया, वह मरने पर भी टल नहीं सकता।'

अचला ने इस बात पर अधिक तर्क-वितर्क न करके दूसरी बात चला दी; हँसकर बोली—'जल्दी भाग तो नहीं जाओगी, यह भी इसी तरह कह दो।'

मृणाल हँसकर बोल उठी—'बेवकूफ समझकर धीरे-धीरे जाल में फँसा लेना चाहती हो भाभी! लेकिन यह तो पहले ही तुमसे बता दी बहन, कि बिना अच्छी तरह घर का चार्ज समझाये मैं मानूगी नहीं।'

अचला सिर हिलाकर बोली—'चार्ज लेने की मेरी तिल भर भी इच्छा नहीं।'

मृणाल बोली—'यही मैं कराकर तब जाऊँगी, लेकिन अधिक दिन तक तो मैं घर छोड़कर यहाँ पड़ी नहीं रह सकती, बहन! तुम जानती हो कि कितनी बड़ी गृहस्थी का भार मेरे सिर पर है।'

अचला गर्दन हिलाकर बोली—'नहीं, यह सब मैं नहीं जानती।'

मृणाल ने आश्चर्य से पूछा—'सफले भैया ने मेरी बात तुमसे पहले कभी नहीं बताई?'

अचला बोली—'नहीं, कभी नहीं। उन्होंने अपने घर के बारे में सारी बातें मुझसे बता दी थीं। लेकिन जो सबसे पहले उन्हें बताना चाहिये था, वही तुम्हारी बात उन्होंने कभी नहीं बताई, इससे मुझे अत्यन्त आश्चर्य हो रहा है मृणाल जीजी!'

मृणाल अन्यमनस्क की तरह बोली—'ऐसी बात।'

अचला कुछ देर चुप रहकर मुस्कुराती हुई कोमल स्वर में बोली—'जान पड़ता है, पहले तुम्हारे ही साथ उनकी शादी होने की बात थी?'

मृणाल उस वक्त भी अनमनी-सी कुछ सोच रही थी, बोली—'हाँ।'

अचला बोली—'तो फिर हुई क्यों नहीं? ऐसा होता तो बड़ा अच्छा रहता।'

इतनी देर बाद बात मृणाल के कानों में खटकी। वह अचला की ओर आँखें उठाकर बोली—'ऐसा होनहार नहीं था, इसलिये नहीं हुआ।'

अचला ने फिर भी पूछा—'होने में रुकावट क्या थी? उनसे तुम्हारा कोई सच्चा रक्त का सम्बन्ध तो है नहीं! इसके अलावा, बचपन से ही उत्पन्न हुए प्रेम की उपेक्षा करना भी ठीक नहीं था?'

उसके पूछने के ढंग से मृणाल अचानक चौंक उठी! क्षणभर नजर गड़ाकर अचला के मुँह की ओर देखकर बोली—'यह सब तुम क्या पता लगा रही हो भाभी! तुम क्या यही समझ रही हो कि बचपन के प्रेम का अन्तिम फल यही होता है! नहीं, शादी-विवाह मनुष्य के अधीन की बात नहीं है। यह सिर्फ़ इसी जन्म का नहीं भाभी, जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध होता है। मैं जिनकी जन्म-जन्मान्तर की दासी हूँ, उन्हीं के हाथों प्रभु ने सौंप दिया। मनुष्य की इच्छा-अनिच्छा से कुछ नहीं होता।'

अचला लज्जित होकर बोली—'यह तो ठीक बात है, मृणाल जीजी—मैं भी वही पूछ रही थी—'

वह अपने बात को पूरी भी न कर पाई थी कि उसका सारा चेहरा लज्जा से लाल हो उठा। मृणाल से यह बात छिपी न रही। वह अचला

के हाथ को बड़े प्रेम से अपनी मुट्ठी में लेकर बोली—'भाभी, तुमने सिर्फ़ उस दिन अपने पति को प्राप्त किया है, लेकिन मैं पाँच साल से उनकी सेवा कर रही हूँ। मेरी यह बात सुन रखो, बहन, स्वामी के इस पहलू को किसी दिन अपनी बुद्धि बल से आविष्कार करने की चेष्टा न करना। इससे बल्कि ठगा जाना भला है, जीतने से कोई लाभ नहीं।'

जदूदू ने बाहर से ही कहा—'दीदी, बाबू लोगों के भोजन का चौका तैयार हो गया।'

'अच्छा, चलो, मैं आती हूँ' कहकर मृणाल अचानक दोनों हाथ से अचला का मुख खींच और चूमकर जल्दी से चलती बनी।

१५

'ओ भाभी!'

अचला बगलवाले कमरे से हड़बड़ाकर इस कमरे में आ पहुँची।

मृणाल कमर में आँचल बाँधकर एक छोटे से दराज को अकेली ही खींच-खाँचकर सीधा करने में लगी हुई थी। अचला के कमरे में पैठते ही वह दिखावटी क्रोध में चिल्ला उठी—'अरी मुँहजली लड़की, तुम तो नवाब की तरह हाथ-पाँव समेटे बैठी रहो, और मैं तुम्हारे शयन-गृह को सजाती रहूँ? चल उस झाड़ू को उठा - उस कोने को साफ कर।' यह कहती हुई हँसी और न रोक सकी और खिलखिलाकर हँस पड़ी।

शोर-गुल सुनकर हरि की माँ भी पीछे-पीछे आ गई थी। उसने कहा—'तुम भी क्या कहती हो दीदी। घर में कितने नौकर-चाकर हैं—मेरी अचला बहन ने क्या कभी झाड़ छुआ है जो वह देहाती लड़की की तरह झाड़ देगी? मैं खुद झाड़ दिये देती हूँ।' यह कहकर वह झाड़ू उठाने जा ही रही थी, कि मृणाल ने बनावटी क्रोध के स्वर में उसे धमकाकर बोली—'अरी औरत तू ठहर जा। अचला बहन को

क्या तू मुझसे ज्यादा जानती है, जो सिफारिश करने आ पहुँची ?' यह कहकर अचला के हाथ में झाड़ू थमाती हुई हरि की माँ से हँसकर बोली—'अरी, तेरी अचला बहन इच्छा करने पर जिस काम को कर सकती है, उसे तेरी जैसी बीसों देहाती लड़की भी नहीं कर सकतीं।' अचला से बोली—'अच्छा भाभी, इस कोने को जरा चट से साफ तो कर डालो।'

अचला झाड़ू लगाना शुरूकर बोली—'मृणाल जीजी, तुम जादू-टोना जानती हो न ?'

मृणाल बोली—'कैसे ?'

अचला बोली—'नहीं तो इतने बड़े घर को साफ करने के लिये भला मैं अपने हाथ में झाड़ू लेती, यह जादू-टोना नहीं तो और क्या है ?'

मृणाल बोली—'तुम नहीं लोगी तो और कौन लेगी ? तुम्हारे घर झाड़ने-बटोरने क्या उस टोले से पदी की मौसी आयेगी ? अच्छा, अब बातचीत में समय नष्ट न करो, शाम हो चली।'

अचला ने झाड़ू देते-देते हँसकर कहा—खुद तो ज़रा भी दम नहीं लेती और मुझे भी पीसे डाल रही हो। सच कहती हूँ, मृणाल जीजी, इन पाँच-छः दिनों में तुमने मुझसे जितना काम लिया है, चाय-बगान का मालिक भी शायद अपने कुलियों से इतनी मेहनत नहीं लेता।

मृणाल नजदीक आकर उसकी ठोडी पर अँगुली की एक चोट करके बोली—'तभी तो, घर-द्वार देखने से मालूम पड़ता है कि घर में लक्ष्मी का आविर्भाव हुआ है, मेहनत की बात कहती हो भाभी,—जब पति-पुत्र और घर गृहस्थी को लेकर नहाने-खाने की भी फुर्सत नहीं पावोगी, तब यह स्त्री-जन्म सार्थक होगा। भगवान से मैं यही प्रार्थना करती हूँ कि एक दिन तुम्हें वह दिन दिखावें—अभी मेहनत का तुमने देखा ही क्या है मलकिन !' इतना कह हँसते ही उसका होंठ काँप उठा।

हरि की माँ अचानक जोर से रो पड़ी और बोली—'यही आशीर्वाद दो जीजी, सिर्फ यही आशीर्वाद दो !' उसे अचला की माँ याद आ गई थी—वह साध्वी जब अकाल ही काल के गाल में समा गई; उस वक्त अपनी एक मात्र कन्या को हरि की माँ के हाथ सौंप गई थी। वही कन्या आज इतनी बड़ी होकर पति का घर सम्हालने आई है।

मृणाल उसे धमकाती हुई बोली—'ओ मुई, पगली कहीं की, रोती क्यों है ?'

हरि की माँ आँखें पोंछती हुई बोली—'शौकिया तो रो नहीं रही हूँ जीजी ? तुम्हारी बातें सुनकर रुलाई रोके नहीं रुकती। कस्मियन कहती हूँ अगर न आई होती तो इस घर में कैसे एक भी रात कटती मेरी समझ में नहीं आता।'

इस घर में आये मृणाल को आज छः दिन हुए। आते ही वह घर-द्वार से लेकर मनुष्य तक के चेहरे को बदलने में लगी हुई थी। लेकिन उसके सब काम-काज, हँसी-मजाक के साथ होने पर भी उसकी जुदाई का ख्याल होते ही अचला अत्यन्त दुखी हो उठती थी। कारण, मृणाल की बातचीत, आचार-व्यवहार में एक इतना बड़ा स्वाभाविक अपनापन था, जिसके सहारे अचला को सरलता से अपने नवीन जीवन के नये घर को पहचानने का मौक़ा मिला था तथा इससे भी एक बड़ी चीज़ को अच्छी तरह पहचानने की उसे उत्कण्ठा थी—वह चीज थी, खुद मृणाल। उसकी आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी यह आभूषण-रहित उसके दोनों हाथों की तरफ देखने से ही पता चलता था। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्यहीन वृद्धपति—किसी भी दृष्टिकोण से वह अचला के विचार से मृणाल के योग्य न था; तिस पर गृहस्थी की भरपूर मेहनत, बीमार पड़ी हुई उसकी बूढ़ी सास जिसका दम न मालूम कब टूटे। बिना वजह हरदम डाँट-फटकार लगाये रहती।—ये सारी बातें मृणाल के मुँह से ही उसने सुनी थीं। फिर भी, ये प्रतिकूल परिस्थितियाँ इस ग्राम्य-कन्या को जीवन-यात्रा के पथ से विचलित करने में असमर्थ थीं।

हृदय के आनन्द-निरानन्द को छोड़ मानों वाह्य किसी वस्तु की सत्ता ही नहीं, यही था इस गँवार देहाती लड़की का ख्याल। हर वक्त साथ-साथ रहकर वह अच्छी तरह समझ गई थी, कि कमल जिस तरह पंक के मध्य उत्पन्न होकर भी पंक की मलीनता से दूर रहता है, ठीक उसी तरह यह बे पढ़ी-लिखी दरिद्र ग्राम्य-कन्या सब प्रकार के सांसारिक दुख-दारिद्रय की गोद में दिन-रात निवास करती हुई भी समस्त वेदना व दक्षिणा से निर्लिप्त होकर हँसती-खेलती आगे बढ़ती जा रही थी। न तो उसे थकावट सताती, न उसकी जबान थमती इसलिये अचला को भी वह उन सभी अनाभ्यस्त कार्यों में लगाये रहती यद्यपि उसके शिक्षा-संस्कार के साथ इन कार्यों का सामञ्जस्य नहीं था, फिर भी, ना कहकर मुँह फिरा लेना बड़ी शर्म की बात है, यही अचला सोचती थी। इन छः दिनों के बीच एक बार भी एकान्त में बैठकर अपने भाग्य को रोने-धोने का मौक़ा अचला को नहीं मिला—हर घड़ी उसे काम में फंसाये रखती, हँसी-मजाक में उसको बहलाये रहती। इसीलिये उसके ससुराल जाने के इशारे भर से अचला को मालूम पड़ता—मानो यह मिट्टी का सारा घर दरवाज़ा, खिड़की व दीवाल सहित पलक मारते ही तास के घर की नाईं ढह जायगा। मृणाल जीजी के चले जाने पर कैसे वह घड़ी भर भी यहाँ टिक सकेगी!

शाम के बाद एक बार अचला ने कहा—'हमेशा जाऊँ, जाऊँ कर रही हो, मृणाल जीजी, मायके में आकर कौन इतनी जल्द लौट जाता है, कहो तो? यह न होगा जब तक मैं कलकत्ते वापस नहीं चली जाती, तब तक तुम्हें यहाँ ठहरना ही पड़ेगा।'

मृणाल बोली—'क्या करूँ भाभी, बुढ़िया सास न तो खुद मरती है और न मुझे घड़ी भरके लिये छोड़ती है। मैं कहती हूँ, बुढ़िया तू मर, तेरे लड़के की उम्र साठ के करीब हो चली, क्या उसे खाकर बाद में जायगी! रात-दिन इतना खाँसती है, फिर भी एक बार दम घुटकर मरती नहीं।'

अचला हँसकर बोली—'मालूम पड़ता है, तुम उन्हें नहीं सुहातीं।'

मृणाल ने सिर हिलाकर कहा—'फूटी आँखों से भी नहीं।'

अचला ने कहा—'और तुम ?'

मृणाल बोली—'मैं भी नहीं। मैंने बुढ़िया को मौत के लिये सवा रुपये को लड्डू चढ़ाने की मनौती जो मान रखी है।'

अचला ने माथा हिलाकर कहा—'यकीन नहीं होता मृणाल जीजी ! घर में तुम किसे फूटी आँख नहीं देख सकती यह तुम्हारी बात से कोई समझ नहीं सकता। मैं तो समझती हूँ कि तुम इस बुढ़िया को ही सबसे अधिक प्यार करती हो।'

मृणाल मुस्कुराकर बोली—'सबसे अधिक प्यार करती हूँ ? हो सकता है।' यह कहकर अचला के गाल पर एक मीठी चपत जड़कर काम में लग गई।

जाऊँ-जाऊँ करते-करते मृणाल के कुछ दिन और कट गये। एक दिन अचानक अचला के मन में यह बात उठी कि चाहे वह मुँह से जितना जाने को कहती है, सचमुच चले जाने की दिली ख्वाहिश नहीं है। इतने दिन उसकी आड़ में संसार को उसने जिस तरह पहचान लिया था, आवरण हटाकर बाहर आने पर संसार का वह रूप अब उसकी आँखों में नहीं रहा। इस घर में पाँव रखने से लेकर अब तक जब भी उसे अपने पति के साथ हँसी-मजाक करते देखती, तभी मानो उसका कलेजा धक् हो जाता, लेकिन अब तो बीच-बीच में मानो सर्प चुभने की सी पीड़ा होने लगी। यह सब कुछ नहीं यह कोरा हँसी-मजाक के और कुछ नहीं—रंज का कोई सबब नहीं—मेरा मन बहुत मैला है—इस तरह सोच वह जब अपने पर काबू पाने की कोशिश करती, उसी वक्त कहीं से इच्छा न रहने पर भी उसके हृदय में सन्देह का प्रतिकूल तर्क अपना सिर उठा उसे विचलित कर देता। महिम की स्वाभाविक गम्भीरता इस जगह उसे बहुत खलने

लगी। वह मन ही मन यह कहकर तर्क करती रहती कि अगर भीतर कोई ऐसी बात नहीं तो हँसी-मजाक का जवाब हँसी-मजाक से देने में क्या हर्ज है! जो मजाक नहीं कर सकता, वह कम से कम उसका मजा तो ले सकता है। इसके अलावा, वह साफ देखती कि मृणाल ज्योंही हँसी-मजाक छेड़ना शुरू करती, महिम शर्मिन्दा हो कर किसी तरह जल्द वहाँ से निकल भागता। इसीलिये कहीं न कहीं कुछ दाल में काला जरूर है—आजकल इस चिन्ता को वह किसी भी तरह हृदय से दूर नहीं कर सकती। मृणाल के साथ एक जगह काम-काज करते-करते भी उसके मन में सैकड़ों बार यह विचार उठता, कि वह स्वयम् स्त्री होकर जब हृदय में ईर्ष्या रहते भी उसे किसी तरह छोड़ नहीं सकती, तो एक जगह इतने दिन एक साथ रहकर भी कौन पुरुष प्रेमी स्त्री को बिना प्यार किये रह सकता है?

मृणाल के आते ही उड़िया ब्राह्मण को रसोई-घर की जिम्मेदारी से छुट्टी मिल जाती थी यह अचला नहीं जानती थी। इस बार भी छुट्टी पाकर वह इधर-उधर मौजें मार रहा था। लेकिन अचला सिर्फ यही गौर करने लगी कि मृणाल को अपने हाथ से रसोई बना महिम को खिलाने में अपार आनन्द होता है। आज सबेरे अचानक वह बोल उठी—'मृणाल जीजी, आज तुम्हारी छुट्टी।'

मृणाल बात न समझकर बोली—'किस बात की छुट्टी, भाभी?'

अचला बोली—'रसोई की। आज मैं ही बनाऊँगी।'

मृणाल दंग होकर बोली—'हाय रे भाग्य! तुमसे रसोई होगी?'

अचला ने सिर हिलाकर कहा—'वाह, मैं रसोई बनाना जानती नहीं क्या? घर पर तो मैंने कितनी बार की है। नहीं मृणाल जीजी, आज मैं रसोई अवश्य बनाऊँगी।'

उसका हठ देखकर मृणाल अचानक उदास हो गई और बोली—'यह कैसे हो सकता है, मेरे रहते तुम रसोई-घर के धुँआ-धुक्कर में घुटकर मरने जाओगी बहन?'

उसके मुख का भाव लक्ष्य करके अचला जिद्द करती हुई बोली—'अगर ऐसी बात है तो महराज के रहते तुम्हीं क्यों तकलीफ़ उठाती हो ? इस बेरा मैं जरूर बनाऊँगी।'

क्यों वह इतना हठ कर रही है, यह मृणाल बिल्कुल न समझ सकी। वह हँसी को रोककर बनावटी नाराजी से गर्दन हिलाकर बोली—'वाह री छोकरी ! मालूम होता है, एक-एक करके सब कुछ मुझसे छीन लेना चाहती हो ? सब तो छीन चुकी, एक-दो दिन रसोई बनाकर खिलाती जाऊँ, इतना भी तुमसे बर्दाशत नहीं हो रहा ? मालूम पड़ता है, अब से सौतिया डाह शुरू हो गई ?'

अचला का दिल फिर दहल गया। मृणाल की अन्तिम बात ने उसकी ईर्ष्या की व्यथा को बड़े जोर से उकसा दिया। वह तत्क्षण गम्भीर होकर संक्षेप में बोली—'नहीं, आज मैं ही पकाऊँगी।'

मृणाल को अब पता चला कि अचला नाराज़ हो गई है। इसलिये, अधिक तर्क-वितर्क न करके उदास होकर थोड़ी देर चुप रह, फिर बोली—'अच्छा, तो फिर तुम्हीं बनाओ। अच्छा चलो, कहाँ क्या है, सब कुछ तुम्हें दिखा आऊँ।'

महिम इस वक्त घर में ही था। दोनों में से किसी को पता नहीं था। सहसा उसको सामने पाकर दोनों जने शरमा गईं।

महिम ने अचला को सम्बोधन करके आहिस्ते-आहिस्ते कहा—'मृणाल कितने दिन है, तब तक उसीको रसोई बनाने दो न ?'

वह क्यों इतनी आपत्ति कर रही थी सो महिम जानता था। लेकिन उस बात को जाहिर करना मुश्किल था।

अचला और भी जल गई, लेकिन क्रोध को दबाकर सिर्फ़ इतना बोली—'नहीं, मैं ही बनाने जा रही हूँ।' यह कहकर वाद-प्रतिवाद के लिये न ठहर झट से खिसक गई।

अचला ज़बरदस्ती रसोई बनाने चली गई। रसोई के काम में वह किसी से कम होशियार नहीं थी किन्तु इसमें उसका दिल ही न लगा।

पिछले दिनों की सारी घटनायें उठते-बैठते उसके दिल को दुखाने लगी। उसको मालूम होने लगा—इसीलिए महिम उसे किसी दिन भी उतना प्यार नहीं कर सका है। उसकी शादी से कुछ ही पहले सुरेश को लेकर जो संघर्ष उपस्थित हो गया था; उन सारी बातों पर विचार करने के बाद आज सहसा मानों वह स्पष्ट रूप से देखने लगी—महिम उसके प्रति हमेशा से उदासीन रहा है; और जिस वक्त पिता की अनिच्छा के कारण पूर्व का सम्बन्ध एकदम टूटा जा रहा था, उस वक्त भी क्यों महिम रञ्चमात्र भी विचलित नहीं हुआ, इस बारे में अब उसे रत्ती भर भी संशय न रहा।

यहाँ आने के बाद हमेशा मृणाल और अचला एक साथ भोजन करने बैठती थीं। दोपहर के वक्त हरि की माँ को भेजकर अचला मृणाल की बाट देख रही थी, वह वापस आकर बोली—'मृणाल जीजी को कुछ बुखार-सा हो गया है—वे नहीं खायेंगी।'

अचला बिना कुछ कहे मृणाल के कमरे में आ पहुँची। मृणाल आँखें मूँदकर बिछौने पर सोई हुई थी; अचला बोली—'खाने चलो, मृणाल जीजी।'

मृणाल ने आँखें खोलकर देखा और कुछ हँसकर बोली—'तुम खा लो बहन, मेरा जी अच्छा नहीं है।'

अचला ने सूखे स्वर में पूछा—'क्या हुआ है? बुखार?'

मृणाल बोली—'ऐसा ही कुछ मालूम पड़ रहा है। आज उपवास कर लेने से ठीक हो जायगा।'

अचला ने झुककर हाथ से मृणाल के कपार का ताप अनुभव करके बोली—'मैं इतनी बेवकूफ़ नहीं हूँ मृणाल जीजी, खाने चलो।'

मृणाल ने गर्दन हिलाकर कहा—'कसम खाती हूँ भाभी, मैं नहीं खा सकती। क्यों तुम तकलीफ़ करके बुलाने आई बहन? अच्छा चलो, मैं तुम्हारे सामने बैठी रहूँगी।'

अचला कठोर होकर बोली—'एक भूखी सखी को सामने बिठाकर खुद खा लेने की शिक्षा हम लोगों ने नहीं पाई है मृणाल जीजी !'

मृणाल फिर भी हंसने की कोशिश करती हुई बोली—'और सखी के लिए खाने का कोई चारा ही न रहा हो, तब !'

अचला ने उसी तरह जवाब दिया—'चारा क्यों नहीं, पहले सुनूँ तो ! तुम्हें बुखार नहीं है, गुस्सा है। खुद भूखी रहकर मुझे भी भूखा रखोगी, अगर यही इच्छा है तो साफ़-साफ़ कहो, मैं तुम्हें और तंग न करूँगी।'

मृणाल झट उठ बैठी और सनक में आकर बोल उठी—'अपने पति की सौगन्ध खाकर कहती हूँ भाभी, मैं ज़रा भी गुस्सा नहीं हूँ, लेकिन मैं खा नहीं सकती। चलो भाभी, मैं तुम्हें गोदी में बिठाकर खिलाऊँगी।'

अचला बोली—'तो फिर, बुखार-उखार कुछ नहीं है। सिर्फ़ बना रही हो।'

मृणाल चुप हो गई। अचला स्वयं कुछ देर स्तब्ध भाव से खड़ी रही और एक साँस लेकर धीरे-से बोली—'इतनी देर के बाद बात समझ में आई। लेकिन अगर पहले खोलकर कह दिया होता मृणाल जीजी, कि तुम मेरा छुआ हुआ घृणा से मुँह में न दे सकोगी, तो इस तरह जिद्द करके तुम्हें कष्ट न देती, अपने दास-दासी के सामने शर्मिंदा होने से बच तो जाती ! खैर, जो हुआ सो हुआ, मुझे माफ़ करो बहन—पर दूध में तो छूत नहीं माना जाता, वही एक कटोरी लाये देती हूँ—और जदू को भेजकर दूकान से कुछ सन्देश भी मँगवा देती हूँ। क्यों, क्या कहती हो ?'

पहले तो मृणाल हतबुद्धि-सी स्तब्ध रही; फिर कुछ देर बाद वह भाव दूर हो जाने पर भी कुछ बोली नहीं, सिर झुकाये चुपचाप बैठी रही।

अचला फिर उकसाती हुई बोली—'क्या कहती हो ?'

मृणाल आँचल से आँखें पोछकर मृदु स्वर में केवल यह बोली—'अभी रहने दो।'

अचला कुछ देर और चुपचाप वहाँ खड़ी रहकर धीरे-धीरे चली गई।

मृणाल ने न तो सिर ही उठाया और न कोई बात ही कही। वह रसोई करके बूढ़ी सास को खिलाती है। वे बड़ी छूत-छात मानती हैं। इस बात को सुनकर वे कभी उसके हाथ का छुआ जल भी न पियेंगी। मृणाल ने अत्यन्त अभिमान में आकर इस बात का आभास भी अचला को न होने दिया।

अचला ने रसोई-घर में जाकर वहाँका बाकी काम निबटाया, और हाथ धोकर अपनी कोठरी में जाकर लेट गई। लेकिन कारण कुछ भी हो, सिर्फ घृणा की ही वजह से उसका बनाया अन्न-जल मृणाल ने स्पर्श नहीं किया, इस बात को मन-ही-मन झूठा समझकर ही अचला ने इस तरह से चोट की थी। अगर इसे सच समझती तो एक शब्द भी अपनी जबान पर न लाती। और जो आज का सवेरा कलह से ही शुरू हुआ था, उसी दोपहर के वक्त तैयार अन्न-जल को भगवान ने किसी के भाग्य में न सटने दिया, यह बात दोनों ही अपने मन में समझ गईं।

तीसरे पहर बैलगाड़ी आकर दरवाजे के सामने खड़ी हो गई। मृणाल ने अचला की कोठरी में जाकर कहा—'नमस्कार करने आई हूँ, भाभी—घर जा रही हूँ। अगर कभी इच्छा हो तो बुला लेना, मैं फिर हाजिर हो जाऊँगी।' थोड़ी देर थमकर फिर बोली—'लेकिन जाने के वक्त भी ज़रा सा नहीं बोल रही हो, बहन ?' यह कहकर कुछ देर उत्सुक नेत्रों से देखती रही।

लेकिन अचला एक शब्द भी न बोली, जिस तरह बैठी थी उसी तरह सिर झुकाये बैठी रही। उसकी कोठरी से बाहर निकलते ही मृणाल

ने देखा महिम घर में प्रवेश कर रहा है। बोली—'ज़रा खड़े रहो भैया, तुम्हें भी प्रणाम कर लूँ।'

महिम ने सिर उठाकर पूछा—'बिना कुछ खाये ही घर चल दी मृणाल ? न हो तो, रातभर रहकर सबेरे ही चली जाना ?'

मृणाल सिर्फ थोड़ा हँसी और सिर हिलाकर बोली—'नहीं भैया, जदू गाड़ी ले आया है, आज जा रही हूँ—लेकिन और किसी दिन आऊँगी।' यह कहकर गले पर आँचल डाला और नमस्कार करके पाँव की धूली ली। फिर बोली—'तुम्हें मेरे सिर की कसम है, और किसी दिन मुझे ले आने को भूल मत जाना।'

आज महिम हँस पड़ा। वह बोला—'अरी, तेरा यह स्वाभाव क्या कभी नहीं जायगा ?'

'मरने पर ही जायगा, उसके पहले नहीं।'—इतना कहकर एक बार हँसकर मृणाल गाड़ी में जा बैठी।

आज ही एकाएक मृणाल चल देगी, अचला इस बात की कल्पना तक नहीं कर सकती थी। अचला अकेली घर में बैठी अब तक यही सब सोच रही थी कि मृणाल ने न खुद खाया न उसे ही खाने दिया, इस अपराध का सबसे बड़ा दण्ड उसे किस तरह दिया जाय ? जो प्रेम करता है, उस पर घृणा करने का अपवाद लगाने से बढ़कर और कोई दण्ड नहीं है यह बात प्रेम खुद जाहिर कर देता है। अचला मन-ही-मन मृणाल के लिये यही भारी दण्ड निश्चित किये बैठी थी। मृणाल-जीजी उसको ब्राह्म-समाजी समझकर घृणा करती है, उठते-बैठते इसी उलहने को देकर उसने आज का बदला चुकाने का इरादा किया था, लेकिन उसके चले जाने से सब चौपट हो गया।

फिर भी मृणाल भूखी विदा होकर जब घरसे बाहर हुई थी, तब उसकी भी आँखें भर आई थीं। लेकिन बाहर मृणाल के मुँह से उसने जो एक हँसी की आवाज सुनी उत्तप्त मरुभूमि की तरह पल भर में ही उसके निकले हुए आँसुओं को सुखा दिया; और दरवाजे की ओट में

खड़ी होकर जब ध्यानपूर्वक उन दोनों की बिदाई का दृश्य देखा तो बज्राहत वृक्ष की तरह जहाँ की तहाँ खड़ी-खड़ी जलने लगी।

थोड़ी देर बाद ही महिम ने जब कमरे में प्रवेश किया, तब अचला का स्वाभाविक धैर्य प्रायः समूल नष्ट हो गया था। लेकिन फिर भी, आजन्म के शिक्षा-संस्कार ने उसे नीचता से बचा लिया। जी जान से अपने पर काबू करके बोली—'वास्तव में शहर के आदमी की देहात में आकर बसने से बढ़कर और कोई बदनसीबी दुनिया में शायद ही हो।'

महिम पत्नी के मुंह की ओर देखकर कुछ देर चुप रहने के बाद बोला—'तुम अपनी ही बात कह रही हो न ? मैं समझता था कि पहले-पहल तुम्हें बहुत किस्म की तकलीफें होंगी लेकिन मृणाल के साथ तुम्हारी न पटेगी, यह मैंने बिल्कुल न सोचा था क्योंकि उसके साथ कभी किसी का झगड़ा नहीं हुआ।'

अचला बोली—'मेरे साथ ही मुहल्ले भर के लोगों का बराबर झगड़ा होता रहा है, यह बात तुमने कहाँ से सुनी ?'

महिम धीरे-धीरे बोला—'तुमने दिन भर कुछ खाया नहीं खैर इन बातों की अभी कोई जरूरत नहीं।'

अचला और भी जल-भुनकर बोली—'मृणाल जीजी भी दिन भर भूखी रहकर ही सासुरे चली गयीं, किन्तु उनके साथ हँस-हसकर बातें करने में तुम्हें आपत्ति नहीं हुई ?'

महिम आश्चर्यचकित होकर बोला—'यह सब तुम क्या कह रही हो अचला ?'

अचला बोली—'मैं यही कह रही हूँ कि मैंने कौन-सा भारी अपराध किया था जिसके लिये मेरा यह अपमान कराये बगैर तुम न रह सके ?

महिम ने हक्का-बक्का होकर फिर वही प्रश्न किया—'तुम क्या कह रही हो ? इन बातों का मतलब ?

अचला एकाएक उच्चकण्ठ से बोल उठी—'मतलब यही है कि किस अपराध के बदले तुमने यह मेरा अपमान किया ? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?

महिम विह्वल होकर बोला—तुम्हारा अपमान 'मैंने किया है ?'

अचला बोली—'हाँ, तुमने ।'

महिम ने इसका प्रतिवाद करते हुए कहा—'बिल्कुल झूठ ।'

अचला क्षण भर के लिये स्तम्भित हो गयी । इसके बाद कण्ठ स्वर कोमल करके बोली—'मैं कभी झूठ नहीं बोलती । जाने दो इस बात को; अभी अगर तुम्हें अपनी सत्यवादिता का इतना घमण्ड है तो सच्चा जवाब दोगे ?'

महिम उत्सुक नेत्रों से सिर्फ़ देखता रहा ।

अचला ने प्रश्न किया—'मृणाल जीजी आज जिस तरह यहाँ से चली गयी, क्या उसे तुम्हारे गँवई समाज में अपमान नहीं समझा जाता ?'

महिम बोला—'लेकिन उसमें मुझे क्यों लपेटना चाहती हो ?'

अचला बोली—'बताती हूँ; पहले बताओ यहाँ उसे अपमान समझा जाता है ?'

महिम ने कहा—'अच्छा, अगर समझा जाता हो—'

अचला बीच ही में बोली—'अगर-मगर मैं नहीं जानती, ठीक जवाब दो ।'

महिम ने कहा—'हाँ, गाँव में भी इसे लोग अपमान ही समझते हैं ।'

अचला बोली—'मानते हैं न ? तो तुमने सब कुछ समझ-बूझकर यह अपमान कराया है । तुम्हें अच्छी तरह मालूम था कि, वो मेरी छुई रसोई नहीं खायेंगी, है न ठीक ?' यह कहकर एकटक देखने लगी मानो अपनी तीखी नजर से महिम के दिल को छेदना चाहती

हो। महिम उसी तरह घबड़ाया हुआ देखता रहा। जबान में चूँ तक न की। ठीक उसी वक्त बाहर से सुरेश के पुकारने की आवाज आ पहुँची—'महिम! कहाँ हो?'

१६

'कौन, सुरेश! आओ, अन्दर आओ। अच्छे तो हो?'

महिम के स्वागत-सम्भाषण के समाप्त होने से पहले ही सुरेश सामने आकर खड़ा हो गया। हाथ से ग्लैडस्टोन बेग को नीचे रखते हुए बोला—'हाँ, अच्छा हूँ। लेकिन यह क्या, अकेले ही खड़े हो? अचला बहूरानी क्षण भर में ही सचला बनकर अन्तर्ध्यान कैसे हो गयी? उनके चढ़े गले की आवाज़ ने ही तो मुझे उस चौराहे से इस घर का पता दे दिया।'

सचमुच अचला की अन्तिम बात क्रोध के आवेग में कुछ जोर से निकली थी, और दरवाजे के बाहर वह सुरेश के कानों तक पहुँच गयी थी।

सुरेश बोला—'देखो महिम, विदुषी पत्नी के होने से कितनी सुविधा होती है! अभी हुए ही कितने दिन हैं, लेकिन इसी बीच में देहाती प्रेमालाप की तर्ज को इस तरह अपना लिया है कि क्या मजाल कि कोई देहाती महिला भी उसमें जरा-सा नुक्स निकाल सके।'

महिम लज्जा से सुर्ख होकर चुपचाप खड़ा रह गया। सुरेश ने कोठरी की ओर देखकर अचला को लक्ष्य करके फिर कहा—'बड़े बेवक्त पहुँचकर मैंने सारा मज़ा किर-किरा कर दिया, भाभीजी माफ कीजियेगा। महिम, तुम खड़े कैसे रह गये? अगर बैठने के लिये कुछ हो तो लाओ, ज़रा बैठूँ। चलते-चलते पाँव के जोड़ ढीले पड़ गये हैं—अच्छी जगह बसे हो भाई—चलो, चलो, कलकत्ते चलो।'

'चलो'—कहकर महिम उसे बाहर की बैठक में ले गया।

बैठते हुये सुरेश बोला—'भाभीजी क्या मेरे सामने बाहर नहीं होंगी! पर्दानशीन हो गयी हैं क्या!'

महिम के जवाब देने से पहले ही बगल के दरवाजे से अचला सामने आ पहुँची। उसके मुख पर कलह का चिह्नमात्र भी न था, नमस्कार करके प्रसन्नमुख से बोली—'यह तो आशातीत सौभाग्य है हमारा! लेकिन एकाएक कैसे भूल पड़े?'

उसके प्रफुल्ल हँसते हुए चेहरे पर सुख सौभाग्य की आभा की कल्पना से सुरेश का हृदय ईर्ष्या से मानो जल उठा; हाथ जोड़ नमस्कार करके बोला—'अब समझा, इस तरह अचानक आना ठीक नहीं हुआ। लेकिन अभी मामला क्या था? यह पहिला मतभेद है यहाँ आने से लेकर अब तक इसी तरह मतभेद चल रहा है? कौन-सी बात ठीक है!'

अचला उसी तरह हँसते-मुख से बोली—'किसको सुनकर आप अधिक खुश होंगे, बताइये! आखिरी बात! ऐसी हालत में मुझे वही बताना ठीक है—अतिथि का दिल न दुखाना चाहिये।'

सुरेश का मुख गम्भीर हो गया। उसने कहा—'क्या कहा, न दुखना चाहिये! घर की मालकिन का यही तो असल काम है—यही उसका पक्का परिचय है!'

अचला हँसती हुई बोली—'जब घर ही नहीं तो घर की मालकिन कहाँ से! इन दुखियों की कुटिया में आज आपकी रात कैसे कटेगी यही मैं सोच रही हूँ। किन्तु तारीफ है आपकी जो जानबूझ कर भी इस तकलीफ को सहने आये हैं।'

पति के मुँह की ओर देखकर बोली—'अच्छा, नयन बाबू से कहकर चन्द्र बाबू के घर में आज रात इनके सोने की व्यवस्था नहीं हो सकती! उनका पक्का मकान है—बैठक खाना भी है। वहाँ इन्हें किसी तरह की तकलीफ न होगी।'

सौजन्य के आवरण में दोनों के बीच शब्दों के द्वारा प्रच्छन्न घात-प्रतिघात से महिम मन-ही-मन अधीर हो उठा था; लेकिन इस प्रसंग को किस तरह रोके यह नहीं सूझ रहा था, ऐसी स्थित में सुरेश ने स्वयम् इसका प्रतिकार कर दिया। सहसा हाथ जोड़ कर बोला—'मुझसे अपराध हो गया भाभीजी, जरा चाय तो पिलाओ। खाकर शरीर में ताकत आने के बाद नयन बाबू और श्रवण बाबू से कहो और चन्द्र बाबू के पक्के मकान में सोने के लिये सिफारिश कराओ। लेकिन जो कुछ कहो महिम, इस घर से अगर सचमुच इतना प्रेम है तो बड़ी खुशी की बात है।'

महिम की ओर से अचला ने ही हँसकर इसका जवाब दिया —'खुशी होना या न होना मनुष्य के हाथ में है, लेकिन यह मेरे ससुर का घर है, अगर इस पर खिंचाव न हो कर बड़े लाट के राज-महल पर खिंचाव हो तो वह बिल्कुल व्यर्थ है। रहने दो इसे, पहले टंच हो जाओ, फिर दूसरी बातें होंगी। मैं चाय का पानी गर्माने के लिये कह आयी हूँ, पाँच मिनट के अन्दर लाकर हाजिर किये देती हूँ—तब तक चुपचाप थोड़ा आराम करो।' यह कहकर हँसती हुई अचला चली गयी।

उसके जाते ही सुरेश के हृदय की जलन मानो और बढ़ गई। अपने को वह हमेशा से ही दुर्बल एवं चञ्चलचित्त का समझता था, और इसके लिये उसे न लज्जा थी न खेद। बचपन से ही मित्र मंडली जब महिम के साथ तुलना करके उसे सनकी, लहरी आदि कहकर दोष देती, तब वह मन-ही-मन खुश होकर बोल उठता—'यह ठीक है कि मेरे संकल्प में जोर नहीं है, मैं प्रवृत्ति का दास हूँ; लेकिन हृदय मेरा विशाल है—मैं कभी नीच या ओछापन नहीं करता।' मैं अपनी आय के मुताबिक व्यय करना नहीं जानता, पात्र-अपात्र का विचार करके दान नहीं करता—मन रो उठता है तो अपने शरीर का वस्त्र तक उतार कर दे देने में आना-कानी नहीं करता। फिर चाहे वह कोई भी हो, या

किसी भी कारण से हो, लेकिन ऐसी बात कोई जबान पर भी नहीं ला सकता था कि सुरेश किसी से द्वेष करता है, या स्वार्थ के वशीभूत होकर उसने ऐसा कोई काम किया है जो उसे करना न चाहिये था। इसलिये जन्म से ही हृदय की इस दुर्बलता के कारण ही जिसकी बदनामी थी और वह स्वयं भी इसे सच मान कर विश्वास करता था, वही सुरेश जब अचानक अचला के साथ सम्पर्क आने पर अन्तिम क्षण में अपने में इतने बड़े कठोर संयम को देख, उस वक्त अपने में इस अज्ञात शक्ति का अनुभव कर उसे सिर्फ आत्म-सन्तोष ही नहीं हुआ बल्कि उसका सारा हृदय गर्व से फूल उठा। अचला के विवाह के दो दिन बाद वह अपने मन में हमेशा यही कहने लगा—'मैं शक्ति-हीन, अक्षम नहीं—प्रवृत्ति का दास नहीं; बल्कि आवश्यक होने पर समस्त प्रवृत्तियों को हृदय से जड़सहित उखाड़ कर फेंक सकता हूँ। मित्रता क्या वस्तु है, मित्र के सुख के लिये एक आदमी कितना बड़ा त्याग कर सकता है, अबकी बार मित्र और मित्र-पत्नी दोनों समझें।'

लेकिन अधिक देर तक असत्य को छिपाया नहीं जा सकता, आत्म-संयम उसकी सच्ची वस्तु नहीं थी, वह थी आत्म-प्रतारणा। इसलिये एक पूरा हफ्ता भी न बीता कि मिथ्या संयम का मोह उसके विस्फारित हृदय से धीरे-धीरे निकल कर उसे संकुचित करने लगा। उसके मन में बारम्बार यह बात उठने लगी—'इस स्वार्थत्याग से मुझे मिला क्या? इसने मुझे दिया क्या? किसका सहारा लेकर अब मैं सभलूंगा! बुआजी ने कहा था—बेटा! इस बार तू भी इसी तरह की एक बहूरानी घर में ले आ, उसे लेकर गृहस्थी बसाऊँ।'

एक दिन समाज-मन्दिर के द्वार पर केदार बाबू से मुलाकात होने पर उन्होंने साफ कहा था—'यह काम अच्छा नहीं हुआ।' महिम के साथ कन्या की शादी करने की उनकी कतई इच्छा नहीं थी, सिर्फ सुरेश के निश्चेष्ट हो जाने के कारण ही उन्हें अन्त में अपनी सम्मति देनी पड़ी। घर आने पर सुरेश के दिल में अभिशाप की तरह यह भावना

प्रबल होने लगी कि इस शादी से कोई भी सुखी न हो। अचला भी अपनी भूल समझकर आत्म-ग्लानि की आग में जलकर मरे। लेकिन इससे उसके हृदय को छोटा नहीं समझना चाहिए। इस अकल्याण की कामना से अपने को विरत करने के लिए अनेक तरह से मन को समझाने लगा, लेकिन उसका पीड़ित एवं प्रतारित हृदय किसी भी तरह वश में न आया। एक निरे हठीले बच्चे की तरह वह इसी बात को दुहराने लगा। इस तरह ज्यों-त्यों करके एक महीना बिताया, लेकिन एक दिन कौतूहल-दमन में असमर्थ हो अन्त में बेग हाथ में लिये महिम के घर जा पहुँचा।

सुरेश मित्र के मुँह की तरफ़ देखकर बोला—'अब देख रहे हो महिम, मेरी बात कितनी सच निकली!'

महिम ने पूछा—'कौनसी बात!'

सुरेश विज्ञ की तरह बोला—'यह ठीक है कि मैं गाँव का रहनेवाला नहीं हूँ लेकिन इसकी सारी बातें मैं जानता हूँ। मैंने तुम्हें सावधान नहीं कर दिया था कि गाँव के समाज के साथ एक प्रबल विरोध उठ खड़ा होगा!'

महिम ने सहजभाव से कहा—'क्यों, कोई विरोध तो हुआ नहीं।'

'विरोध और कहते किसे हैं! तुम्हारे घर में किसी ने जीमा भी! यही क्या कम अपमान है!'

"मैंने तो जीमने के लिए किसी को बुलाया ही नहीं।'

'न बुलाओ। अच्छा, बहू-भोज में मुझे न्योता क्यों नहीं दिया महिम!'

'वह हुआ ही नहीं, इसलिए नहीं दिया।'

सुरेश विस्मित होकर बोला—'बहू-भोज हुआ ही नहीं? अच्छा—तुम लोगों के यहाँ—लेकिन इस तरह कितनी बार जान बचाओगे महिम! मुसीबत है, बाल-बच्चों का काम-धाम है—आख़िर घर-गृहस्थी में क्या नहीं करना पड़ता? मैं तो कहूँगा—'

इतने में जद्दू के हाथ चाय का सारा सामान तथा स्वयं मिठाई की थाली लिये अचला आ पहुँची। सुरेश की अन्तिम बात उसके कान में पड़ चुकी थी, लेकिन उसके चेहरे के भाव से सुरेश उसको भाँप न सका। दोनों मित्रों के जलपान और चायपानी खत्म होने पर महिम कंधे पर चादर डाल कर उठ खड़ा हुआ। गाँव के ज़मीनदार मुसलमान थे, उनके लड़के को महिम अंग्रेज़ी पढ़ाता था। ज़मीनदार साहेब स्वयं निरक्षर होने पर भी काफ़ी उदार थे तथा महिम के साथ उनका सद्भाव भी कम न था। इसीलिए गाँव के लोगों को समाज की दुहाई देकर अब तक उस पर अत्याचार करने का साहस नहीं हुआ।

अचला बोली--'आज अगर पढ़ाने न जाओ तो क्या काम नहीं चलेगा?'

महिम ने कहा—'क्यों।'

अचला का मनोबल तथा आन्तरिक निर्मलता चाहे कितनी बड़ी क्यों न हों, सुरेश के साथ उसका सम्बन्ध जिस हद तक पहुँच गया था, इसे देखते हुए उसके अचानक आगमन से कोई भी रमणी संकोच अनुभव किये बिना नहीं रह सकती थी। सुरेश को वह अच्छी तरह जानती थी। उसका हृदय चाहे कितना ही महान क्यों न हो, उसके हृदय के आवेष पर उसका विश्वास नहीं था—यहाँ तक कि वह उससे डरती थी। इस सन्ध्या के समय उसे सुरेश के साथ अकेली छोड़कर जाने के प्रस्ताव से वह मन-ही-मन व्याकुल हो उठी लेकिन बाहर रत्ती भर भी इस भाव को प्रकट होने न दिया। ज़रा हँसकर बोली—'वाह, यह कैसे होगा? अतिथि को अकेला छोड़कर—'

महिम ने कहा—'इससे अतिथि-सत्कार में कोई त्रुटि न होगी। इसके अलावा, तुम तो रहोगी ही—'

अचला बगलें झाँकते हुये बोली—'लेकिन मैं तो न रह सकूँगी।' सुरेश की ओर देखकर बोली—'हमारे उड़िया महाराज रसोई करने में

इतने होशियार हैं कि अगर उनके पीछे न लगी रहूँ तो कुछ मुँह में देने लायक न बनेगा। मैं कहती हूँ, बल्कि तुम—'

महिम गर्दन हिलाकर बोला—'नहीं, यह तो नहीं हो सकता। दो ही घटे की तो बात है।'—यह कह कर घर के कोने से उसने अपनी छड़ी उठा ली। एक तो यों ही महिम का कार्य-क्रम आसानी से नहीं बदला जा सकता, तिस पर एक मामूली-सी बात को लेकर बार-बार रोकने में अचला को शर्म मालूम होने लगी कि कहीं ऐसा न हो कि उसके भय को सुरेश ताड़ जाय और उसकी शर्म सौगुनी बढ़ जाय।

महिम धीरे-धीरे बाहर निकल गया। उसे सुनाकर सुरेश ने हँसकर अचला से कहा—'फिजूल कह कर क्यों अपनी बात गिराती हो? मैं हमेशा से जानता हूँ वह ऐसा पात्र नहीं है कि किसी की बात रखे। बल्कि तब तक के लिए मुझे एक किताब देकर अपने काम में लग जाओ—मेरा वक्त अच्छी तरह कट जायगा।'

यह बात अचला को लग गई, क्योंकि वास्तव में महिम किसी भी दिन उसका कोई भी अनुरोध नहीं रखता था। चाहे यह उसका महान् गुण ही क्यों न हो, लेकिन फिर भी सुरेश के मुँह से अपने पति की इस आजन्म-कर्तव्य निष्ठा की बात अपमानजनक उपेक्षा के रूप में उसके दिल में चोट कर गई। कोई जवाब न देकर वह अपने कमरे में चली गई और जदूदू के हाथ एक किताब भेजकर खुद रसोई-घर में दाखिल हो गई।

बहुत रात बीते जब महिम सोने गया तो उसने पूछा—'सुरेश यहाँ कितने दिन रहेगा, तुमसे कुछ बताया उसने?'

एक तो योंही कई बातों से आज दिन भर वह पति से नाराज़ थी; तिस पर इस प्रश्न में एक कुत्सित कटाक्ष कल्पना करके वह पल भर में जल उठी। कठोर कंठ से पूछ बैठी—'इसके मानी!'

महिम दंग रह गया। वह सरल-भाव से सिर्फ़ बात जानना चाहता था, व्यंग्य या कटाक्ष का कोई भाव नहीं था क्योंकि संकोच के कारण वह

स्वयं यह बात मित्र से नहीं पूछ सका था
बताया था। लेकिन उसे आशा थी, कि सुरेश न
कहा होगा।

महिम को चुप देख कर अचला स्वयं बोली—'इस बात के म. इतने सीधे हैं कि तुम्हें पूछने की ज़रूरत भी नहीं। तुम्हारा खयाल है कि सुरेश बाबू कोई खास मकसद से ही यहाँ आये हैं और उसके पूरे होने में कितनी देर लगेगी, वह मैं जानती हूँ। यही न ?'

महिम कुछ देर और चुप रहकर प्रेमपूर्ण स्वर में बोला—'मेरा उस तरह का कोई खयाल नहीं। लेकिन मृणाल के व्यवहार से आज तुम्हारा मन अच्छा नहीं तुम धीरज के साथ किसी बात को समझ न सकोगी। आज सो जाओ, कल फिर बातें होंगी।'—यह कहकर वह अपनी शय्या पर लेट कर नींद लाने की कोशिश करने लगा।

अचला भी पड़ी रही, लेकिन उसे नींद बिल्कुल न आई। उसके मन में सारे दिन जो बार बार विरक्ति इकट्ठी होती गई थी एक मामूली कलह के जरिये उसके बाहर निकल जाने पर वह स्वस्थ हो सकती थी लेकिन इस तरह जो एकाएक उसका मुँह बन्द कर दिया गया इससे वह भीतर ही भीतर जलने लगी। इसके अतिरिक्त जिस प्रसंग का अन्त हो चुका हो उसको एक गँवार औरत की तरह ज़बरदस्ती फिर छेड़ने में भी शर्म तथा ओछापन समझ ऐसा करना उसके लिए नामुमकिन था। वह सिर्फ कल्पना में स्वामी को प्रतिपक्ष में खड़ा करके चुभते हुए सवाल-जवाबों से अपने को छेदती हुई अधिक रात तक जगी रह कर बिछौने पर छटपटाती रही।

कुछ दिन चढ़ने पर जब अचला की आँख खुली तो वह हड़बड़ा कर उठ बैठी। बाहर आकर देखा कि जद्दू चाय की केतली लेकर रसोई घर की ओर जा रहा है। आवाज़ देकर पूछा—'बाबू, कुछ कह गये हैं जद्दू !'

जद्दू ने कहा—'पहर दिन के अन्दर ही लौटने को बोल गये हैं।'

...के ही उठकर अपना खेत-खलिहान देखने
... कभी-कभी दोपहर से भी ज़्यादा वक्त हो जाता

अचला ने पूछा—'नये बाबू जागे ?'

जदू ने कहा—'जरूर जागे हैं ! उन्हीं ने तो चाय तैयार करने को कहा है।'

अचला तड़फड़ हाथ-मुँह धो, कपड़े बदल, बाहर आकर देखती है कि सुरेश बहुत पहले ही तैयार होकर घर की खिड़कियों को खोलकर खुले दरवाजे के सामने एक कुर्सी पर बैठा हुआ वही कल वाली किताब पढ़ रहा है। अचला के पैरों की आहट से सुरेश ने किताब पर से नज़र हटाकर देखा—अचला के मुख पर रात्रि-जागरण के सारे चिह्न हैं। आँखों के नीचे कालिमा, गाल सूखे, ओंठ मलिन—वह जितना ही देखने लगा उसकी आँखें उतनी ही ईर्ष्या की अग्नि से जलने लगीं, लेकिन वह किसी भी तरह अपनी दृष्टि उस पर से न हटा सका।

उसकी दृष्टि का ढंग देख अचला विस्मित हो गई किन्तु मतलब न समझ सकी। बोली—'आप कब जागे ? मेरे उठने में आज कुछ देर हो गयी।'

'वही तो देख रहा हूँ'—इतना कहकर सुरेश ने धीरे-धीरे सिर हिलाया। सामने दीवाल पर बहुत दिन का पुराना एक दर्पण टँगा हुआ था ठीक उसी समय अचला की नज़र उस पर जा पड़ी और सुरेश की दृष्टि का तात्पर्य अब क्षण भर में उसके सामने स्पष्ट हो उठा। अपनी बुरी सूरत देखकर शर्म के मारे बिल्कुल गड़ गयी। इस चेहरे को किस तरह कहाँ छिपाये सुरेश की झूठी धारणा का किस तरह प्रतिवाद करे यह कुछ न सूझने के कारण द्रुतवेग से बाहर निकल गयी—जाते हुये बोलती गयी—'आपके लिये जरा चाय लेती आऊँ।'

सुरेश कुछ बोला नहीं; सिर्फ एक गहरी साँस लेकर अर्थहीन दृष्टि से शून्य की ओर देखता हुआ स्तब्ध बैठा रहा।

दस मिनट के बाद चाय का सामान लेकर अचला जब फिर आई तब तक सुरेश अपने को सम्हाल चुका था। चाय पीते-पीते सुरेश ने पूछा—'क्यों, तुमने नहीं पी ?'

अचला हँसकर बोली—'मैं अब नहीं पीती।'

'क्यों नहीं पीतीं ?'

'अब अच्छी नहीं लगती। इसके अलावा यह जगह गर्म है, पीने से नींद नहीं आती। कल तो करीब-करीब सारी रात नींद नहीं आयी। हँसकर बोली—'एक रात नींद न आने से चेहरा ऐसा हो जाता है कि किसी के सामने दिखाने लायक नहीं रहता।' यह कहकर सलज्ज हँसी हँसने लगी।

सुरेश क्षणभर चुप रहकर बोला—'लेकिन यह तो तुम्हारी बचपन की आदत है। चाय पीने के लिये महिम अनुरोध नहीं करता ?'

अचला हँसकर बोली—'अनुरोध करने से यहाँ सुनता कौन है ? इसके अलावा यह कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिसके बिना काम न चले।'

यह हँसी सूखी थी यह सुरेश ने स्पष्ट देखा। फिर कुछ देर तक मौन रहकर बोला—'तुम तो जानती ही हो, भूमिका बाँधकर बात करने की मेरी आदत नहीं और न मैं ऐसा कर ही सकता हूँ। लेकिन अगर साफ-साफ एक दो बात पूँछना चाहूँ, तो तुम नाराज़ तो न होगी ?'

अचला हँसते हुए बोली—'वाह ! नाराज़ क्यों होऊँगी ?'

सुरेश ने कहा—'अच्छा तो बताओ तुम इस जगह सुखी हो !'

अचला का हँसता चेहरा लाल हो उठा। वह बोली—'यह पूछना आपको उचित नहीं है।'

'क्यों ?'

अचला सिर हिलाकर बोली—'नहीं। मैं सुखी नहीं हूँ—आप का ऐसा सोचना ही अन्याय है !'

सुरेश जरा म्लान हँसी हँसकर बोला—'मन क्या न्याय-अन्याय विचार करके तब कुछ सोचता है, अचला ? सिर्फ दो महीने पहले ऐसा सोचना मेरे लिये उचित था, उचित ही नहीं, ऐसा सोचने का अधिकार था। आज दो महीने बाद अगर सारा अधिकार चला गया हो तो जाने दो—इसके लिये मैं शिकायत नहीं करता, अब सिर्फ सच्ची बात जानना चाहता हूँ। जब से आया हूँ एकबार सोचता हूँ जीत हुई, दूसरी बार सोचता हूँ हार हुई। मेरे मन को तो तुम जानती ही हो—एक बार सच-सच बताओ न अचला, बात क्या है ?'

दुर्निवार अश्रु-वेग अचला के कण्ठ तक उफन आया, लेकिन किसी तरह अपने को सम्हाल कर जोर से सिर हिलाकर बोली—'मैं अच्छी हूँ।'

सुरेश धीरे-धीरे बोला—'अच्छी बात है।'

इसके बाद कुछ देर तक किसी के मुँह से कोई बात न निकली। सुरेश मानो अचानक चकित होकर बोल उठा—'और एक बात। तुम्हारे लिये मैंने कितना सहा है, उसके लिये क्या तुम्हारे मन में कभी—'

अचला दोनों कानों में अँगुली डालकर बोल उठी—'इन बातों के लिये मुझे माफ कीजिये।'

सुरेश ने खुले हुए द्वार पर दोनों हाथ फैलाकर अचला के भागने का रास्ता रोककर कहा—'नहीं, मैं माफ नहीं कर सकता, तुम्हें सुनना ही होगा।'

उसकी आँखों में वही भयानक भाव था जिसे याद करके अचला आज भी काँप उठती है। थोड़ा पीछे हटकर डरती हुई बोली—'अच्छा कहिये—'

सुरेश बोला—'डरने की कोई बात नहीं। तुम्हारे बदन पर मैं हाथ नहीं लगाऊँगा, मुझमें अब भी इतना होश है।' इतना कहकर फिर चौकी पर बैठते हुए बोला—'इस बात को तुम्हें याद रखना है

होगा कि तुम पर से मेरा सारा अधिकार चला जानेपर भी मुझपर तुम्हारा सारा अधिकार अब भी मौजूद है।'

अचला रोकती हुई बोली—'इसको याद रखने से मेरा कोई लाभ नहीं, लेकिन—' इतना कहते-कहते उसने देखा कि इस बात से सुरेश को बड़ी चोट पहुँची और क्षणभर में उसका सारा चेहरा स्याह हो गया। उसी क्षण वह खुद भी अनुभव करने लगी कि अनुताप की बात खुद उसकी अपनी पीठ पर ज़ोर से आघात कर गई है।

क्षण भर चुप बैठी रहने के बाद इस बार कोमल कण्ठ से बोली—'सुरेश बाबू, इन सब बातों को सुनने से मुझे पाप लगेगा और आपको भी बोलना उचित नहीं क्यों आप इन सब बातों को छेड़कर मुझे दुखी करते हैं?'

सुरेश उसके चेहरे पर नज़र कर बोला—'क्या तुम दुख पाती हो अचला?'

अचला के मुँह से अचानक निकल गया—'मैं क्या पत्थर हूँ सुरेश बाबू।'

सुरेश की आँखें अचला के मुँह पर जमी रहीं, लेकिन अचला की नज़र नीची हो गई। सुरेश धीरे-धीरे बोला—'बस, यही मेरे चिर-जीवन का सहारा था अचला, इससे ज्यादा मैं और कुछ नहीं चाहता।' इतना कहकर क्षण भर स्थिर रहने के बाद बोला—'जब तुम पत्थर नहीं हो, तो अब मुझे इस अन्तिम भिक्षा से वञ्चित न करो अचला। तुम्हारे सुख का भार चाहे जिसके ऊपर रहे, लेकिन जब कि तुम्हारे हाथों मैंने सिर्फ़ दुख ही दुख पाया है, तब तुम्हारे दुख का बोझ आज से मेरे ही ऊपर रहे, यही वरदान मैं आज माँग रहा हूँ—मुझे तुम भिक्षा दो।' यह कहते-कहते अश्रु वेग से उसका गला रुँध गया। अचला की आँखों से भी उसकी विगत दिनों की इकट्ठी वेदना उसकी इच्छा के विरुद्ध आँसू बनकर झरने लगी।

इसी समय ठीक दरवाज़े के बाहर जूते का शब्द सुनाई पड़ा और दूसरे ही क्षण महिम घर में आते हुए बोला—'क्यों सुरेश चाय पी चुके ?

सुरेश सहसा जवाब न दे सका। उसने किसी तरह सिर नीचे किये धोती के पल्ले से आँखें पोंछ डालीं और अचला आँचल में मुँह छिपाकर द्रुतगति से महिम के बग़ल से निकल गई। महिम एक क़दम चौखट के अन्दर और दूसरा बाहर रक्खे ही हक्का-बक्का-सा खड़ा रहा।

१७

अपने को सम्हाल कर महिम अपने कमरे में आया और एक कुर्सी खींचकर बैठ गया।

मानव-हृदय जिस अवस्था में पड़कर बिल्कुल बेशर्म और बेधड़क होकर झूठी बातें बनाने लगता है सुरेश की भी वही अवस्था थी। उसने चट से आँखें पोंछ लीं और सलज्ज हँसी के साथ उदारता से यह स्वीकार किया कि—'सचमुच मैं बहुत कमज़ोर होता जा रहा हूँ।' लेकिन महिम ने इसके लिए कुछ भी उद्वेग प्रगट नहीं किया, यहाँ तक कि इसके बारे में कोई बात तक न पूछी।

उस वक्त सुरेश अपनी कैफियत आप देने लगा। बोला—'कोई चाहे कुछ कहे, महिम, यह मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि इनकी आँखों में आँसू देखकर न मालूम मेरी आँखों में भी कहाँ से आँसू आ जाते हैं—किसी भी तरह रुकते नहीं। अगर मैं न पहुँच जाता तो केदार बाबू इस बार किसी भी तरह न बचते, लेकिन बूढ़ा इतना बदमिजाज़ है महिम कि अपनी एकमात्र कन्या को भी खबर न देने दी। विवाह के दिन से ही भला आदमी जो नाराज़ हुआ तो वह

नाराज़ी अब तक न मिटी। मैंने कहा—जो होना था सो तो हो ही चुका—'

महिम ने पूछा 'चाय मिली तुमको ?'

सुरेश ने गर्दन हिलाकर कहा—'हाँ, पी चुका हूँ। लेकिन बाप की ओर से ऐसा व्यवहार पाकर किसकी आँखें नहीं भर आयेंगी ? मर्द भी हमेशा ऐसा बर्दाश्त नहीं कर सकता फिर ये तो बेचारी औरत ठहरीं।'

महिम बोला—'ऐसा हो सकता है। रात को सोने में किसी तरह की तकलीफ़ तो तुम्हें नहीं हुई सुरेश, नींद तो अच्छी तरह आई ? नई जगह ठहरी—'

सुरेश ने तुरन्त कहा—'नहीं, नई जगह में मुझे नींद आने में कोई त्रुटि नहीं हुई। एक ही करवट में रात कट गई। अच्छा महिम, केदार बाबू ने अपनी बीमारी की ख़बर तुम लोगों को बिल्कुल नहीं दी यह कितने आश्चर्य की बात है, सोचो तो ?'

महिम ने बिल्कुल सहजभाव से कहा—'ज़रूर आश्चर्य की बात है !'—इतना कहकर ज़रा हँसा और बोला—'हाथ-मुँह धोकर थोड़ी देर के लिये घूमने नहीं निकलोगे क्या ? जाओ तो ज़रा चटपट निबट आओ भाई, मुझे फिर एक घन्टे में ही बाहर जाना पड़ेगा। अभी मेरा सबेरे का काम ख़त्म नहीं हुआ है।

सुरेश अपनी किताब में ध्यान लगाते हुये बोला—'कहानी अच्छी मालूम पड़ रही है ज़रा इसे ख़त्म कर लूँ।'

'यही करो। मैं दो घण्टे में ही लौट आता हूँ।' यह कहता हुआ महिम उठकर चला गया। उसके पीठ फिराते ही सुरेश ने आँखें उठाकर देखा। उसके मन में ऐसा लगा मानो किसी छिपे हुए हाथ ने उसके मुख पर लज्जा की काली स्याही पोत दी है।

जिस दरवाज़े से महिम बाहर हुआ था उसी खुले दरवाज़े की ओर एकटक देखता हुआ सुरेश काठ की तरह कठोर होकर बैठा रहा

लेकिन बिना पूछे ही उसने जो अपनी सफ़ाई दी थी, वह निष्फल रही, इस कारण उसका क्रुद्ध अभिमान उसके समस्त अंगों से फूट कर उसे डंक मारने लगा।

दरवाजे की ओट में खड़ी होकर अचला दोनों मित्रों के कथोपकथन को सुन रही थी। महिम कपड़े बदलने के लिये अपने कमरे में ज्यों ही गया कि उधर से किवाड़ हटा कर वह भी आ पहुँची।

महिम के सिर उठाते ही अचला ने स्वाभाविक मुक्त-कण्ठ से पूछा—'मेरे पिता ने क्या तुम्हारा कोई ऐसा बड़ा अपराध किया है ?'

अकस्मात् इस प्रकार के प्रश्न का तात्पर्य न समझ सकने के कारण महिम जिज्ञासा के भाव से चुपचाप देखता रहा।

अचला ने फिर पूछा—'मालूम होता है मेरी बात तुम्हारी समझ में नहीं आई !'

महिम ने कहा—'नहीं, बात प्रिय न होने पर भी स्पष्ट ज़रूर है लेकिन उसका अर्थ समझना अत्यन्त कठिन है। कम से कम मेरे लिये।'

अचला ने भीतरी क्रोध को पूरे ज़ोर के साथ दबा कर जवाब दिया—इन दोनों में से कोई भी तुम्हारे लिये कठिन नहीं, लेकिन कठिन है स्वीकार करना। सुरेश बाबू को जो बात तुमने बड़ी खुशी से बता दी, वही बात मुझे बताने का तुम्हें साहस नहीं होता। लेकिन आज मैं तुमसे साफ़-साफ़ पूछना चाहती हूँ, मेरे पिता तुम्हारी नज़र में इतने तुच्छ हो गये हैं कि उनकी कड़ी बीमारी की खबर तक सुनाना तुम आवश्यक नहीं समझते !'

महिम ने गर्दन हिलाकर कहा—'खूब समझता हूँ लेकिन जहाँ उसकी ज़रूरत नहीं है वहाँ मैं क्या करूँ !'

अचला बोली—'कहाँ ज़रूरत नहीं है, ज़रा सुनूँ तो !'

महिम क्षण भर पत्नी के मुख की ओर चुपचाप देखता रहा बाद में कड़ककर बोल उठा—'जैसे कि सुरेश को यह बात कहने की ज़रूरत नहीं थी। और जैसे तुम्हें भी इसी बात को लेकर अब तक

वितण्डा खड़ा करके मेरे मुँह से कड़ी बात निकलवाने की ज़रूरत न थी। रहने दो इन बातों को। जिसके नीचे कीचड़ जम गई है उस जल को घँघोलना मैं बुद्धिमत्ता का काम नहीं समझता।'—यह कहकर महिम बाहर जाना ही चाहता था कि अचला जल्दी से सामने आकर उसका रास्ता रोककर खड़ी हो गई। क्षण भर के लिए वह दाँत से मज़बूती के साथ अपनी जीभ को इस तरह दबाये रही जैसे आकस्मिक दुसह आघात को पाकर मर्मान्तिक चीत्कार को प्राणपण से रोकना चाहती हो। इसके बाद बोली—"बाहर क्या तुम्हें कोई खास ज़रूरी काम है? दो मिनट के लिए नहीं ठहर सकते?'

महिम ने कहा—'ठहर सकता हूँ।'

अचला बोली—'तो फिर यह बात स्पष्ट हो ही जानी चाहिए। जल के हटाने पर ही कीचड़ देखी जा सकती है, यही तुम्हारा कहना है न?'

महिम ने गर्दन हिलाकर कहा—'हाँ।'

अचला बोली—'निरर्थक जल घँघोलने के पक्ष में मैं भी नहीं हूँ, लेकिन इसी डर से कीचड़ को न निकाल फेंकना क्या ठीक है? एक रोज जब घँघोलना ही पड़ेगा तो अभी क्यों न घंघोला जाय, बशर्ते कि हमेशा के लिये कीचड़-सने हाथों से छुटकारा मिल जाय! बोलो क्या कहते हो?'

महिम ने कठोर भाव से कहा—'मुझे कोई आपत्ति नहीं लेकिन इससे ज़रूरी मेरे अनेक काम पड़े हैं, अभी उसके लिये मेरे पास वक्त नहीं।'

अचला ने भी ठीक उसी कठोर कण्ठ से जवाब दिया—'इन अनेक ज़रूरी कामों से निबट कर तो तुम्हें फुर्सत मिलेगी न? अच्छा, तब तक मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करती रहूँगी।' इतना कहकर रास्ते से अलग हो गई।

महिम घर से बाहर निकल गया। जब तक वह उसकी आँखों से ओझल नहीं हो गया, तब तक वह स्थिरभाव से खड़ी रही। इसके बाद दरवाज़ा बन्द कर लिया।

घण्टे भर के बाद जब वह स्नान का प्रसंग लेकर सुरेश के कमरे में आ खड़ी हुई तो सुरेश ने एक ही दृष्टि में उसके चेहरे पर थकावट और दुख की छाया को देख लिया। महिम के साथ इस बीच में ज़रूर कुछ न कुछ हुआ है, यह अनुमान करके सुरेश मनही-मन अत्यन्त लज्जित हो उठा, लेकिन कुछ पूछने का साहस न कर सका।

अचला ने कुछ देर चुप खड़े रहकर पूछा—'यह क्या हो रहा है?'

सुरेश अपने बेग में कल के पहने हुए कपड़े रख रहा था। उसने कहा—'एक बजे के भीतर ही तो ट्रेन जाती है, थोड़ा पहले ही ठीक ठाक किये लेता हूँ।'

अचला ने कुछ आश्चर्य के साथ पूछा—'आप क्या आज ही जा रहे हैं?'

सुरेश ने सिर नीचे किये ही उत्तर दिया—'हाँ।'

अचला ने कहा—'क्यों, बताइये तो?'

सुरेश उसी तरह सिर झुकाये बोला—'और ठहरकर होगा क्या! तुम लोगों को एकबार देखने आया था वह देख लिया।'

अचला क्षणभर स्थिर रहकर बोली—'तो फिर उठिये। यह काम आप लोगों का नहीं स्त्रियों का है; मैं सब तय्यारी किये देती हूँ।' यह कहकर वह ज्योंही आगे बढ़ी कि सुरेश जल्दी से बोल उठा—'ना, ना, तुम्हें कुछ भी करना न पड़ेगा—यह तो कुछ नहीं है—मामूली-सा—'

लेकिन उसकी बात पूरी भी न हो पाई थी कि अचला ने उसके आगे से बेग को खींचकर सारा सामान उलटकर बाहर कर दिया और तह किये हुए कपड़ों को फिर से तह करके धीरे-धीरे बेग में सजाकर रखने लगी। सुरेश बगल में खड़ा होकर अत्यन्त कुण्ठित स्वर में बार-बार कहने लगा—'इसकी कोई ज़रूरत नहीं थी—अगर ऐसा होता—मैं खुद—इत्यादि इत्यादि।'

अचला बहुत देर तक किसी बात का जवाब न दे सकी फिर धीरे-धीरे काम करते-करते बोली—'आपके अगर बहन या पत्नी होतीं तो उन्हें ही यह काम करना पड़ता, वे आपको न करने देतीं। लेकिन आपको डर तो इसी बात का है कि कहीं मित्र महाशय न देख लें, यही बात है न? लेकिन इससे क्या होता है, यह तो स्त्रियों का ही काम है।'

सुरेश चुप खड़ा रहा। अभी महिम के साथ जो उसकी बात हुई है अचला उसके बारे में निश्चय ही नहीं जानती; उस बात को छेड़कर उसे दुखी करने का वह साहस भी न कर सका; इसके अलावा यह डर भी होने लगा कि कहीं पीछे से आकर वह फिर अपनी आँखों से यह सब देख न ले।'

बेग में सारी चीज़ें सजाकर अचला धीरे से बोली—'पिताजी की बीमारी की बात न उठाना ही अच्छा था; इससे सिर्फ़ उनका अपमान ही हुआ, इन्होंने तो कुछ परवाह न की।'

सुरेश चकित होकर बोला—'क्या महिम ने तुमसे बताया है?'

अचला ने इसका ठीक जवाब न देकर बगल के दरवाज़े की ओर इशारा करके कहा—'उस जगह खड़ी होकर मैंने खुद ही सारी बातें सुन ली हैं।'

सुरेश ने अप्रतिय होकर कहा—'इसके लिए मैं तुमसे माफ़ी चाहता हूँ अचला।'

अचला सिर उठा कर हँसती हुई बोली—'क्यों?'

सुरेश ने पश्चात्ताप के स्वर में कहा—'कारण तो तुमने खुद ही बता दिया। मैंने अपने ही दोष से आज तुम दोनों का अपमान किया है इसीलिये तुमसे खास तौर पर क्षमा याचना कर रहा हूँ अचला।'

अचला ने सिर उठाकर देखा। सहसा उसका सारा चेहरा मानो भीतर के आवेग से उद्भासित हो उठा। वह बोली—'आपने जो कुछ भी किया है सुरेश बाबू, वह किया तो मेरे लिये ही है? मुझे लज्जा से बचाने के लिये ही तो आज आपको खुद लज्जित होना पड़ा।

फिर भी आपको मुझसे माफ़ी माँगनी पड़ेगी, इतनी निष्ठुर मैं नहीं हूँ। आप किस लिये लज्जित हो रहे हैं ? आपने जो कुछ किया अच्छा किया।'

सुरेश के विस्मित एवं हक्का-बक्का चेहरा देखकर अचला समझ गई कि वह उसकी बात पूरी तरह नहीं समझ सका है। इसीलिये क्षणभर चुप रहकर बोली—'आज ही आप न चले जायँ सुरेश बाबू ! यहाँ अगर आपको कुछ लज्जित होना पड़ा है तो मेरी ही लज्जा ढकने के लिये; अपने लिये तो आपको कोई ज़रूरत थी नहीं। और इस घर पर सिर्फ़ आपके मित्र का ही अधिकार नहीं है, मेरा भी कुछ अधिकार है। उसी बल पर आज मैं आपको निमन्त्रित करती हूँ, मेरे अतिथि बनकर कुछ दिन और ठहरिये।'

उसके साहस को देखकर सुरेश दंग रह गया। लेकिन दुविधा में कुछ कहना ही चाहता था कि उसी क्षण अपना काम पूरा करके महिम को घर में आते देखा।

अचला तब तक बेग को सामने रखकर इस तरफ़ पीठ घुमाये मेज़ पर बैठी थी। कहीं महिम के आगमन को न जानकर कुछ मुँह से निकाल न बैठे इस भय से वह एकाएक संकुचित होकर बोल उठा—'कौन महिम, तुम्हारा काम पूरा हो गया !'

'हाँ, हो गया' कहकर महिम कमरे में पैर रखते ही अचला को उस अवस्था में देखकर बोला—'यह क्या हो रहा है ?'

अचला ने गर्दन फिराकर देखा, लेकिन इस प्रश्न का जवाब न देकर सुरेश को लक्ष्य करके पूर्व-प्रसंग का सिलसिला जारी कर वह बोली—'आप मेरे मित्र हैं, सिर्फ़ मित्र ही नहीं, आपने हमारे लिये जो कुछ किया है, उससे आप मेरे परम आत्मीय हैं। इस तरह चले जाने पर मेरी लज्जा और खेद की सीमा न रहेगी। आज मैं आपको किसी भी तरह नहीं जाने दूँगी।'

सुरेश ने सूखी हसी हँसकर कहा—'सुनो महिम ! तुम लोगों को देखने आया था, देख लिया, लेकिन इस जंगल में व्यर्थ मुझे अधिक दिनों तक रोक रखने में तुम्हीं लोगों का क्या फ़ायदा होगा या मुझको कष्ट सहने से क्या लाभ, बताओ ?'

महिम ने धीर भाव से जवाब दिया—'मालूम होता है रुष्ट होकर जा रहे थे, लेकिन इस बात को वह पसन्द नहीं करतीं।'

अचला तीखे स्वर में बोली—'क्या तुम नहीं पसन्द करते हो ?'

महिम ने जवाब दिया—'मेरी बात तो हो नहीं रही।'

सुरेश मन-ही-मन अत्यन्त उत्कण्ठित हो उठा। उसने इस अप्रिय अलोचना को किसी तरह बन्द करने के निमित्त कृत्रिम प्रसन्नता प्रगट करते हुए मुस्कुराकर कहा—'यह क्या झूठा अपवाद लगा रहे हो ! नाराज़ क्यों होऊँगा, भले आदमी ! अच्छा, यही खुशी है तो और दो-एक दिन रह जाऊँगा। भाभी जी कपड़ों को अब तहियाने की ज़रूरत नहीं, उन्हें बाहर ही रखो। महिम, चलो भाई, तुम्हारे पोखर में आज स्नान कर लूँ, इसके बाद घर जाने पर न होगा तो एक शीशी कुनैन ही निगल जाऊँगा।

'चलो'—कहकर महिम कपड़े उतारने के लिये कमरे से बाहर हो गया।

१८

जो लोग नये जूते के तीखे दंशन मन-ही-मन सहन कर बाहर से प्रसन्नता का ढोंग दिखाते हैं ठीक उन्हीं लोगों की तरह सुरेश ने सारा दिन हंसी-खुशी में बिता दिया; लेकिन एक दूसरी भी, जिसने गुप्तरूप से इस दंशन का एक अंश ग्रहण किया था ऐसा न कर सकी।

पति की अटल गम्भीरता के आगे अपनी इस कुत्सित प्रवञ्चना, इस बेहयापन से वह क्षोभ और अपमान के मारे सिर पटककर मर

जाने की इच्छा करने लगी। वह उसे आज भी हृदय के द्वारा न पहचानने पर भी बुद्धि के ज़रिये अवश्य पहचान पाई थी। साउसेफ़ मालूम पड़ने लगा कि इस तीक्ष्ण बुद्धिवाले एवं मितभाषी पुरुष के निकट यह अभिनय एकबारगी ही व्यर्थ हो जाता है, और लज्जा की कालिमा प्रतिक्षण मानो उसके मुँह पर गाढ़ी होती जा रही है। आज सुबह के बाद महिम घर से बाहर नहीं निकला। इसलिए दिन में भात खाने से लेकर रात में पूरी खाने तक का लगभग सारा समय उसने इसी तरह बिता दिया।

अधिक रात तक बिस्तर पर छट-पट करती हुई अचला धीरे से बोली—'सारी रात तुम्हारे रोशनी जलाये पढ़ते रहने से एक दूसरे प्राणी को नींद नहीं आ सकती। क्या मैं तुमसे इतनी दया की भी आशा नहीं कर सकती?'

उसके कंठस्वर से महिम चौंक उठा और फ़ौरन बत्ती कम करके बोला—'ग़लती हो गई। मुझे माफ़ करना!'—कहकर किताब बन्द करके रोशनी गुल कर दी और खुद बिस्तर पर लेट गया। इस प्रार्थित अनुग्रह-लाभ के लिए अचला ने कोई कृतज्ञता प्रकाशित नहीं की, किन्तु इससे उसकी निद्रा में रञ्चमात्र भी मदद न मिली। बल्कि ज्यों-ज्यों समय बीतने लगा, इस नीरव अन्धकार में व्यथा मानो भारी होकर प्रतिक्षण उसके लिए दुःसह हो उठी। अब और अधिक बर्दाश्त न कर सकने पर उसने धीरे-धीरे पूछा—'अच्छा, जानकर हो, या अनजान में हो, दुनिया में ग़लती करने पर उसका फल भोगना ही पड़ता है यह बात क्या सच है?'

महिम ने अत्यन्त सहज भाव से जवाब दिया—'अनुभवी व्यक्ति तो ऐसा ही कहते हैं।'

अचला कुछ क्षण मौन रहकर फिर बोली—'तो फिर जो ग़लती हम दोनों ने की है, जिसका कुफल अभी शुरू ही हुआ है, उसका अन्तिम फल क्या होगा तुम अन्दाज़ा लगा सकते हो?'

महिम ने कहा—'नहीं।'

अचला ने कहा—'मैं भी नहीं लगा सकती। लेकिन काफ़ी सोच-विचार के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँची हूँ कि और सारी बातों को छोड़ देने पर भी पुरुष को सिर्फ़ पुरुष होने के कारण उस कुफल का अधिक भार उठाना चाहिये।'

महिम बोला—'ज़रा और सोचने पर मालूम पड़ेगा कि इससे स्त्री के बोझ में तिल भर की भी कमी न होगी। लेकिन वह पुरुष है कौन? मैं या सुरेश?'

अचला इस बात को सुनकर सिहर उठी, अन्धेरा रहने पर भी महिम को यह अनुभव हुआ। क्षणभर मौन रहने के बाद अचला धीरे-धीरे बोली—'तुम जो एक दिन मेरे मुँह पर ही मेरा अपमान करना शुरू कर दोगे, यह मैंने सोचा था। और यह भी समझती हूँ कि इस तरह की बात एक बार शुरू हो जाने पर कहाँ जाकर ख़त्म होगी, इसे कोई नहीं बता सकता। लेकिन मैं झगड़ा नहीं कर पाऊँगी। विवाह हुआ है, इसलिये झगड़ा करके तुम्हारी गृहस्थी को चला भी नहीं सकूँगी। कल या परसों मैं अपने पिता के घर वापस चली जाऊँगी।'

महिम ने कहा—'तुम्हारे पिताजी को आश्चर्य तो होगा?'

अचला बोली—'नहीं। वे इन बातों को जानकर ही बार-बार मुझे सावधान करने की कोशिश करते थे, कि इसका फल कभी अच्छा न होगा। कलकत्ते में यह चल सकता है, लेकिन गाँव में तो अपने-पराये सबको छोड़कर सिर्फ़ स्त्री को लेकर अधिक दिन चल नहीं सकता। इसलिए वे जैसा भी समझें उन्हें आश्चर्य न होगा!'

महिम ने कहा—'तो फिर उनके मना करने पर ध्यान क्यों नहीं दिया!'

अचला ने बड़े प्रयत्न से एक उमड़ती हुई साँस को रोककर कहा—'मेरी धारणा थी कि तुम बिना सोचे-समझे कोई काम नहीं करते।'

'वह धारणा अब नष्ट हो गई है क्या?'

'हाँ।'

'इसीलिए साझे के कारोबार में फ़ायदा न देखकर दूकान बढ़ाकर घर लौट जाना चाहती हो?'

'हाँ।'

महिम कुछ देर चुप रहकर फिर बोला—'अगर ऐसा है तो चली जाना। लेकिन अगर तुम इसे दूकानदारी समझकर ही रह रही हो तो मेरे साथ तुम्हारे मत का मेल नहीं होगा, किन्तु इस बात को भी मत भूलो कि दूकनदारी जैसी वस्तु को भी समझने में देर लगती है। अगर तुमने अपनी ग़लती कभी महसूस की तो मुझे ख़बर दे देना, मैं उसी वक्त तुम्हें लिवा लाऊँगा।'

अचला की आँखों से आँसू का एक बूँद ढुलक पड़ा; हाथ से उसे पोंछकर कुछ देर तक स्थिर भाव से ठहरी रही बाद में कंठस्वर को संयत करके बोली—'मनुष्य से बार बार ग़लती नहीं होती। मेरे विचार में तुम्हें यह कष्ट स्वीकार करने की ज़रूरत होगी।'

महिम बोला—'अभी उसे सोचा नहीं जा सकता क्योंकि वह भविष्य की बात है। इसलिए भविष्य की बात भविष्य के लिए छोड़कर आज मुझे माफ़ करो, मैं अब अधिक बकबक नहीं कर सकता।'

अचला चोट खाकर बोली—'क्या तुम मुझसे मज़ाक कर रहे हो?' अगर ऐसा है तो यह तुम्हारी भूल है। मैं निश्चय ही कल या परसों चली जाऊँगी।'

महिम बोला—'मैं सचमुच नहीं चाहता कि तुम चली जाओ।'

अचला अचानक अत्यन्त उत्तेजित होकर बोली—'क्या तुम मेरी इच्छा के खिलाफ़ मुझे जबर्दस्ती रोक रखोगे ? ऐसा तुम हरगिज नहीं सकते।'

महिम ने शान्त एवं सहज भाव से जवाब दिया—'अच्छा, तो वह भी तो आज ही रात नहीं होने का। कल-परसों जब होगा तब देखा जायगा। अभी काफ़ी समय है, आज इतना ही बस करो।'—यह कहकर वह सिरहाने के तकिया को उलटकर जबर्दस्ती सारे प्रसंग को बन्द करके निश्चिन्त होकर सो रहा और शायद थोड़ी देर बाद ही उसे नींद भी आ गई।

दूसरे दिन सबेरे चाय पीते वक्त सुरेश ने पूछा—'आज भी शायद महिम अपनी खेत-खलिहान की तरफ़ सबेरे ही चला गया है ?'

अचला ने गर्दन हिलाकर कहा—'धरती चाहे उलट-पुलट हो जाय लेकिन उनके कार्यक्रम में व्याघात नहीं हो सकता।'

सुरेश चाय की प्याली मुँह से नीचे रखते हुए बोला—'एक हिसाब से वह हम लोगों की अपेक्षा बहुत अच्छा है। उसके काम की एक गति है जो मशीन की चक्की की तरह जब तक शक्ति रहेगी चलती ही जायगी।'

अचला बोली—'मशीन की तरह बन जाना ही क्या आप अच्छा समझते हैं !'

सुरेश ने सिर हिलाकर कहा—'हाँ, क्योंकि ऐसी क्षमता तो मेरे बूते की बात नहीं। कमज़ोरी में कितने दोष हैं यह मैं जानता हूँ इसीलिये जो स्थिर-चित्त है मैं उसकी तारीफ़ किये बग़ैर नहीं रह सकता लेकिन आज मुझे छुट्टी दो, मैं घर जाऊँगा।'

अचला उसी वक्त राज़ी होकर बोली—'जाइये, मैं भी कल जा रही हूँ।'

सुरेश ने आश्चर्यान्वित होकर कहा—'तुम कहाँ जाओगी कल !'

'कलकत्ता।'

'अचानक कलकत्ते क्यों ?' कल तो कोई ऐसी बात सुनी नहीं !

'पिताजी बीमार हैं इसीलिये उन्हें एकबार देखने जाऊँगी ।'

सुरेश के चेहरे पर उद्वेग की छाया आ पड़ी । वह बोला—'अस्व. पिता को अचानक देखने की इच्छा होना संसार में आश्चर्यजनक घटना नहीं लेकिन मुझे भय इस बात का हो रहा है कि बाद में मेरे ही कारण आपस में झगड़कर—'

अचला ने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया । जदूदू सामने से ही जा रहा था, सुरेश ने उसे पुकारकर पूछा—'तेरे बाबू खेत-खलिहान से वापस आ गये रे ?'

जदूदू बोला—'वह तो आज सबेरे से घर से बाहर निकले ही नहीं । अपने पढ़ने के कमरे में सो रहे हैं ।'

अचला ने तुरन्त जाकर दरवाज़े के बाहर से झाँककर देखा—'महिम कुर्सी पर टेक लगाये दोनों टाँगे टेबिल पर फैलाकर निद्रा में लीन है । रात की अतृप्त निद्रा की कमी को इस तरह से पूरा करना संसार में कोई अद्भुत बात नहीं लेकिन अचला के विस्मय की सीमा न रही, जब कि उसने खुद अपनी आँखो से देखा कि उसका पति दैनिक कृत्य को स्थगित करके इस कुसमय में सो रहा है । वह कदम बढ़ाकर कमरे में घुसी और चुपचाप पति के मुँह की ओर देखती रही । सामने की खुली हुई खिड़की से प्रभात की क्षीण रश्मियाँ उस निद्रा-मग्न मुख पर पड़ रही थीं । आज अकस्मात् इतने दिन बाद उसकी आँखों को एक ऐसी नई चीज़ दिखाई दी जो इससे पहले किसी दिन दिखाई नहीं दी थी । आज उसने देखा—शान्त चेहरे पर मानो अशान्ति का एक सूक्ष्म जाल पड़ा हुआ है; माथे पर चिन्ता की कई रेखायें खिंच गई हैं जहाँ एक साल पहले किसी भी तरह का दाग़ न था । आज उसका सारा का सारा चेहरा किसी गुप्त व्यथा से श्रान्त और पीड़ित प्रतीत हो रहा है । वह चुपचाप आई थी और चुपचाप ही चली जाना भी चाहती

थी लेकिन पीकदान से ठोकर के शब्द से महिम की आँखें खुल गईं। अचला घबड़ाकर बोली—'इस वक्त सो रहे हो? क्या तबीयत ठीक नहीं है?'

महिम आँखें मलते हुये बोला—'क्या मालूम न होना ही आश्चर्य है?'

अचला दुबारा बग़ैर कुछ पूछे ही कमरे से बाहर हो गई।

भोजन के बाद ही सुरेश चलने की तैयारी कर रहा था, और महिम पास की एक कुर्सी पर बैठा हुआ उससे बातें कर रहा था। अचला दरवाज़े पर आकर बिना किसी भूमिका के बोल उठी—'कल मैं भी जा रही हूँ। अगर हो सके तो आप एक दफ़ा पिताजी से मिलियेगा।'

सुरेश ने विस्मय प्रगट करते हुए कहा 'ऐसा क्यों?' इतना कह कर महिम की ओर देखकर पूछा—'भाभीजी को कल ही कलकत्ते भेज रहे हो क्या महिम?'

पत्नी के इस अपरिचित विरुद्धाचरण से महिम का हृदय मानो जल उठा लेकिन मुँह पर प्रसन्नता का भाव रखकर मधुर मुस्कान के साथ बोला—'और तो कोई बाधा नहीं थी लेकिन हमारे इस देहाती गाँव के गृहस्थ-घरों में नाटक अभिनय करने की रीति नहीं है। कल ही क्यों आज ही तुम्हारे साथ भेज सकता था।'

सुरेश का मुँह लज्जा से लाल हो उठा। अचला पल भर में ही इसे लक्ष्य करके जोर से हँसकर बोली—'सुरेश बाबू, हम लोग शहरी हैं अतः लज्जित होने का कोई ज़रूरत नहीं। बीमार माँ-बाप को देखने जाना अगर देहाती गाँवों की रीति नहीं है, तो मैं कहूँगी कि हमारे शहर का नाटक ही बहुत अच्छा है! अगर न हो तो आप आज के दिन ठहर क्यों नहीं जाते, कल साथ ही साथ चलूँगी।'

उसकी इतनी अधिक तत्परता को देखकर सुरेश के चेहरे का रंग ही उड़ गया। वह सिर नीचा करके बोला—'नहीं, नहीं, अब मैं और नहीं ठहर सकता भाभी! तुम्हारी इच्छा हो कल आओ लेकिन मैं तो आज ही

जा रहा हूँ।'—यह कहते-कहते वह अत्यन्त उत्तेजना के साथ अचानक बेग हाथ में लेकर उठ खड़ा हुआ।

उसकी उत्तेजना के आवेग से अचला भी एकबारगी मानों जड़ से हिल गई। वह अकस्मात् विकल होकर बोल उठी—'अभी ट्रेन के आने में बहुत देर है सुरेश बाबू, अभी मत जाइये, जरा ठहरिये। मेरी दो बातें कृपाकर सुनते जाइये।' उसके आर्त कण्ठ-स्वर के व्याकुल अनुरोध से दोनों श्रोता ही एकबारगी चौंक उठे।

अचला बगैर किसी तरफ ख्याल किये बोलने लगी—'मैं तुम्हारे किसी काम न आई सुरेश बाबू लेकिन तुम्हें छोड़कर हम लोगों की विपत्ति का मित्र दूसरा कोई नहीं। तुम जाकर पिताजी से बोलो—इन लोगों ने मुझे बन्द करके रखा है. मुझे कहीं जाने नहीं देते, मैं यहाँ मर जाऊँगी। सुरेश बाबू, मुझे तुम लेते चलो, जिसे मैं प्यार नहीं करती उसका घर सम्हालने के लिये मुझे छोड़ मत जाओ।'

महिम विह्वल की तरह चुपचाप देखता रह गया। सुरेश मुड़कर खड़ा हो गया और दोनों आँखें तरेरकर ऊँची आवाज़ में बोल उठा—'तुम जानते नहीं महिम ये ब्राह्म-महिला हैं। स्त्री होने पर भी उन पर पाशविक बल-प्रयोग करने का तुम्हारा कोई अधिकार नहीं।'

महिम क्षणभर के लिये अभिभूत-सा हो गया था। उसने अपने को सम्हालकर शान्त स्वर में पत्नी से कहा—'तुम क्या करने जा रही हो, एकबार सोचकर देख तो लो अचला।' फिर सुरेश से कहा— पशु-बल या मनुष्य-बल, किसी भी बल का प्रयोग मैं किसी दिन किसी पर भी नहीं करता! ठीक तो है सुरेश, अगर तुम ठहर सको तो सिर्फ़ आज के दिन रहकर उसे अपने साथ ही लेते न जाओ! मैं खुद जाकर गाड़ी पर चढ़ा आऊँगा, इससे गाँव में भी विशेष किसी की आँख में न खटकेगा।' थोड़ी देर ठहरकर बोला—'एक काम है। मैं इस समय चलता हूँ। सुरेश, जब जाना ही नहीं है, तो कपड़े उतार डालो। मैं घण्टे भर में ही लौट आता हूँ।' यह कहकर धीरे-धीरे कमरे से बाहर चला गया।

अचला प्रतिमा की तरह चौकठ के सहारे जैसे खड़ी थी वैसी ही खड़ी रही। सुरेश मिनटभर सिर झुकाये खड़ा रहा, फिर अट्टहास करके बोला—'वाह, भाई वाह! नाटक के एक अंक का अभिनय हो गया! तुम्हारा भी अभिनय बुरा नहीं हुआ और मैंने तो कमाल ही कर दिखाया! जिसके घर में हैं उसी को पत्नी के विषय में उसी को आँखें दिखा दीं! इससे ज्यादा और क्या चाहिये?' और मेरा मित्र भी प्रसन्न-मुख होकर मानों शाबाशी देकर बाहर चला गया! मैं दावे के साथ कह सकता हूँ अचला, वह केवल जोर से ठठा-ठठाकर हँसने के अभिप्राय से काम का बहाना करके बाहर चला गया है! अच्छा जाने दो, भाभी जरा एकबार दर्पण लाओ तो, देखूँ मेरा चेहरा कैसा दिख रहा है!'—यह कहकर उसकी दृष्टि अचला के मुख की ओर गई, देखा—अचला का चेहरा एक-बारगी फ़ीका पड़ गया है। उसने कोई जवाब नहीं दिया, केवल लंबी साँस लेकर धीरे से खिसक गई।

१६

जिस शय्या को आज छूने तक में अचला को घृणा होनी चाहिये थी उसी को तैयार करने के लिये जब नियमपूर्वक वह तीसरे पहर कमरे में घुसी, उस वक्त उसके दिल पर क्या बीत रही थी, यह बात मानव-मनोविज्ञान से थोड़ी सी भी जानकारी रखनेवाला व्यक्ति बड़ी आसानी से समझ सकता है।

मशीन की तरह अभ्यस्त कार्य को समाप्त करने के बाद जब वह लौटने लगी, उसी वक्त बगल की छोटी टेबिल पर अकस्मात् उसकी नजर जा पड़ी और ब्लाटिंग-पैड पर पड़ी एक खुली छोटी-सी चिट्ठी उसने पलक मारते ही पढ़ ली। चिट्ठी में सिर्फ़ एक पंक्ति लिखी हुई थी। दिन, तारीख का कोई पता न था। मृणाल ने लिखा था—'मेरे

भैयाजी, क्या कर रहे हो ? परसों से ही तुम्हारी प्रतीक्षा में तुम्हारी मृणाल की दोनों आँखें अन्धी होती जा रही हैं।'

बहुत देर तक अचला की आँखों की पलकें तनी रहीं। ठीक पत्थर की मूर्त्ति की तरह पलकहीन दृष्टि को उसी एक पंक्ति पर गड़ाकर वह स्थिर भाव से खड़ी रही। यह चिट्ठी किस दिन की है, कब कौन लाया है, वह कुछ जानती नहीं। मृणाल का घर किधर है, किस तरफ से उसके घर में घुसा जाता है, किस रास्ते पर है, वह क्यों कर इतनी विकल, उत्सुक दृष्टि से प्रतीक्षा कर रही है, कुछ समझ में नहीं आता। सामने पड़ी हुई चिट्ठी के काले-काले दाग सिर्फ़ इतनी खबर दे रहे हैं कि कोई एक व्यक्ति परसों से किसी दूसरे व्यक्ति की प्रतीक्षा में आँखें नष्ट कर रही है, फिर भी मुलाकात नहीं होती।

अँधेरे कमरे में उस ओर एकटक ताकता रहने से उसकी अपनी आँखें वेदना से पीड़ित हो उठीं और काले-काले अक्षर पहले तो धुँधले से और बाद में छोटे-छोटे कीड़ों की तरह सारे कागज पर रेंगने लगे। फिर भी वह इस तरह एक भाव से और भी न जाने कब तक खड़ी रहती, लेकिन अनजाने ही अब तक उसके अन्दर क्रमशः जो साँस इकट्ठी हो रही थी, वही जब घिरी हुई नदी के बाँध तोड़ने की तरह अचानक जोर से गरजकर बाहर निकल गई, उस वक्त उसी शब्द से चौंककर उसकी चेतना लौट आई। सिर उठाकर दरवाज़े के बाहर उसने देखा—आँगन में सन्ध्या का अँधेरा छा गया है और जद्दू नौकर हरीकेन लालटेन जलाकर बाहर कमरे में रख कर चला जा रहा है। अचला ने उसे पुकार कर पूछा—'बाबू वापस आ गये जद्दू !'

जद्दू ने कहा—'नहीं माईजी, वे तो अब तक नहीं लौटे।'

अब जाकर अचला को याद पड़ा—दोपहर के वक्त उस लज्जाजनक अभिनय का एक अंक समाप्त होने के बाद ही जो वे बाहर निकले तब से अब तक लौटकर नहीं आये। पति की दैनिक गतिविधि के सम्बन्ध में अब उसे रंचमात्र भी सन्देह न रहा। सुरेश के आते

ही घर में योंही एक उत्कट एवं अविच्छिन्न कलह की धारा जो बह चली थी उसी में मग्न होकर अचला और सब कुछ भूल गई थी। वह पति को प्यार नहीं करती, फिर भी वह गलती से शादी कर बैठी उसी भूल के लिये जिन्दगी भर गुलामी के खिलाफ उसका चित्त विद्रोह की घोषणा करके रात-दिन अशान्त रहने लगा। मृणाल की बात वह एक तरह से भूल गई, लेकिन आज सन्ध्या के अंधेरे में जब मृणाल की वही एकमात्र पंक्ति समस्त पुरातन दाह के साथ उल्टी धारा से मुड़कर उपस्थित हो गई, तब क्षण भर में ही प्रमाणित हो गया कि उसके भ्रान्त पति की अन्य नारी में आसक्ति का सन्देह हृदय को जलाने में संसार की किसी भी चिन्ता से कम नहीं।

उस लिखावट को एक बार और पढ़ने के ख्याल से उसे लेने के लिये उसने हाथ बढ़ाया, लेकिन अत्यन्त घृणा से उसका हाथ अपने आप हट गया। वह चिट्ठी उसी जगह उसी तरह खुली पड़ी रही और अचला कमरे से बाहर जाकर बरामदे के खम्भे के सहारे स्तब्ध होकर खड़ी हो गयी।

अचानक उसके मन में हुआ—सब मिथ्या है! यह घर-द्वार स्वामी गृहस्थी, खाना-पहनना, सोना-बैठना कुछ भी सत्य नहीं—किसी भी चीज के लिये मनुष्य को हाथ-पाँव हिलाने की रत्ती भर जरूरत नहीं। सिर्फ मन के भूल-भुलैये में पड़कर ही मनुष्य छट-पट करके मरता है। नहीं तो—गाँव और शहर ही क्या, फूस के घर और राजमहल ही क्या, पति-पत्नी, माँ-बाप, भाई-बन्धु ये सब सम्बन्ध ही कहाँ! और आपसी मनमुटाव, रोना-धोना, झगड़ा-टण्टा यह सब किस लिये, इसके पीछे लोग मरते क्यों हैं! दोपहर के समय इतने बड़े कांड के बाद भी जो पति, पत्नी को अकेले छोड़कर घन्टों निश्चिंत होकर बाहर पड़ा रह सकता है उसके दिल की बात जानने के लिये ही क्यों माथा-पच्ची की जाय! सब मिथ्या है! सब कपट है! मरीचिका की तरह सब असत्य है! लेकिन संसार उसके लिये इतना नीरस न हो उठता, अगर उसने

मृणाल की इस भाषा पर अपनी समस्त चित्त वृत्ति को केन्द्रित करने के बजाय एक बार खुद मृणाल को समझने की कोशिश की होती। अन्य स्त्रियों के साथ इस ग्रामीण एवं सदा प्रसन्न रहने वाली ललना के आचरण पर एक बार विचार कर देखती तो वह अपने मनको सिर्फ लिखावट की कालिमा से इस तरह काला न कर पाती।

जदूदू लौटकर आया और पूछा—'बाबू पूछ रहे हैं चाय का पानी गर्म हो गया?'

अचला मानो सोते से जगी हो, बोली—'कौन बाबू?'

जदूदू जोर के साथ बोला—'अपने बाबू। अभी अभी लौटे हैं। चाय का पानी तो बहुत पहले ही गर्म हो चुका है माईजी।'

'चलो, आती हूँ'—यह कहकर अचला रसोई घर की ओर आगे बढ़ गई। थोड़ी देर बाद चाय और जलपान की सामग्री नौकर के हाथ देकर बाहर आकर देखती है—महिम अन्धेरे बरामदे में चहल-कदमी कर रहा है और सुरेश कमरे में लालटेन की रोशनी में दत्तचित्त होकर अखबार पढ़ रहा है मानो उसे किसी के आने-जाने की खबर ही नहीं। यह जो अत्यन्त लज्जाजनक सङ्कोच बचपन के दोनों मित्रों के बीच आज सहज शिष्टाचार के पथ को भी रोके है उसका कारण ख्याल करते ही अचला के दोनों पैर आपही आप रुक गये।

अचला को देखकर महिम थमककर खड़ा हो गया और बोला—'सुरेश को चाय देने में इतनी देर क्यों हुई?'

अचला की जबान से कोई बात न निकली। वह क्षण भर सिर झुकाये खड़ी रही, तत्पश्चात् चुपचाप आस्ते-आस्ते भीतर आ पहुँची।

जदूदू चाय का सरंजाम टेबिल पर रखकर बाहर हो गया। सुरेश ने अखबार रख दिया और मुँह फेर कर कहा—'महिम कहाँ है, अब तक लौटकर आया नहीं क्या?'

कहने के साथ ही महिम प्रवेश करके एक कुर्सी पर बैठ गया, लेकिन वह जो अभी दसेक मिनट तक उसके कान के निकट ही बरामदे में घूम-फिर रहा था, यह बात मुँह से निकालने की उसने जरूरत न समझी। इसके बाद ही निस्तब्धता छा गई। अचला चुपचाप सिर झुकाये दो कटोरी चाय तैयार करके एक सुरेश के आगे और एक पति के आगे बढ़ाकर बगैर कुछ कहे उठकर जा ही रही थी कि महिम की आवाज से चौंककर खड़ी हो गई।

महिम ने कहा—'जरा ठहरो'—यह कहकर खुद ही किवाड़ की साँकल लगा आया। निमिषमात्र में सुरेश को उसकी छै नली पिस्तौल याद आ गई, और हाथ के प्याले के काँप उठने से थोड़ी सी चाय उछलकर जमीन में गिर पड़ी। उसका चेहरा फ़क हो गया, वह बोला—'दरवाजा क्यों बन्द कर आये?'

उसके कण्ठ-स्वर, चेहरे और पूछने के ढंग से अचला को भी वही पिस्तौल याद आ गई और भय से उसके रोंगटे खड़े हो गये। शायद उसने एक बार चीखने की भी कोशिश की लेकिन सफल न हो सकी। महिम क्षणभर में ही अचला की ओर नजर दौड़ाकर सब कुछ समझ गया। इसके बाद सुरेश के मुँह की ओर देखकर बोला—'कहीं नौकर न चला आये इसीलिये—पिस्तौल तो मेरी हमेशा बक्स में जैसे बन्द रहती है, अब भी उसी तरह है। अगर मैं जानता कि तुम इतना डर जाओगे तो मैं दरवाजा भी बन्द न करता।'

सुरेश ने चाय का प्याला नीचे रखकर चेहरे पर हँसी लाने की कोशिश करते हुए कहा—'वाह भाई, डरूँगा क्यों? तुम मुझपर गोली चलाओगे—वाह—प्राण का भय! मैं कहता हूँ यह तुमने कब देखा? वाह क्या खूब—'

उसकी बेलाग कैफियत के खत्म होने से पहले ही महिम ने कहा—'सचमुच मैंने तुम्हें डरते हुए कभी नहीं देखा। तुम्हें प्राण का मोह नहीं है यही मैं जानता था। सुरेश, मेरे अपने दुख से भी अधिक चोट

तुम्हारे इस अधःपतन ने आज मेरे हृदय को पहुँचाई है। जिस चीज के लिये तुम्हारे जैसा आदमी भी इतना नीच बन सकता है—ना, सुरेश, कल तुम जरूर घर चले जाओ। किसी भी बहाने अब देर करने से नहीं चलेगा।'

सुरेश ने फिर भी कुछ जवाब देना चाहा लेकिन इस बार उसके कंठ से आवाज न निकल सकी, अपनी गर्दन भी सीधी न कर सका, मानो वह अनजाने ही झुक गई थी।

'तुम अन्दर चली जाओ अचला'—इतना कहकर महिम साँकल खोल दूसरे ही क्षण अन्धेरे में बाहर निकल गया।

इस बार सुरेश सिर उठा हँसने की कोशिश करता हुआ बोला—'जरा बात तो सुनो। इस तरह की कितनी बन्दूक-पिस्तौलों को चला-चलाकर बूढ़ा हो चला, अब उसकी एक टूटी-फूटी रिवाल्वर के डर से मरा जा रहा हूँ! वाह भाई! क्या खूब'—यह कहकर सुरेश खूब जोर जोर से हँसने लगा। उसकी हँसी में साथ देने लायक अचला के सिवा और कोई उस कमरे में था नहीं। लेकिन वह जिस तरह गर्दन झुकाये इतनी देर खड़ी थी, उसी तरह कुछ देर और स्तब्ध भाव से खड़ी रहने के बाद धीरे-धीरे बगल के दरवाजे से होकर अन्दर चली गई।

क्षणभर के बाद महिम ने अपने कमरे में आकर देखा—किसी का पता नहीं। पासवाले कमरे में जाकर देखा—जमीन पर चटाई बिछाकर हाथ के सहारे सिर रखकर अचला सोई हुई है। पति को कमरे में घुसते देख वह उठ बैठी। पास में एक खाली तख्त पड़ा हुआ था, महिम उसी पर बैठकर बोला—'क्यों, कल पिता के घर जाना तुम्हारा निश्चित है?'

अचला नीची निगाह किये बैठी रही, उसने कोई जवाब नहीं दिया। महिम थोड़ी देर इन्तज़ार करके फिर बोला—'जिससे तुम्हारा प्रेम नहीं,

उसीके घर तुम्हें रहना पड़ेगा, इतना बड़ा अन्याय मैं तुम्हारा पति होकर भी तुम पर नहीं कर सकता।'

लेकिन अचला उसी तरह पत्थर की मूर्ति की तरह चुपचाप बैठी रही, यह देखकर महिम फिर बोलने लगा—'लेकिन तुमसे मेरी एक शिकायत है। मेरा स्वभाव तो जानती ही हो। सिर्फ़ शादी होने के बाद से ही नहीं, बल्कि बहुत पहले से ही तुम मुझे जानती हो। मुझे चाहे जितना सुख-दुख सहना पड़े, मैं अपने हक़ से अधिक एक पाई की भी कभी आशा नहीं करता—और पाने पर भी उसे नहीं लेता। प्रेम के ऊपर तो जोर चलता नहीं है अचला। अगर ऐसा नहीं हो सकता है तो दुख की बात है, शर्म की नहीं। तो फिर क्यों इतने दिनों से तकलीफ उठा रही हो? क्यों तुमने मुझसे पूछे बगैर सोच लिया कि मैं जबर्दस्ती तुम्हें यहाँ रोक रखूँगा? किसी दिन किसी भी मामले में मैं जबर्दस्ती नहीं करता। उनके उद्धार करने पर ही तुम्हारी जान बचेगी—और मुझसे बता देने पर क्या इसका कोई उपाय नहीं होता? तुम्हारी जान की कीमत क्या वे ही समझते हैं?'

अचला रुँधे हुए गले को जहाँ तक हो सका सहज और स्वाभाविक बनाकर धीरे से बोली—'तुम भी तो प्यार नहीं करते।'

महिम ने आश्चर्य से कहा—'यह बात किसने कही? मैंने तो कभी नहीं कही।'

अचला को उत्तेजित होते देर न लगी। वह बोली—'सिर्फ़ जबानी जमा-खर्च ही क्या सब कुछ है? सिर्फ़ मुँह से कहा हुआ ही सच्चा है और सब झूठा! गुस्से में आकर दुखी हृदय के कारण अगर मनुष्य के मुँह से कुछ निकल जाय, सिर्फ़ उसी को सच समझकर जोर डालना चाहते हो? तुम्हारी तरह नाप-तौल कर अगर कोई बात न कर सके तो क्या उसके सिर पर पाँव रखकर उसे डुबो ही देना चाहिये?'—यह कहते-कहते उसका गला भर गया।

महिम कुछ समझ न सकने के कारण बोला—'इसके मानी?'

अचला उमड़ती हुई रुलाई को दबाकर बोली—'यह मत समझना कि तुम्हारे जैसे होशियार आदमी भी झूठ को अधिक दिनों तक दबाये रख सकेंगे। तुमसे भी अनेक भूलें हो सकती हैं—देखो तो जाकर, अपनी ही टेबिल के ऊपर! सिर्फ़ हमारी ही—'

महिम ने करीब-करीब हतबुद्धि होकर पूछा—'मेरी टेबिल के ऊपर क्या है?'

अचला मुख में आँचल ठूँसकर चटाई के ऊपर औंधी होकर पड़ गई। उससे और कोई जवाब न पाकर महिम आस्ते-आस्ते अपनी टेबिल देखने गया। उसके पढ़ने के कमरे में टेबिल पर कितनी ही किताबें पड़ी थीं; दस मिनट तक वह उन किताबों को उलटता-पुलटता रहा; नीचे, अगल-बगल सब कुछ रत्ती-रत्ती करके ढूँढ़ डाला लेकिन पत्नी के अभियोग का तात्पर्य बिलकुल न समझ सकने के कारण किं-कर्तव्य-विमूढ़ होकर लौटते वक्त शयन-कक्ष में उसकी दृष्टि पड़ी और अन्दर ज्योंही एक पैर बढ़ाया कि मृणाल की उसी चिट्ठी पर उसकी नजर पड़ी। उसे उठाकर पढ़ते ही अकस्मात् अन्धकार में बिजली चमकने की तरह क्षणभर में ही उसे अपना रास्ता दिखाई पड़ा। अचला का इशारा किस ओर था, अब यह समझने में उसे देर न लगी। उस चिट्ठी को हाथ में लेकर महिम बिछौने पर बैठ गया, शून्य दृष्टि से बाहर के अन्धकार की ओर देखकर चुप रह गया। किस तरह वह पहले दिन आई, किस तरह वह चली गई, सौत कहकर अचला से वह कितना हँसी-मजाक किया करती—एक-एक करके सारी घटनाएँ उसे याद पड़ने लगीं। देहाती गाँव के इन रहस्यालापों से जो स्त्री परिचित नहीं, उसे दिन-प्रतिदिन कितनी चोट पहुँची होगी, और उसने खुद भी इस हँसी-मजाक में किसी दिन खुलकर सहयोग नहीं दिया था, बल्कि पत्नी के सामने शर्मिन्दा होकर बार बार उसे रोकने की कोशिश करता था—उसकी यही लज्जा अगर इस उच्च-शिक्षिता बुद्धिमती रमणी के हृत्पटल पर अपराध के रूप में धीरे-धीरे

बद्धमूल हो गई है तो आज उसका उच्छेदन किस तरह किया जाय ? बाहरी अन्धकार के अन्दर से आज उसे अनेक सत्य दिखाई देने लगे। किस तरह अचला का हृदय धीरे-धीरे दूर हटता गया है, किस तरह पति के प्रति दिन-प्रतिदिन उसका हृदय विषाक्त हो गया है, किस तरह पति का आश्रय उसके लिये जेल बन गया है—ये सारी बातें उसे साफ-साफ दिखाई देने लगीं। इस प्राणान्तकारी घेरे के बीच से परित्राण पाने के लिये उसकी आकुल प्रार्थना सुरेश के निकट उस समय कितनी उच्छ्वसित हो उठी थी—वह प्रार्थना उसके अन्तःकरण के किसी बिल्कुल गुप्त कोने से निकली थी—यह भी आज महिम के मनो-नेत्र से छिपा न रहा। अचला को वह सचमुच हृदय से प्यार करता था। वह इतने दिनों तक अचला के निकट रहकर भी उसकी इतनी बड़ी मनोवेदना के प्रति उदासीन रहा, इसे वह अपना भारी अपराध समझने लगा, लेकिन इस तरह अब तो एक क्षण भी नहीं चल सकता ! पत्नी के हृदय को फिर प्राप्त करने का कोई उपाय है या नहीं, वह उससे कितनी दूर हट गया है, इसका अनुमान करना भी आज असाध्य हो गया है, लेकिन अनेक प्रतिकूलताओं के विरुद्ध युद्ध करके उसने पति समझकर एक दिन जिसका आश्रय लिया था, उसी से आज अपमानित और लाञ्छित होकर जो आज उससे अलग हो रही है, इतनी बड़ी भूल तो उसे बता देनी चाहिये थी।

महिम धीरे-धीरे उठकर अचला के दरवाजे के सामने जा खड़ा हुआ और देखा—किवाड़ बन्द है, उसे ठेलकर देखा तो उसे भीतर से बन्द पाया। आस्ते-आस्ते एक-दो बार आवाज लगाने पर जब उसे कोई जवाब न मिला, तो सिर्फ जबर्दस्ती शान्ति भंग करने की उसकी प्रवृत्ति नहीं हुई। यही नहीं, एक अत्यन्त कठिन परीक्षा से अन्ततः छुटकारा पाकर मानो उसकी जान में जान आ गई।

महिम लौटकर अपनी शय्या पर सो रहा किन्तु जिसके अभाव में आज उसके बगल का स्थान सूना पड़ा है, वही ऊपर के कमरे में बगैर

कुछ खाये-पिये जमीन पर लेटी हुई है यह सोचते ही उसकी आँखों में नींद न आ सकी। वहाँ से उसे जगाकर बुला ले आना उचित है कि नहीं—यह सोचते-सोचते बहुत रात तक दुविधा में पड़े-पड़े थोड़ी देर के लिये उसकी आँखें लग गईं, सहसा आँखें बन्द किये ही तीव्र प्रकाश का अनुभव करके आँखें मलकर देखा—सिर के तरफ की खुली हुई खिड़की तथा छप्पर की फाँक से होकर अग्नि की विशाल लपट और उत्कट धुएँ से सारा कमरा भर गया है और बिल्कुल नजदीक में एक ऐसा शब्द हुआ जिसके कान में पड़ते ही सारा शरीर काँप उठा। यह आग कहाँ लगी है, इसे अच्छी तरह समझकर भी क्षणभर वह अपने हाथ-पाँव न हिला सका। लेकिन कुछ क्षण में ही उसके दिमाग के अन्दर मानो तूफान मच गया। वह घबड़ाकर उठा, दरवाजा खोलकर बाहर आया और देखा—रसोई घर तथा जिस घर में आज अचला सोई हुई थी उसी के बरामदे के एक कोने को तोड़-फोड़कर निकलती हुई, प्रधूमित अग्नि-शिखा ने ऊपर के सारे जामुन के पेड़ों को झुलस दिया है। देहाती गाँव में फूस के घर में आग लगने पर उसे बुझाने की कोशिश करना ही पागलपन है। ऐसी कोशिश भी कोई नहीं करता। गाँव के लोग अपनी-अपनी चीज-वस्तु और ढोर वगैरह सम्हालने लग जाते हैं; और दूसरे मुहल्ले के लोग एक तरफ औरत और एक तरफ मर्द इकट्ठे होकर अत्यन्त निकम्मेपन से हाय-हाय करते हैं। और कितनी तादाद में चीज-वस्तु जल गई, और क्योंकर यह सर्वनाश हुआ—इसी की आलोचना-प्रत्यालोचना में सारा घर भस्मसात् होने तक देखते खड़े रह जाते हैं। इसके बाद घर लौटकर हाथ-पाँव धोते। बाकी रात बिछौने पर बिता कर फिर सबेरे ही एक-एक लोटा हाथ में लिये दिशा-मैदान की ओर जाते दीखते हैं और आलोचना की अवशिष्ट बातों को पूरा करके फिर घर जाकर स्नान-भोजन करते हैं। लेकिन एक व्यक्ति के घर-आँगन में पड़े हुए राख के विराट स्तूप दूसरे की नियमित जीवन-यात्रा को रञ्चमात्र भी चोट नहीं पहुँचा पाते।

महिम गाँव का आदमी होने के कारण इन सारी बातों को जानता था। इसीलिये बेकार हो-हल्ला मचाकर मुहल्ले के लोगों की नींद भंग करना ठीक न समझा। इसकी बिल्कुल जरूरत भी न थी; कारण, उसके आम-कटहल के इतने बड़े बगीचे को लाँघकर आग किसी के घर को छू सकेगी, इसकी सम्भावना नहीं थी। बाहर के कई कमरों में सुरेश और नौकर-चाकर सोये हुए थे, वहाँ तक आग पहुँचने में अभी देर थी। सिर्फ़ अचला के कमरे तक पहुँचने में अब कोई देर न थी। उसने उसी के दरवाजे पर बड़े जोर से हाथ पीटकर पुकारा—'अचला !'

अचला ठीक मानो जाग रही हो, उसी भाव से उसने उत्तर दिया—'क्यों ?'

महिम ने कहा—'दरवाजा खोलकर बाहर आ जाओ !'

अचला ने थकी हुई आवाज में जवाब दिया—'बाहर आकर क्या होगा ? मैं तो बहुत अच्छी हूँ !'

महिम ने कहा—'देर मत करो, बाहर आ जाओ—घर में आग लगी है।'

प्रत्युत्तर में अचला के कण्ठ से एक बार भय-विह्वल चीख निकल पड़ी, इसके बाद बिल्कुल सन्नाटा ! महिम ने विकल होकर फिर पुकारा, लेकिन जवाब नदारद। महिम को ठीक यही भय था क्योंकि घर में आग कैसे लगती है, अचला इसे बिल्कुल नहीं जानती थी। महिम ने ठीक समझा—इससे पहले वह आँखें बन्द किये ही बोली थी, लेकिन आँखें खोलने पर जिस दृश्य ने कुछ देर के लिये उसे भी अवश बना दिया था उसी अल्प-प्रकाश में धधकते हुए घर को देखते ही अचला भी बेहोश हो गई थी। लेकिन इस दुर्घटना के लिये महिम तैयार था ही। उसने किवाड़ के एक पल्ले को ऊँचा करके अलग कर दिया और भीतर घुस कर अपनी मूर्च्छित पत्नी को सीने से लिपटाये तुरन्त आँगन में आ खड़ा हुआ।

अब वह घर के अन्य लोगों को सावधान करने के लिये नाम ले-लेकर पुकारने लगा। सुरेश सूखे-मुँह बाहर आ-खड़ा हुआ। जद्दू इत्यादि सभी व्यक्ति दरवाजा खोल-खोलकर बाहर आ खड़े हुए। इसके बाद ही एक प्रचण्ड शब्दाघात से अचला की चेतना लौट आई और वह दोनों बाहों से पति के गले में लिपटकर फूट-फूटकर रोने लगी।

महिम सबको लेकर जब बाहर की खुली जगह में आ पहुँचा, तब बड़े घर के छप्पर में आग लग चुकी थी। अब उसे याद पड़ा—अचला के जेवर-जेवरात जितनी भी कीमती चीजें हैं वे सब की सब इसी कमरे में रह गई थीं और क्षणभर की देर होने से कुछ भी न बच सकेगा।

अचला अच्छी तरह होश में आ गई थी; उसने बड़े जोर से पति का हाथ पकड़कर कहा—'नहीं, यह तो हो नहीं सकता। बदला लेने का क्या तुम्हें यही मौका मिला है? किसी भी तरह उसके बीच मैं तुम्हें न जाने दूँगी। जलने दो, सब जल जाने दो।'

'नहीं जाने से बनेगा नहीं अचला'—इतना कहकर जबर्दस्ती हाथ छुड़ाकर महिम उसी अखण्ड धूम-राशि में द्रुतवेग से प्रविष्ट हो गया। जद्दू चिल्लाते-चिल्लाते साथ-साथ पहुँचा।

सुरेश अब तक किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर पास में ही खड़ा था; अचानक सावधान होकर कुछ लेने की कोशिश करते ही अचला ने उसकी धोती का छोर पकड़कर कठोर स्वर में बोली—'आप कहाँ जा रहे हैं?'

सुरेश अपने को छुड़ाने की कोशिश करता हुआ बोला—'महिम जो गया है।'

अचला कटु स्वर में बोली—'वे गये हैं अपनी चीज बचाने। आप कौन होते हैं? आपको मैं किसी भी तरह न जाने दूँगी।'

उसके कण्ठस्वर में स्नेह का लेशमात्र भी संपर्क न था—मानो उसने अनधिकारी के उपद्रव को तिरस्कार के द्वारा दमन कर दिया।

दो-तीन मिनट के बाद ही महिम दोनों हाथों में दो बक्स लटकाये, तथा जदूदू के सिर पर एक ट्रंक रखे उपस्थित हुआ। महिम अचला के पाँव के निकट बक्सों को रखता हुआ बोला—तुम अपने जेवर के बक्स को किसी भी तरह अपने सामने से अलग मत करना, हम लोग बाहर के कमरे से यथाशक्ति कुछ बचाने की कोशिश करने जा रहे हैं।

अचला के मुँह से कोई बात न निकली। उसकी मुट्ठी में उस वक्त भी सुरेश की धोती का पल्ला था, उसी तरह वह उसे पकड़े रह गई। महिम उस ओर सिर्फ़ एक नजर डाल जदूदू को साथ लेकर फिर ग़ायब हो गया।

२०

प्रभात के प्रथम प्रकाश में पति के मुख पर दृष्टि पड़ते ही अचला का हृदय भीतर से हाहाकार करके रो उठा। अब वह किसी भी तरह उमड़ते हुए आँसुओं को न रोक सकी। यह क्या हो गया! सिर के बाल गर्द, रेत और राख से रूखे एवं विवर्ण हो उठे हैं। शीर्ण और नीरस चेहरा आग की लपटों से झुलस कर ऐसा हो गया है जैसे एक ही रात में उसके इतने सुन्दर पति को किसी ने बूढ़ा बना दिया हो। गाँव के लोग चारों ओर घूम-फिर कर शोरग़ुल मचा रहे थे। पीतल और काँसे के बर्तन-अर्तन तो बिल्कुल ही दिखायी नहीं पड़ रहे हैं। ख़ैर—लेकिन शाल-दुशाले, जेवर-जेवरात इस एक ही ट्रंक में कितने बचे होंगे—इन्हीं बातों को लेकर गर्मागर्म बहस छिड़ी हुई थी। इस उपस्थित जन-मण्डली से थोड़ी दूर पर बुझते हुए अग्नि-स्तूप की ओर शून्य-दृष्टि से देखता हुआ महिम चुपचाप खड़ा था। सब कुछ उसे सुनाई पड़ रहा था, लेकिन उसके दिल की ऐसी हालत नहीं कि वह कौतूहल शान्त कर सके। उस महल्ले के भिखू बन्द्योपाध्याय अत्यन्त गण्य-मान्य व्यक्ति थे जो बात-व्याधि से पीड़ित होने के कारण अब तक पहुँच

न सके थे, इसी समय लाठी टेकते हुए अपने दल-बल सहित आते दिखायी पड़े, महिम उनके आगे जा पहुँचा। बन्धोपाध्याय महाशय बहुत अफसोस व हमदर्दी जाहिर करके अन्त में बोले—'महिम यह ठीक है कि तुम्हारे पिताजी बहुत दिन पहले ही स्वर्ग सिधार गये, लेकिन उनमें और मुझमें कोई भिन्नता न थी। हम दोनों जने हरिहर की आत्मा थे।'

महिम ने गर्दन हिलाकर बड़ी नम्रता के साथ बताया—'इसमें मुझे बिल्कुल सन्देह नहीं।' इसे सुनकर वे फिर से बोले—'यह मैं पहले दिन से ही जानता था कि ऐसा काण्ड होगा।'

महिम चकित होकर जिज्ञासु-भाव से मुँह देखता रहा। बगल में ही एक घर की ओट में अचला वस्तु जान सम्हाल कर चुपचाप बैठी थी, उसने भी सुनने के लिये कान खड़े कर लिये। यहाँ तक भूमिका बाँध कर बन्धोपाध्याय महाशय बोलने लगे—'ब्रह्मा का क्रोध तो यों ही नहीं होता बेटा! हम लोगों से तुमने एक बार पूछा तक नहीं, इतने बड़े ब्राह्मण के बच्चे होकर यह कितना बड़ा पाप कर डाला, बताओ तो?'

महिम के समझ में यह बात न आ सकी। वे अपनी बात की लम्बी-चौड़ी व्याख्या करने के लिये अपने अनुचर-वर्ग की ओर दृष्टि निक्षेप करके बोलने लगे—'हम सभी आपस में बोल रहे थे कि कुछ न कुछ होगा जरूर। क्यों, और किसी के ऊपर ब्रह्मा का कोप क्यों नहीं हुआ! बेटा, ब्रह्म-समाजी और क्रिस्तान में कोई भेद नहीं! साहेब होने से क्रिस्तान कहा जाता है और बंगाली होने से ब्रह्म-समाजी यह बात हम लोगों से—जिन्हें शास्त्र का ज्ञान है—पिछी नहीं रह सकती।'

सभी उपस्थित व्यक्ति उनकी हाँ-में-हाँ मिलाये। वे उत्साहित होकर बोल उठे—'और कुछ भी करो बेटा, पहले एक प्रायश्चित्त करके उसका त्याग कर—'

महिम हाथ उठा कर बोला—'बस कीजिये ! मैं आप लोगों का अपमान करना नहीं चाहता, लेकिन जो मन में आये सो न बकिये। जिन्हें मैं घर में ले आया हूँ, उनके पुण्य से घर बचा रहे तो अच्छा, नहीं तो बिल्कुल जल जाय इसे भी मैं बर्दाश्त करूँगा।' यह कह वहाँ से अन्यत्र चला गया।

बन्धोपाध्याय महाशय सदल-बल अपना-सा मुँह लिये उठ खड़े हुए और लाठी टेकते-टेकते घर को लौट गये। मन-ही-मन जो बकते गये उसे जाहिर न करना ही अच्छा है।

अचला सब कुछ सुन चुकी थी, उसकी आँखों से आँसू के झरने बहने लगे।

जदू ने आकर कहा—'माईंजी, आपसे पूछकर बाबू जी ने पालकी लाने को कहा है। ले आऊँ !'

अचला आँचल से आँखें पोंछकर बोली—'बाबू को एक बार बुला दो तो जदू।'

पालकी !'

'अभी रहने दो।'

महिम ज्योंही उसके पास आकर खड़ा हुआ उसकी आँखों में फिर आँसू उमड़ पड़े। अचानक झुककर उसके चरण-रज को माथे पर उसने चढ़ा लिया, इससे महिम विस्मित एवं विकल हो उठा। शायद वह पति के दोनों हाथ पकड़कर उसे पास में बिठा लेती या और कुछ लड़कपन कर बैठती; वह क्या करती यह तो उसके अन्तर्यामी ही जानते थे; लेकिन सबेरा हो गया था—चारों तरफ़ रसिक लोग मौजूद थे; अचला अपने को सम्हालती हुई बोली—'पालकी किस लिये ?'

महिम ने कहा—'नौ बजे की गाड़ी पकड़ सकने से सब तरह से सुविधा रहेगी। एक बजे के पहले घर पहुँचकर स्नान-भोजन कर सकोगी। कल रात को भी तुमने कुछ नहीं खाया !'

'और तुम ?'

'मैं ?'—महिम थोड़ी देर और सोचकर बोला—'मेरा भी कोई न कोई इन्तज़ाम हो ही जायगा।'

'तो मेरा भी हो जायगा। मैं नहीं जाऊँगी।'

'क्या उपाय होगा बताओ ?'

अचला इस प्रश्न का उत्तर न दे सकी। एक बार उसकी जबान पर यह बात आई—'जंगल में, पेड़ के नीचे !' लेकिन वह तो सचमुच सम्भव था नहीं। और मुहल्ले में किसी के घर में एक घण्टे के लिये भी आश्रय लेना कितना अपमान-जनक होगा, इसका इशारा तो उसे अभी-अभी अच्छी तरह मिल चुका था। मृणाल की बात उसके मन में न आई हो ऐसी बात नहीं; वह बार-बार याद आई थी लेकिन शर्म के मारे अचला यह बात अपने मुँह से न निकाल सकी। कुछ देर मौन रह कर बोली—'तुम भी साथ चलो।'

महिम आश्चर्यान्वित होकर बोला—'मैं साथ जाऊँ ? इससे फ़ायदा क्या ?'

अचला बोली—'नफ़ा-नुक़सान देखने का भार आज से मैं अपने ऊपर लेती हूँ। तुम्हारी भलाई चाहनेवाले यहाँ अधिक नहीं हैं इसे मैं जान चुकी हूँ। इसके अलावा, तुम्हारा चेहरा एक ही रात में ऐसा हो गया है, जिसे तुम तो देख नहीं रहे हो, लेकिन मैं देख रही हूँ। चाहे मेरे गले पर छुरी चल जाय, इस जगह अकेले तुम्हें छोड़कर मैं नहीं जा सकती।'

महिम का हृदय आन्दोलित हो उठा लेकिन वह स्थिर रहा।

अचला बोलने लगी—'क्यों तुम इतना सोच रहे हो ? मेरे गहने तो हैं। उनसे पश्चिम में कहीं एक छोटा-सा घर आसानी से ख़रीदा जा सकता है। कहीं भी रहूँ, तुम मुझे भूखों मरने दोगे नहीं। इतनी चेष्टा तो तुम्हें करनी ही पड़ेगी। और यह तो कह चुकी हूँ कि अब से तुम्हारा भार मेरे ऊपर रहा।'

जदू ने नज़दीक आकर पूछा—'पालकी लेने जाऊँ, माईजी ?'

उत्तर के लिये अचला उत्सुक नेत्रों से पति के मुँह की ओर देखती रही। महिम ने इसका जवाब दिया। जदू को पालकी लाने का हुक्म देकर पत्नी से बोला—'लेकिन मैं तो अभी नहीं जा सकूँगा।'

यह सुनकर अचला का हृदय अनिर्वचनीय शान्ति और तृप्ति से भर गया। वह आन्तरिक आवेग को रोककर सहजभाव से बोली—'यह सच है, इस वक्त तुम नहीं जा सकोगे; लेकिन शाम की गाड़ी से ज़रूर आ जाओगे न, बोलो ? नहीं तो मैं तुम्हारे लिये भोजन तैयार किये बैठी-बैठी रास्ता देखती रहूँगी, और—'

किन्तु उसका यह मन्तव्य महिम की लम्बी साँस से मानो दब गया। वह उदास एवं भयभीत होकर बोली—'उस वक्त नहीं जा सकोगे ? तो फिर इस अँधेरी रात में किसके घर जाकर—' किन्तु बोलते-बोलते वह रुक गई। जिसके घर में उसके पति के ठहरने की सम्भावना है, उसका स्मरण होते ही उसकी मुख-छवि गम्भीर एवं विवर्ण हो उठी। शायद, उसके मन की बात महिम जान न सका। उसने पूछा—'कलकत्ते में मुझे किसके यहाँ चलने को कह रही हो ?'

अचला ने उसी वक्त जवाब दिया—'और कहाँ, पिताजी के यहाँ !'

महिम ने गर्दन हिलाते हुए कहा—'नहीं।'

'नहीं क्यों ? वह क्या तुम्हारा अपना घर नहीं ?'

महिम ने उसी तरह सिर हिलाते हुए बताया—'नहीं।'

अचला बोली—'न सही, वहाँ सिर्फ़ दो दिन ठहरकर हम लोग पश्चिम की ओर चल देंगे।'

'नहीं।'

अचला जानती थी कि उसे अपने निश्चय से डिगाना संभव नहीं। ज़रा सोचकर बोली—'तो फिर चलो, यहीं से हम लोग पश्चिम के किसी शहर को कूच कर दें। मेरे साथ रहने पर तुम्हें कहीं भी

तरह जानती हूँ। किन्तु गहने तो बेचने
ड़कर और कहीं नहीं हो सकता।'

ओर देखता चुपचाप खड़ा रहा। अचला ने व्यग्र-स्वर
रचम में भी तो बड़े-बड़े शहर हैं, वहाँ भी तो बेच सकते
. बक्से में अभी दो सौ के करीब रुपये होंगे, तब तक उतने से
लोगों का राह-खर्च तो चल ही जायगा? चुप क्यों हो गये?
बोलो न जल्दी।'

महिम पत्नी की आँखों की तरफ देख न सका, लेकिन जवाब दिया, बोला—'तुम्हारे गहने न ले सकूँगा, अचला।'

अचानक मानो एक जबर्दस्त धक्का खाकर अचला पीछे हट गई। थोड़ी देर बाद बोली—'क्यों न ले सकोगे, जरा सुनूँ तो?

महिम ने इसका जवाब न दिया। और कुछ देर तक दोनों स्तब्ध-भाव से खड़े रहे। अचानक अचला एक ही साथ कई प्रश्न कर बैठी। वह बोली—'संसार में पति क्या एक तुम्हीं हो? विपत्ति के समय वे कैसे लेते हैं? स्त्री के गहने आखिर होते हैं किस लिये? इतना कष्ट झेलकर इन्हें बचाया ही क्यों?'—यह कहकर टीन के छोटे बक्से को हाथ से ठेलती हुई बोली—'और यदि विपत्ति के दिनों में यह काम न आया, तो व्यर्थ का बोझा ढोने की ज़रूरत क्या है? आग तो अब भी जल रही है, मैं उसी में इसे फेंककर निश्चिन्त हो चली जाऊंगी—तुम्हारे दिल में जो आये सो करना।'—यह कहते हुए उसने आँचल से आँखें ढक लीं।

दो मिनट चुप रहने के बाद महिम धीरे-धीरे बोला— मैंने अच्छी तरह सोचकर देख लिया है अचला। लेकिन तुम तो जानती हो, मैं झोंक में आकर कोई काम नहीं करता या दूसरा भी कोई करे यह भी पसन्द नहीं करता। तुम जो देना चाहती हो, उसे अपना समझकर लेने में आज मेरे आनन्द की सीमा न रहती; लेकिन कुछ भी ले सकने में असमर्थ हूँ। कष्ट देखकर तुम्हारी तरह एक और

व्यक्ति इससे भी अधिक देना चाहता था, किन्तु जैसे वह दयामात्र थी, वैसे यह भी दयामात्र है। मगर मेरा विश्वास है कि इससे न तो तुम्हारा और न मेरा, किसी का भी अन्त में भला न होगा।'

अचला और बर्दाश्त न कर सकी। रोना भूलकर शायद प्रतिवाद करने के लिये ही अपनी कठोर दृष्टि ऊपर करते ही पति की दृष्टि का अनुसरण करने पर उसे दिखाई दिया, कि वहां से कुछ दूर उसकी पोखर के घाट के निकट नीम के पेड़ के नीचे चबूतरे पर हाथ के बल सिर रखकर आकाश की ओर ताकता हुआ सुरेश चुपचाप पड़ा है। अचला की बात मुँह में ही रह गई और उसकी तनी हुई गर्दन आप ही आप झुक गयी।

लेकिन महिम कुछ अनमना-सा होकर अपने मन-ही-मन कहने लगा—'कभी शान्ति न पा सकूँगा सिर्फ़ यही बात नहीं है, तुम्हें बार-बार बञ्चित कर सकूँ, इस तरह का सम्बन्ध हम दोनों में कभी हुआ ही नहीं।' जरा ठहरकर बोला—'अचला, अपने को बञ्चित करके दान करने में अनेक कष्ट हैं किन्तु झोंक में आकर ऐसा क्षणभर में किया जा सकता है, लेकिन उसका फल जीवन भर भोगना पड़ेगा। मैं जानता हूँ—सिर्फ़ एक भूल के लिये तुम्हारे पश्चात्ताप की सीमा नहीं, और एक भूल हो जाने पर न तो तुम अपने को ही क्षमा कर सकोगी और न मुझे ही माफ करोगी। इतनी बड़ी क्षति सहने की शक्ति तुम्हारे पास नहीं इस बात को आज भले ही न समझ सको, दो दिन के बाद तो समझ ही सकोगी। इसीलिये तुम्हारे पास से कुछ भी लेने में असमर्थ हूँ।'

इस बात से अचला के हृदय में बड़ी चोट लगी। स्वामी की नज़रों में वह कितनी पराई हो गई है, उसे जितना आज अनुभव हुआ उतना और किसी भी दिन नहीं हुआ था; और साथ ही साथ मृणाल की याद आ जाने से उसके क्रोध की सीमा न रही। वह भी कठोर होकर बोल उठी—'तुम इतनी देर से जो कुछ समझा रहे हो उसे मैं

समझ गई। शायद तुम्हारी बात ही ठीक है, शायद तुम्हारा मुँह देखकर दया आ जाने से ही मैं अपना सर्वस्व दे देना चाहती थी। शायद दो दिन के बाद मैं इसके लिये पछताती; सब सही है, लेकिन देखो—दूसरे के मन की बात समझ लेने की जितनी भी बुद्धि तुममें हो, तुम्हें समझाने के लिये भी सामग्री है। पत्नी की चीज़ें जबर्दस्ती लेने की बात तो दूर रही, हाथ पसारकर लेने की शक्ति भी क्या तुममें है? तुम्हारे साथ मैं और बहस न करूँगी। कम से कम इतनी विवेक बुद्धि तुममें अब भी बाकी है, आज से यही मेरे लिये सान्त्वना की वस्तु है। किन्तु मैं जहाँ भी रहूँ, एक-न-एक दिन तुम्हें सारी बातें समझनी ही पड़ेंगी।'—यह कहकर हाथ से अपना मुँह दाब कर उसने अपनी रुलाई रोक ली।

नौ बजे की गाड़ी से सुरेश भी घर लौट रहा था। पिछली रात के अग्निकाण्ड का इतना असर उस पर पड़ा था कि किसी के साथ बात तक करने की शक्ति उसमें न रह गई। गाड़ी आने में अभी कुछ देर थी। सुरेश स्टेशन के एक तरफ़ महिम को ले जाकर क्षणभर चुप रहने के बाद पूछ बैठा—'महिम, आग लगाने के बारे में तुम मुझ पर तो शक नहीं कर रहे हो?'

महिम उसके दोनों हाथों को ज़ोर से दबाकर सिर्फ़ बोला—'छिः!' सुरेश की आँखों में आँसू छलछला आये। रुँधे हुए गले से बोला—'कल से इसी डर के मारे शान्ति नहीं मिल रही है महिम।'

महिम ने चुपचाप उसके हाथ को सिर्फ़ दबा दिया। इसके बाद बोला—'सुरेश, एक सच्चा अपराध अनेक झूठे अपराधों का बोझ लाद देता है। लेकिन अनेक कष्ट पाने पर चाहे तुम कुछ भी क्यों न करो, जिसे 'क्राइम' (घोर अपराध) कहते हैं, वह तुम नहीं कर सकते, यह मेरा आज भी विश्वास है।' जरा ठहरकर बोला—'सुरेश तुम भले ही भगवान को न मानो, लेकिन जो सचमुच उन्हें मानते हैं, वे दिन-रात यही प्रार्थना करते हैं कि वे उनके इस विश्वास को भंग न करें।'

गाड़ी आ पहुँची। जनाना डब्बे में अचला और उसकी दासी को बिठाकर महिम ज्योंही सुरेश के पास पहुँचा, उसने खिड़की में से हाथ बढ़ाकर महिम का दाहिना हाथ पकड़कर कहा—'तुम्हारी कल की क्षति-पूर्ति करने की मेरी प्रार्थना तुमने ठुकरा दी, लेकिन तुम्हारे भगवान तुम्हारी प्रार्थना को अवश्य स्वीकार करें भाई। मुझे वे अब और नीच न बनायें।'—यह कहते-कहते वह हाथ छोड़कर मुँह फेर बैठ गया।

उस तरफ़ खिड़की के निकट मुँह लाकर अचला जदू के साथ इतनी देर तक गुप-चुप कुछ बातें कर रही थी। महिम के निकट आते ही वह पूछ बैठी—'मृणाल बीजी के पति क्या आज मर गये हैं?'

महिम गर्दन हिलाकर बोला—'सुना, घण्टाभर पहले मर गये।'

अचला ने पूछा—'करीब दस-बारह दिन तक निमोनिया से पीड़ित रहे। इतनीसी ख़बर किसी दिन मुझे देनी भी तुमने आवश्यक न समझी?'

महिम ने जवाब देना चाहा, लेकिन किस तरह बात को समझाकर कहे यह सोचते-सोचते ही गाड़ी ने सीटी दे दी।

२१

अब तक केदार बाबू पहले जैसे तन्दुरुस्त नहीं हो सके थे। भोजन के बाद बाहर बरामदे में एक आराम-कुर्सी पर पड़े-पड़े अख़बार पढ़ते-पढ़ते थोड़ी झपकी आई थी कि दरवाज़े के आगे किराये की गाड़ी की घड़घड़ाहट सुनकर उनकी आँखें खुल गईं और देखा—सुरेश तथा उसके साथ उनकी कन्या भी नौकरानी के संग गाड़ी से उतर रही है। नींद की झोंक तो पलभर में हवा हो गई। एक अज्ञात शंका से विकल होकर गला फाड़कर चिल्ला उठे—'कौन, अचला! सुरेश, तुम कहाँ से? यह सब क्या मामला है, मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है।'

अचला ने झुककर पिता की पद-धूली को सिर से लगाया; सुरेश ने प्रणाम करके कहा—'क्या महिम का तार आपको नहीं मिला ?'

केदार बाबू ने उद्विग्न-मुख से कहा—'नहीं तो !'

सुरेश एक कुर्सी खींचकर उसपर बैठ गया और बोला—'इससे तो यही मालूम पड़ता है कि तार देना वह भूल गया, या अब तक तार नहीं पहुँचा।'

केदार बाबू बोले—'तार की बात छोड़ो, बात क्या है, यही पहले बताओ न ? तुम इन लोगों को कहाँ से ले आये ?

सुरेश बोला—'कल रात को आग लग जाने से महिम का घर जलकर राख हो गया है।'

'घर जल गया ? सर्वनाश ! क्या कहते हो—घर जल गया ? कैसे जला ? महिम कहाँ है ? तुमने इन्हें कहाँ पाया ?'—एक साँस में ही इतने प्रश्न कर केदार बाबू धप् से अपनी आराम-कुर्सी पर बैठ गये।'

सुरेश बोला—'इन्हें वहाँ से ही लिये आ रहा हूँ। मैं भी तो वहीं था।'

केदार बाबू का मुँह अत्यन्त अप्रसन्न और गम्भीर हो उठा, बोले—'तुम वहाँ थे ? कब गये, मैं तो कुछ नहीं जानता। लेकिन वह कहाँ है ?'

सुरेश बोला—'महिम तो नहीं आ सका, इसीलिये—'

उनका गम्भीर चेहरा स्याह हो उठा। सिर हिलाते हुए बोले—'नहीं, नहीं, यह सब अच्छी बात नहीं। बहुत बुरी बात है। इससे बढ़कर कोई अन्याय हो ही नहीं सकता। ऐसी बातें तो मैं किसी भी तरह—' कहते कहते उन्होंने कन्या के मुँह की ओर दृष्टि फेरी।

अचला अब तक एक कुर्सी की पीठ पर हाथ धरे चुपचाप खड़ी थी। पिता के इस सन्देह ने उसके मर्मस्थल को छेद दिया। उसके अचानक आगमन के कारण पर उन्हें रत्तीभर भी विश्वास नहीं ह

रहा है, इसे स्पष्ट रूप से देखकर लज्जा और घृणा के मारे उसका चेहरा सफ़ेद हो गया।'

केदार बाबू यहाँ ग़लती कर गये। कन्या के चेहरे को देखकर उनका सन्देह दृढ़ हो गया। आराम-कुर्सी पर लेटकर हाथ के अख़बार से मुख को ढकते हुए एक लम्बी साँस लेकर बोले—'जो अच्छा समझो तुम लोग करो। मैं कल ही इस घर को छोड़कर किसी दूसरी जगह चला जाऊँगा।'

सुरेश ने क्रुद्ध-विस्मय के साथ कहा—'यह सब आप क्या कह रहे हैं केदार बाबू! आप क्यों घर छोड़कर चले जायेंगे, और हुआ ही क्या है?'—यह कहकर वह एक बार अचला की ओर और फिर उसके पिता की ओर ताकने लगा, लेकिन किसी का भी चेहरा उसे दिखाई न पड़ा।

केदार बाबू की तरफ़ से कोई जवाब न पाकर वह उठकर खड़ा हो गया और बोला—'जो भी हो, मुझ पर महिम ने जो भार दिया था, उसे मैंने पूरा कर दिया। अब आप जैसा समझें करें। मेरा स्नान-भोजन अभी तक नहीं हुआ, मैं घर चला।' यह कहकर उसने ज्योंही एक कदम दरवाज़े की ओर बढ़ाया कि केदार बाबू उठ बैठे और थकी हुई आवाज़ में बोले—'ऐं, जा क्यों रहे हो? बात क्या है, सुनूँ तो सही! आग लगी कैसे?'

सुरेश अभिमान-भरे स्वर में बोला—'सो मैं नहीं जानता।'

'तुम वहाँ गये कब?'

'पाँच-छ दिन पहले। मैंने अब तक खाना नहीं खाया, और देर नहीं कर सकता—' इतना कहकर फिर जाने का उपक्रम करते ही केदार बाबू बोल उठे—'अरे भाई देख तो रहा हूँ कि तुममें से किसी का भी स्नान-भोजन नहीं हुआ, लेकिन बियाबान में तो नहीं हो, यह भी तो घर ही है, यहाँ भी तो नौकर-चाकर हैं। अचला, पुकारो

न एकबार बेहरा को—खड़ी क्यों हो ? बैठो बैठो, सुरेश, बात क्या हुई, सब खोलकर बताओ तो, ज़रा सुनूँ ।'

सुरेश लौटकर आ बैठा । थोड़ी देर चुप रहकर बोला—'रात को मैं सो रहा था, महिम की चीख सुनकर कमरे से बाहर निकल कर देखता हूँ—सब धू-धूकर जल रहा है । फूस का घर, बुझाने का कोई उपाय नहीं, किसी ने व्यर्थ कोशिश भी नहीं की—सर्वस्व स्वाहा हो गया, और क्या !'

केदार बाबू उछलकर उठ बैठे और बोले—'क्या कहते हो ! सर्वस्व स्वाहा हो गया ! कुछ भी न बचाया जा सका ! अचला के गहने कपड़े वगैरह !

'सो तो बचे हैं !'

'ताहम गनीमत !' कह कर वृद्ध महाशय एक लम्बी साँस लेकर फिर कुर्सी पर लेट गये । कुछ देर स्तब्ध-भाव से बैठे रहने के बाद बोले—'फिर भी, आग लगी कैसे ?'

सुरेश बोला—'बता तो दिया आपसे, कि इस बात का पता अब तक नहीं लगा है । लेकिन उस गाँव में उसका हित-चिन्तक कोई नहीं है, इतना मालूम कर आया हूँ ।'

'कोई नहीं ?'

'नहीं ।'

केदार बाबू ने और कोई बात न कही । कुछ देर चुप रहकर बाहर की ओर देखते रहे, अन्त में एक और लंबी साँस लेकर उठ खड़े हुए और बोले—'जाओ, स्नान कर आओ सुरेश, अब अधिक देर न करो । देखूँ—रसोई का क्या इन्तजाम है ।' यह कहकर उसके साथ ही कमरे से बाहर हो गये ।

भोजन आदि के बाद भी उन्होंने सुरेश को नहीं छोड़ा । वह एक आराम-कुर्सी पर अर्ध-निद्रित अवस्था में पड़ा था । अचला भी नहाने के बाद अपने कमरे में साँकल लगाकर लेट गयी, सो फिर उसकी

आहट तक न मिली। सिर्फ केदार बाबू का दिल बेचैन था। अब तार आना या न आना बेकार था, फिर भी उसी के लिये दिनभर छटपटाते रहे। शाम के वक्त कुसमय में सोना ठीक नहीं इसी बहाने उन्होंने कन्या को बुला भेजा। उसके आते ही बोले—'तुम लोगों ने बताया कि उसने तार दिया है—पर तार का तो कोई पता नहीं। तुम्हारी गाड़ी तो पहुँच गयी, लेकिन तार अब तक न पहुँचा। अच्छा ठहरो तो देखूँ'—कन्या के मुख से कोई जवाब न पाकर चप्पल फट-फटाते हुए जल्दी से बाहर निकल गये, और क्षणभर बाद ही उनका उत्तेजित कण्ठ-स्वर नीचे से स्पष्ट सुनायी पड़ने लगा। अचला की दासी से वे अनेक तरह की ज़िरह कर रहे हैं और प्रत्युत्तर में वह आश्चर्य के साथ बराबर उनका प्रतिवाद कर रही है—'सो क्या बाबू आग लगकर सारा घर-द्वार जलकर राख हो गया, आँखों से देख आयी हूँ, और आप कह रहे हैं घर जला नहीं! और अगर आग नहीं लगी, तो घर-द्वार जलकर राख कैसे हो गया, एकबार सोच कर देखिये तो।'

सुरेश सारी बातें सुन रहा था; उसने सिर उठाकर देखा—अचला चौकठ पकड़कर खड़ी-खड़ी सूखे चेहरे से कान लगा के सारी बातें सुन रही है। वह शुष्क व्यङ्ग्य से बोला—'तुम्हारे पिता जी को क्या हो गया है, बता सकती हो?'

अचला चौंककर मुँह फिरा के बोली—'नहीं।'

सुरेश ने कहा—'मैं दावे से कह सकता हूँ कि उन्हें यकीन नहीं हो रहा है। उनका यह ख्याल है कि आग लगने की बात हम लोगों की बनायी हुई है।' थोड़ी देर चुप रहने के बाद फिर बोला—'झूठ-सच का पता एक दिन लग ही जायगा। लेकिन उन्हें तो इस तरह का सन्देह हो रहा है कि अब से यहाँ मेरा आना भी मुश्किल हो जायगा।'

अचला ने सूखे चेहरे से पूछा—'आप क्या अब यहाँ नहीं आयेंगे!'

सुरेश उठकर बैठ गया और बोला– शायद इसकी उम्मीद नहीं। मुझे भी तो आत्म-सम्मान का कुछ ज्ञान है। किसी आदमी के हाथ मेरा बेग मेरे घर भिजवा देना।'

अचला ने सिर हिलाकर कहा—'अच्छा।' किन्तु यहाँ उसके आने न आने के बारे में उसने कुछ न पूछा।

'तो फिर कल सबेरे भेज देना। उसमें मेरी बहुत-सी जरूरी चीजें बन्द हैं।' यह कहकर केदार बाबू का इन्तजार किये बगैर ही वह घर से बाहर हो गया।

केदार बाबू लौटकर आये तो उन्हें कुछ आश्चर्य ज़रूर हुआ, लेकिन मन-ही-मन अप्रसन्न हुए हों सो मालूम न पड़ा।

रात को बहुत देर तक शय्या पर छट-पट करने के बाद अचला उठ पड़ी। उसकी इच्छा थी कि बाहर बरामदे में खड़ी होकर सामने की सड़क पर आने-जाने वालों को देखकर कुछ देर के लिये जी बहलाया जाय।

अपने कमरे की उस तरफ की किवाड़ खोलकर उसने बरामदे में आकर देखा—उस वक्त भी बैठक में रोशनी जल रही थी। पहले मन में उसने सोचा—शायद नौकर रोशनी गुल करना भूल गया, लेकिन कुछ कदम आगे बढ़ते ही भीतर से अपने पिता की कण्ठ-ध्वनि सुनकर उसके आश्चर्य की सीमा न रही। हमेशा से वे दस बजते-बजते सो जाते हैं, किन्तु आज साढ़े दस बज गये हैं। दूसरे ही क्षण दासी की आवाज़ सुन पड़ी। वह बोल रही थी—'अभी उसका पति मरा है—और मृणाल जीजी ससुराल में रहती हैं ऐसा तो मुझे विश्वास होता नहीं है बाबू। जमाई बाबू के साथ उसका कैसा नाना-नातिन का सम्बन्ध है सो तो वे ही जानें।'

प्रत्युत्तर में केदार बाबू सिर्फ 'हूँ' करके चुप रह गये।

अचला को तब समझ में आया कि इससे पहले बहुत सी बातें हो चुकी हैं। मृणाल के सम्बन्ध में, महिम के सम्बन्ध में कोई बात

कहने से बाक़ी नहीं रही। किन्तु बाद में अपने सम्बन्ध में अपने ही कानों से अत्यन्त अप्रिय बातें सुनने को मिलें—इस भय से वह उसी तरह चुपचाप लौट जाना चाहती थी, लेकिन उसे मालूम पड़ा जैसे किसी ने उसके पाँव लोहे की जंजीर से जकड़ दिये हैं।

केदार बाबू ने थोड़ी देर चुप रहने के बाद प्रश्न किया—'तो यों कहो कि दोनों में पटती नहीं?'

दासी बोली—'बिल्कुल नहीं बाबू, बिल्कुल नहीं। एक दिन के लिये भी नहीं।'

इस दासी को अचला अब तक सीधी-सादी समझती आ रही थी; लेकिन आज मालूम हुआ कि बुद्धि में वह किसी से भी कम नहीं है।

केदार बाबू फिर मिनटभर चुप रहने के बाद बोले—'कल रात से ही किसी ने कुछ खाया नहीं? सुरेश के वहाँ पहुँचने के बाद से इसी तरह के लड़ाई-झगड़े में दिन कट रहे थे।'

दासी ने क्या जवाब दिया, सो तो सुनाई नहीं पड़ा, लेकिन पिता के मन्तव्य को सुनकर ही वह समझ गई कि उसने गर्दन हिलाकर अपनी राय किस तरह जाहिर की होगी। क्योंकि उस क्षण ही केदार बाबू एक गहरी साँस लेकर बोले—'यह मैं पहले से ही जानता था कि ऐसा एक दिन होगा ही। आजकल की लड़के-लड़कियाँ तो माँ-बाप की बात सुनती ही नहीं; मैंने तो एक तरह से सब कुछ ठीक कर लिया था। वैसा होने पर आज उसे चिन्ता किस बात की रहती?' यह कहकर उन्होंने एक और लम्बी साँस छोड़ी सो भी साफ़ सुनाई पड़ी।

दासी पूरी सहानुभूति के साथ क़रीब-क़रीब साथ ही साथ बोली—'सो तो है ही बाबू, नहीं तो आज चिन्ता किस बात की थी! एक देहाती गाँव में फूस-मिट्टी का घर। सो भी न रहा! और जमाई बाबू भी तो—' इतना कहकर अधूरी बात को उसने एक लम्बी साँस छोड़ पूरा कर दिया।

'भाग्य !'—कहकर केदार बाबू दो मिनट तक चुप बैठे रहे, फिर उठकर खड़े हो गये और बोले—'अच्छा, तू जा—' कहकर उसे बिदा करके रोशनी बुझाने के लिये बेहरा को आवाज़ देने लगे।

अचला दबे पैर धीरे धीरे अपने कमरे में आकर बिस्तर पर लेट गई। पिता की उदारता और उनकी शिष्टता के बारे में कभी भी अचला के मन में ऊँची धारणा न थी, लेकिन वे घर की दासी के साथ एकान्त में उसकी अलोचना करने की इतनी हीनता प्रदर्शित करेंगे, ऐसा उसने कभी सोचा भी न था। आज उसका अपना जो छोटा होकर मिट्टी में लोट रहा है—किन्तु उसके पति, उसके पिता, उसकी दासी, उसके मित्र—जबकि सभी उसी की तरह मिट्टी में लोट रहे हैं, तब किसी के सहारे एक दिन वह इस धूलि-शय्या से उठकर खड़ी हो सकेगी, इस आशा की वह कल्पना तक न कर सकी।

२२

केदार बाबू संसार के मामूली आदमियों की तरह ही दोष-गुण से युक्त मनुष्य थे। कन्या की शादी के बारे में उनकी यही कामना थी कि भावी दामाद जहाँ तक हो सके पास-सुदा होने के अलावा दौलतमन्द भी हो। महिम अच्छा लड़का था। उसने एम० ए० परीक्षा पास की थी। देश में उसे अन्न-वस्त्र जुटने का साधन है। इसलिये उसके हाथ में कन्या देना उन्होंने सौभाग्य ही समझा था। एक दिन अचानक उसका धनी मित्र सुरेश जब अपनी गाड़ी पर सवार होकर उनके यहाँ आया और उन्हें एक उल्टी खबर सुनाकर अपने को ही दामादगीरी का उमेदवार खड़ा किया, तब दोनों मित्रों में आर्थिक दृष्टि से महिम को बरखास्त करने में केदार बाबू को जरा भी हिचक नहीं मालूम हुई। वे प्रेम के सूक्ष्मतत्त्व को अधिक महत्त्व नहीं देते। उनका विश्वास था कि स्त्रियाँ पति के रूप में उसी व्यक्ति को

श्रेष्ठ मानती हैं जिसके पास उन्हें चढ़ने के लिये गाड़ी और पालकी, पहनने के लिये सुन्दर वस्त्र और आभूषण हों, सुखपूर्वक जीवन-यापन की सारी सामग्री मौजूद हो इसलिये कन्या को सुखी बनाना ही अगर पिता का कर्तव्य है, तो इतने बड़े अयाचित सुअवसर को किसी तरह हाथ से जाने देना उचित नहीं ऐसा निर्णय करने में उन्हें अधिक शका-समाधान में पड़ने की जरूरत महसूस न हुई।

यहाँ तक कि भावी धनाढ्य दामाद से विवाह से पहले ही कर्ज के रूप में पाँच हजार रुपये ले लेने में भी कोई बुराई उन्हें मालूम न हुई। और जब मकान उन्हीं दोनों का रहेगा ही, यह सोचकर कर्ज चुकाने की फ़िक्र से भी बरी हो गये थे।

लेकिन अभागी कन्या ने सब कुछ बना-बनाया चौपट कर दिया—किसी तरह भी उसने न माना। इसलिये अन्त में हार मानकर उसी महिम के हाथ मे कन्या को उन्होंने सौंप तो दिया, मगर उनके अफ़सोस की हद न रही। इसके अलावा, अब उन्हें यह स्पष्ट स्वीकार करना पड़ा कि सुरेश के रुपये लौटा देने चाहिये। लेकिन रुपये की लिखा-पढ़ी कुछ हुई नहीं थी और कर्ज चुकाने का कोई साफ और आसान रास्ता भी नहीं दिखाई पड़ रहा था, इसकी चिन्ता भी उनके मन में उस तरफ़ ज्यादा जगह न कर सकी। इसलिये प्रश्न तो मन में उठा जरूर, लेकिन उसका उत्तर उसी तरह अस्पष्ट रह गया।

अचला ससुराल चली गई। इसके बाद सुरेश का आना-जाना तथा मेल-मिलाप केदार बाबू को पसन्द न था। घर पर न रहने का बहाना करके अकसर उससे मिलते भी नहीं किन्तु उससे प्रेम था इसलिये कन्या के दुर्व्यवहार से उनका हृदय लज्जा और दुख से भर गया।

इसी तरह दिन बीत रहे थे। किन्तु अचानक एक दिन वे बहुत बीमार हो गये। सुरेश ने उनकी दवा-दारू और पुत्र की तरह सेवा-सुश्रूषा करके उन्हें अरोग्य बना दिया। जब वे खुद कर्ज की बात छेड़ते तो सुरेश ने यह कहकर कि—'मैंने मित्र को दहेज के रूप में दे

दिया'—उस बात को हँसी में उड़ा दिया। उसी दिन से इस युवक पर उनका प्रेम दिन-दूना और रात-चौगुना बढ़ने लगा। यहाँ तक कि कभी-कभी उनके मन में कन्या के विरुद्ध अभिशाप की भावना उठ खड़ी होती—'जिस अभागी लड़की ने इस रत्न को नहीं पहचाना, लापरवाही से ठुकरा दिया, उसे एक दिन इसका फल भुगतना ही पड़ेगा।'

इस मामले में महिम उनकी आँखों का काँटा बन गया था सही, लेकिन इसीलिये उनकी कन्या नारी-धर्म को तिलाञ्जलि देकर पति-त्याग के गम्भीर पाप से अपने अङ्ग-प्रत्यङ्ग को कलङ्कित करके उन्हीं के घर में आ पहुँचेगी, ऐसा वे स्वप्न में भी नहीं सोचते थे; और इस महापाप में जिस आदमी ने उसकी मदद की; वह चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो उसके विरुद्ध पिता का मनोभाव कितना वक्र हो उठेगा इसका अनुमान करना कठिन नहीं।

अन्य मामलों में पिता के प्रति पहले कन्या का मनोभाव चाहे जैसा भी रहा हो, जिस दिन वे सिर्फ़ रुपये के लोभ से ही महिम को ठुकरा कर सुरेश के हाथ उसे सौंपने को तैयार हो गये थे, और कज चुकाने का कोई उपाय न रहने पर भी उससे कर्ज़ ले लिये थे, उसी दिन से केदार बाबू इन्सानियत के लिहाज़ से अचला की नज़र में बिल्कुल गिर गये थे।

लेकिन वही अश्रद्धा कल रात सौगुनी बढ़ गई जब उसने खुद अपने कोनों से सुना कि वे अपनी कन्या के चरित्र के सम्बन्ध में लुक-छिपकर दासी की राय तक लेने में संकोच नहीं करते।

मगर इसी के साथ-साथ अचला को आज अपना रूप भी दिखाई पड़ा। यह याद आते ही उसके रोंगटे खड़े हो गये। जिस वक्त उसने खुद अपने मुँह से पति से कहा कि—'मैं तुम्हें प्यार नहीं करती'—उसी वक्त नारी-धर्म की सर्वोत्तम मर्यादा उसके लिये संसार से विलुप्त हो चुकी। इसीलिये आज वह पति की नज़रों में गिर गई है, पिता की नज़रों से उतर चुकी है, अपनी दासी के निकट भी तुच्छ बन

गई है, और यहाँ तक कि उस सुरेश जैसे व्यक्ति की दृष्टि में भी इतनी ओछी हो गई है कि अगर वह उसे लालसा की संगिनी समझने लगा तो यह उसके लिये दुराशा नहीं। किन्तु क्या वास्तव में वह ऐसी ही है ? इतनी ओछी ? यही तो उस दिन उसने प्रेम को ही सर्व-विजयी बनाकर सारे प्रलोभनों को ठुकराकर अग्नि-परीक्षा में उत्तीर्ण हो गई थी, आज इतने ही दिनों में उस बात को क्या सभी भूल गये ? उसे सुरेश के साथ भेजकर भी पति ने उसकी कोई खोज-खबर नहीं ली। इस उदासीनता के निगूढ़ अपमान और कलंक से रातभर वह मानो आग की लपट में पड़ा-पड़ी जलती रही।

सबेरे जब आँख खुली तब तरुण सूर्य-रश्मि खुली हुई खिड़की में से कमरे की फर्श पर पड़ रही थी। वह आहिस्ते से शय्या पर से उठ बैठी और सिर की तरफ़ की खिड़की खोलकर बाहर की सड़क की ओर ताकती हुई चुपचाप बैठी रही।

कलकत्ते की सड़कें पर जन-प्रवाह का विराम नहीं। कोई अपने काम से जा रहा है, कोई घर लौटा जा रहा है, कोई प्रभात के प्रकाश और वायु में सिर्फ़ भ्रमण को निकला है यह देखते-देखते अचानक उसके मन में यह भाव उठा कि—'इस वक्त कोई भी घर में बैठा नहीं है, और मैंने ही ऐसा कौन-सा घोर अपराध किया है जिससे मुँह भी दिखाने का साहस नहीं होता—अपने को आप ही बन्द कर रखा है ! कुछ अपराध अगर किया भी है तो उनके नज़दीक। इसका दण्ड भी वे ही देंगे। मगर बिना विचार किये ही कोई दूसरा अगर दण्ड देना चाहे, तो उसे चुपचाप सिर पर क्यों ले लूँ ?'

अचला उसी वक्त उठ कर खड़ी हो गई, और मन की समस्त ग्लानि को दूर कर हाथ-मुँह धोकर कपड़े बदलकर बैठकखाने में आ पहुँची।

केदार बाबू आराम-कुर्सी पर बैठे हुए अखबार पढ़ रहे थे, एक बार सिर उठाकर फिर अखबार के पन्नों में मशगूल हो गये।

क्षणभर बाद ही बेहरा केटली में गर्म चाय का पानी और अन्य सरञ्जाम लाकर टेबिल पर रख गया। केदार बाबू ख़ुद उठकर अपने लिये एक प्याला तैयार करके प्याला हाथ में लिये चुपचाप लौटकर आराम-कुर्सी पर अख़बार लेकर बैठ गये।

अचला सिर झुकाये बैठी-बैठी पिता के समस्त आचरण देखती रही लेकिन स्वयं आगे बढ़कर चाय बना कर उन्हें देने या एक बात करने का उसे न तो साहस ही हुआ और न इच्छा ही हुई।

लेकिन उस कमरे में इस तरह कठपुतली की तरह मुँह बन्द करके बैठना भी असम्भव था। यहाँ तक कि इस तरह एक घर में उनके साथ अधिक दिनों तक रहना सम्भव या उचित है कि नहीं, और अगर नहीं है तो वह कौन-सा उपाय करेगी—इस जटिल समस्या पर कहीं एकान्त में जाकर विचार करने के ख्याल से जब वह उठने जा ही रही थी, उसी वक्त दुःसह आश्चर्य के साथ उसने देखा कि सुरेश कमरे में प्रवेश कर रहा है।

उसके हाथ जोड़कर केदार बाबू को नमस्कार करने पर उन्होंने सिर उठाकर ज़रा सिर हिला दिया और फिर पढ़ने में मशगूल हो गये।

सुरेश कुर्सी खींचकर बैठ गया। चाय की सामग्री उठाने के लिये बेहरा ने कमरे में ज्योंही प्रवेश किया, सुरेश ने उससे कहा—'मेरा बेग कहाँ है, मेरी गाड़ी पर ले जाकर रख तो दो। हजामत बनाने तक का समान उसीमें है। देर मत करो अभी जाऊँगा।'

'जो आज्ञा'—कहकर उसके चले जाने पर सारा कमरा फिर सन्नाटा हो गया। कुछ देर बाद सुरेश ने पूछा—'महिम की कोई खबर मिली?'

केदार बाबू सिर बिना उठाये ही बोले—'नहीं।'

सुरेश ने कहा—'बड़े आश्चर्य की बात है!'

इसके बाद फिर सब चुपचाप। नौकर ने वापस आकर बताया—'बेग गाड़ी पर रख आया हूँ।'

'तो अब मैं चला। महिम की चिट्ठी आने पर जरा मुझे खबर दीजियेगा।'—यह कहकर सुरेश के उठते ही केदार बाबू अचानक हाथ का अखबार जमीन पर फेंककर बोल उठे—'तुम जरा इन्तजार करो सुरेश, मैं आ रहा हूँ।'—यह कहकर उसके मुँह की ओर देखे बगैर ही चप्पल फट-फटाते जल्दी से कमरे से बाहर हो गये।

अब तक अचला सिर नीचा किये ही बैठी थी। उनके बाहर होते ही सुरेश ने विश्रिमत होकर जो मुँह फेरा तो उसकी नजर अचला की त्रस्त, पीड़ित एवं मलिन आँखों पर जा पड़ी। उसने पूछा—'बात क्या है?'

अचला ने मुँह नीचा किये ही सिर्फ़ सिर हिला दिया।

सुरेश बोला—'मैं कितना दुखी हूँ, कितना लज्जित हूँ, सो कह नहीं सकता।'

अचला मुँह नीचा किये चुपचाप बैठी रही।

वह फिर बोला—'तुम्हारे पिता मुझे इतना हीन, इतना बड़ा पाखण्डी समझेंगे, ऐसा मैंने स्वप्न में भी न सोचा था।'

अचला ने इस अभियोग का भी कोई जवाब न दिया, उसी तरह स्थिर-भाव से बैठी रही।

सुरेश बोला—'मेरी ऐसी इच्छा हो रही है कि इसी वक्त महिम के पास जाकर उसे—' बात पूरी भी न होने पाई कि केदार बाबू वापस आ पहुँचे।

उनके हाथ में काग़ज़ का एक छोटा टुकड़ा था। उसीको सुरेश के आगे टेबिल पर रखते हुए बोले—'आज-कल करते-करते अब तक तुम्हारे रुपये की एक रसीद भी तुम्हें न दे सका। पाँच हजार रुपये का हैण्डनोट लिख दिया है—सूद तो शायद नहीं दे सकूँगा फिर भी यह मकान तो है, इससे असल रुपये तो अदा हो ही जायँगे।'

सुरेश हक्का-बक्का-सा थोड़ी देर खड़ा रहा, फिर बोला—'मैंने तो आप से हैण्डनोट माँगा नहीं केदार बाबू ?'

केदार बाबू बोले—'यह ठीक है कि तुमने नहीं माँगा, लेकिन मुझे तो देना चाहिये। इतने दिन तक लिखकर नहीं दिया, यही मुझसे बड़ी गलती हो गई सुरेश, इस काग़ज़ को तुम पाकेट में रख लो! बूढ़ा हो गया हूँ, अचानक अगर मर जाऊँ तो तुम्हारे रुपये खटाई में पड़ जायेंगे।'

सुरेश ने आवेग के साथ उत्तर दिया—'केदार बाबू, सुरेश चाहे और जो कुछ करे लेकिन वह रुपये-पैसे के बारे में कभी किसी से झगड़ता नहीं। इसके अलावा आप भी अच्छी तरह जानते हैं कि मैं रुपया नहीं चाहता—मैंने अपने मित्र को वह दहेज के रूप में दे दिये हैं।'

केदार बाबू बोले—'अगर ऐसा है तो तुम अपने मित्र को ही जाकर दे दो, मुझे इसकी जरूरत नहीं। जिसे मैंने लिया है, वह मेरा ही ऋण है।'

सुरेश बोला—'अच्छा, मैं अपने मित्र को ही दे दूँगा'—यह कहकर काग़ज़ के टुकड़े को टेबिल पर से उठाकर दो कदम पीछे हटकर ज्योंहि अचला के सामने खड़ा हुआ कि केदार बाबू आग-बबूला हो गये चिल्लाकर बोले—'खबरदार, सुरेश! कल से मैं बहुत अपमान चुपचाप सहता जा रहा हूँ लेकिन तुम मेरे सामने ही मेरी कन्या व रुपये दोगे यह मैं बिल्कुल बर्दाश्त नहीं कर सकता सो कहे देता हूँ!'—यह कहकर काँपते-काँपते आराम-कुर्सी पर धपूसे आकर बैठ गये।

पहले तो सुरेश चौंककर केदार बाबू की ओर टकटकी लगा देखता रहा। फिर उनके इस तरह बैठ जाने पर उसने अपना विकृ चेहरा अचला की ओर फिराकर देखा कि वह क्षण भर में ही मा पत्थर बन गयी है। जबर्दस्त कोशिश करके सुरेश ने कुछ बोलने भी कोशिश की मगर उसके सूखे कण्ठ से एक अव्यक्त ध्वनि सिवा स्पष्ट-रूप से कुछ भी बाहर न निकल सका। फिर घूम

देखा—केदार बाबू दोनों हाथों से मुँह को ढँककर उसी तरह पड़े हुए हैं। अब उसने कुछ बोलने की कोशिश भी नहीं की सिर्फ विवश होकर थोड़ी देर स्तब्ध-भाव से खड़ा रहने के बाद चुपचाप धीरे-धीरे कमरे से बाहर हो गया।

वह चला गया लेकिन पिता और पुत्री ठीक उसी एक भाव से बैठे रहे और दीवाल पर लटकी हुई बड़ी घड़ी की टिक्-टिक् आवाज के सिवा सारे कमरे में एक निष्ठुर नीरवता विराजने लगी।

नीचे सुरेश की रबड़-टायर की गाड़ी के फाटक पार होते वक्त उसके घोड़े की टापों की आवाज सुनायी पड़ी और दूसरे ही क्षण बेहरा ने कमरे में आकर पुकारा—'बाबू!'

केदार बाबू ने आँखें उठा कर देखा—'उसके हाथ में कागज का एक फटा टुकड़ा! उसके कुछ कहने के पेश्तर ही वे उछलकर और आगे अपना दाहिना हाथ पसारकर चिल्ला उठे—'हटाओ इसे, कहता हूँ, ले जाओ मेरे सामने से। भाग यहाँ से—'

बेहरा हक्का-बक्का हो कर मालिक का रंग-ढङ्ग देख जल्दी से भाग खड़ा हुआ। वे कन्या के प्रति अग्नि-दृष्टि निक्षेप करते हुए कण्ठ-स्वर को कुछ कठोर बनाकर बोले—'हरामजादा, नीच कहीं का—अगर फिर किसी दिन किसी बहाने मेरे घर में घुसने की कोशिश की तो मैं उसे पुलिस के सुपुर्द कर दूँगा—यह मैं तुम कहे देता हूँ अचला!'

अपना नाम सुनकर अचला अपने बिल्कुल सूखे चेहरे आहिस्ते-से उठाकर व्यथित एवं म्लान नेत्रों को चुपचाप पित मुँह पर गड़ा कर ताकती रही।

पिता बोले—'रुपया फैलाकर बाप की आँखों में धूल जा सकती, पाखण्डी इस बात को समझ रखे।'

कन्या फिर भी निरुत्तर रही मगर उसकी मलिन दृष्टि जो प्रखर होने लगी इस पर पिता की नजर नहीं पड़ी। वे त

कँपाते हुए बोलने लगे—'हैण्डनोट फाड़कर चले जाने से बाप को रिश्वत नहीं दी जा सकती यह बात उसे बिना समझाये मैं नहीं छोड़ने का । इस मकान को मैं खुद बेंचकर कर्ज अदा करके जहाँ इच्छा होगी चला जाऊँगा । मुझे कोई रोक नहीं सकता, यह मैं कहे देता हूँ ।'

इतनी देर बाद अचला ने बात की । पहले तो उसे बोलने में कुछ घबराहट हुई, लेकिन बाद में फिर स्थिर एवं अविचलित कण्ठ से बोली—'कर्ज न चुकाकर मकान मेरे लिये छोड़ जाओगे—क्या मैं आशा करती हूँ पिता जी ! अगर इस काम को तुम न कर जाओगे मुझे तो करना ही पड़ेगा ।'

केदार बाबू और अधिक उत्तेजित होकर बोले—'तुम लोग जो कराये हो सिर्फ उसीसे तो मैं भद्र-समाज में मुँह भी नहीं दिखा सकता—यह तुम जानती हो ?'

अचला ने उसी तरह शान्त और दृढ़ स्वर में उत्तर दिया—'नहीं, नहीं जानती । अगर मैंने इस तरह की कोई बात की होती पिताजी, तो लिये तुम मुँह भी नहीं दिखा सकते, उसके पहले मेरा ही मुँह से कोई न देख पाता । उस देश में चाहे और जिस चीज की कमी हो, डूब मरने लायक पानी की कमी न थी ।'—यह कहते-कहते रुलाई से उसका गला रुँध गया । वह फिर बोली—'कल तक मेरा अपमान कर रहे हो उसे सिर्फ झूठा समझकर ही रहते नहीं तो—'

सहसा एक बारगी ही उसका गला रुँध गया । वह मुँह ढककर उमड़ती हुई रुलाई को किसी तरह रोककर बहुत बाहर हो गयी ।

केदार बिल्कुल हतबुद्धि हो गये । गुस्सा करना, चोट करना, अर्थात् कन्या के निन्दित आचरण को लेकर सब तरह से दुखी हैं, यही था उनका विश्वास; लेकिन दूसरा

इस जाड़े की तिजहरी में सर्दी के समय उसे कोई भी गरम कपड़ा न लिये हुये खाली देह बिना आदत की पोशाक के साथ बाहर जाने को उद्यत देखकर वृद्ध पिता की छाती फटने लगी; लेकिन आगे खड़ी उस विधवा की पोशाक को देखकर उन्हें उसे रोकने की इच्छा न हुई। वे सिर्फ़ इतना बोले—'चलो बेटी मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ—' कहकर चप्पल पहन सबसे आगे सीढ़ी से उतरने लगे।

२३

महिम के प्रति अचला को सबसे अधिक दुख इस बात का था कि पत्नी होकर भी वह एक दिन के लिये पति के सुख-दुख में हाथ न बटा सकी। इसी बात को लेकर बचपन से ही सुरेश भी मित्र से अनेक बार झगड़ चुका है, लेकिन सब व्यर्थ। कृपण के धन की तरह महिम सदा से इस चीज को सारे संसार की आँखों से इस तरह छिपाये चल रहा था कि उसकी दुख-विपत्ति में किसी की मदद की बात तो दूर रही, उसे किस चीज की कमी है, क्या तकलीफ़ है—इसका भी कोई कभी पता न पा सका।

इसलिये जब घर जल गया, तब अपने बाप-दादों के घर को भस्मी-भूत स्तूप के रूप में देखकर महिम के दिल को जो ठेस पहुँची उसके चेहरे को देख कर अचला को इसका अनुमान न हो सका। मृणाल के वैधव्य से भी पति के दुख की गहराई का पता लगाना उसके लिये उसी तरह असाध्य था जिस दिन उसने अपने मुँह से कह दिया था—'मैं तुमसे प्रेम नहीं करती'—इस आघात की भीषणता के बारे में भी उस दिन उसे कुछ न मालूम हुआ। इसके अलावा, वह इतनी बड़ी अबोध भी नहीं थी कि सब प्रकार की विपत्ति में भी पति की निर्विकार उदासीनता को यथार्थ में सत्य मान लेने पर उसके दिल में कोई सन्देह न उठता। इसीलिये उस दिन स्टेशन पर वह पति

के अविचलित शान्त चेहरे की ओर बार-बार गौर करके रास्ते भर सिर्फ़ यही सोचती आ रही थी कि सहिष्णुता के इस झूठे नकाब के भीतर उसके चेहरे का असली रूप न जाने कैसा है !

आज उसकी बीमारी की खबर को मामूली तथा स्वाभाविक घटना का रूप देने के लिये केदार बाबू जब सहज स्वर में बोले थे, उन्हें कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ, बल्कि इतनी बड़ी दुर्घटना के बाद इसी तरह की कुछ शंका उनके मन में उठ रही थी, उस वक्त अचला के दिल में क्षणभर के लिये भी जो भाव उत्पन्न हुआ था, उसे सिर्फ़ उत्कंठा-मात्र कहना ठीक न होगा।

सुरेश की रबड़-टायर की गाड़ी द्रुत-वेग से चली जा रही थी। बुआजी एक तरफ का दरवाज़ा बन्द करके चुपचाप बैठी थीं और उनके बगल में अचला पत्थर की प्रतिमा की तरह स्थिर-भाव से बैठी हुई थी। सिर्फ़ केदार बाबू किसी की तरफ़ से कोई उत्साह न पाकर भी रास्ते की ओर अर्थहीन दृष्टि डाले अनाप सनाप बकते जा रहे थे—'सुरेश के समान दयालु, बुद्धिमान और होशियार लड़का दुनिया में नहीं है। महिम की जिद्द से मैं परेशान हो उठा हूँ। जिस देश में लोग नहीं, डाक्टर-वैद्य नहीं, जहाँ सिर्फ़ चोर-डाकू, कुकुर-सियार का बसेरा है ऐसे देहाती गाँव में जाकर निवास करने का फल एक दिन अच्छी तरह भोगना ही पड़ेगा।' इस तरह की अनेक अनाप-सनाप बातें वे धारावाहिक-रूप से उस अवाक रमणी के कानों में बिना विचारे उँडेलते चले जा रहे थे।

इसका कारण भी था। केदार बाबू स्वभावतः एक ओछी तबियत के आदमी थे यह बात नहीं। लेकिन आज उनके हृदय का गूढ़ आनन्द किसी संयम और शासन को मानने के लिये तैयार न था। अपने परम मित्र सुरेश के साथ खुले तौर पर झगड़ना, एकमात्र कन्या का निःशब्द विद्रोह तथा सबसे बढ़कर अत्यन्त कुत्सित एवं भद्दे संशय को छिपाने का जो जबर्दस्त बोझ चक्की की तरह विगत कई

दिनों से उनके हृदय पर जम गया था वह आज बुआजी के अप्रत्याशित आगमन से अकस्मात् हट गया। महिम की बीमारी की खबर को अपने मन में वे कोई बड़ा महत्व नहीं दे रहे थे। अगर दुर्भाग्यवश रात को ठंड लग जाने से जरा बुखार आ ही गया है तो घबड़ाने की कोई बात नहीं। बुआजी ने दो-तीन दिन में ही आराम हो जाने का दिलासा दिया था, हो सकता है इतना समय भी न लगे, हो सकता है कल सबेरे ही आराम हो जाय। बीमारी के सम्बन्ध में उन्होंने यही सोच रखा था। लेकिन असल बात यह थी कि सुरेश खुद जाकर महिम को अपने घर पकड़ लाया है और किसी बहाने उसकी पत्नी को उसके पास ला रखने के लिये अपनी बुआजी तक को उसने भेजा। कन्या-दामाद के बीच कुछ दिनों से जो एक मनमुटाव था, दासी के मुँह से सुनी हुई यह बात एक बार भी वे भूल नहीं रहे थे। अतएव यह सब कुछ उसी दाम्पत्य-कलह का फल है, इस तथ्य के प्रगट हो जाने पर भी इस लगातार बकवास में भी उन्हें अत्यन्त आत्म-ग्लानि होने लगी, कि वहाँ पहुँचने पर उस सम्पूर्ण निरपराध तथा भद्र युवक की ओर वे आँख उठाकर देखेंगे कैसे? लेकिन उनकी कन्या की देह पर नीरवता का साम्राज्य था। बीमारी कोई खतरनाक नहीं है यह वह भी समझ गई थी, सिर्फ़ उसकी समझ में यही नहीं आ रहा था कि सुरेश उन्हें कैसे पकड़ लाया? पति को इतना तो वह पहचान चुकी थी।

सन्ध्या हो गई है। रास्ते की रोशनी जल उठी है। गाड़ी सुरेश के फाटक के अन्दर घुसी और बरामदे के नजदीक जाकर खड़ी हो गई। केदार बाबू सहसा आवाज ऊँची करके उद्विग्न स्वर में बोल उठे—'दो गाड़ियाँ क्यों खड़ी हैं!'

साथ ही साथ अचला की चकित दृष्टि उन पर जा पड़ी और लालटेन की रोशनी में उसे साफ दिखाई पड़ा कि सुरेश एक प्रवीण अंग्रेज को गाड़ी पर सम्मानपूर्वक चढ़ा रहा है और बगल में एक

बंगाली साहेबी-पोशाक में खड़े हैं। उन दोनों को क्षणभर में यह समझते देर न लगी कि ये डाक्टर हैं।

डाक्टरों के चले जाने पर इनकी गाड़ी बरामदे में जा खड़ी हुई। सुरेश खड़ा था, केदार बाबू चीत्कार करके पूछ बैठे—'महिम की हालत कैसी है सुरेश ? बीमारी कौन-सी है ?'

सुरेश बोला—'अच्छी हालत है। आइये।'

केदार बाबू और अधिक विकल होकर बोले—'बीमारी कौन-सी है, जरा यह तो बताओ ?'

सुरेश ने कहा—'बीमारी का नाम बताने पर आप तो समझ नहीं सकेंगे केदार बाबू। बुखार है, सीने में जरा सर्दी जम गई है। किन्तु आप उतर आइये, उन्हें उतरने दीजिये।'

केदार बाबू उतरने की बिल्कुल कोशिश न करके बोले—'जरा सर्दी लग गई है, उसकी चिकित्सा तो तुम खुद कर सकते थे ! मैं बच्चा नहीं हूँ सुरेश, इन दो-दो डाक्टरों की क्या जरूरत थी ? अंग्रेज डाक्टर की ही क्या जरूरत थी ?'—यह बोलते-बोलते उनका गला काँपने लगा।

सुरेश नजदीक आकर उनका हाथ पकड़कर उतारता हुआ बोला—'बुआ, अचला को भीतर ले जाओ, मैं आता हूँ।'

अचला ने किसी से कुछ पूछा नहीं, अँधेरे में उसका चेहरा भी दिखाई न पड़ा—उतरते वक्त पाँव-दान पर उसके पैर काँपने लगे, इस पर भी किसी की दृष्टि न पड़ी। वह जिस तरह चुपचाप आई, उसी तरह चुपचाप बुआजी के पीछे-पीछे घर के अन्दर चली गई।

कुछ मिनट के बाद दरवाजे का भारी पर्दा खिसकाकर जब वह रोगी के कमरे में घुसी, तब महिम शायद अपने घर के बारे में ही कुछ बक रहा था। उन शब्दों के कान में पड़ते ही अब उसे समझने देर न लगी कि यह रोगी का अर्थहीन प्रलाप है, और बीमारी कितनी

बढ़ चुकी है। क्षणभर के लिये वह दीवाल के सहारे खड़ी होकर अपने को सम्हाले रही।

जो स्त्री रोगी के सिरहाने बैठकर बरफ की पट्टी रख रही थी, उसने फिरकर देखा और धीरे से उठकर नीचे झुककर अचला को प्रणाम करके सीधे खड़ी हो गई। वह विधवा का वेश धारण किये थी। गर्दन तक के केश छोटे-छोटे करके काट डाले गये थे; उसके चेहरे पर मानो विधवा का सार्वदिक वैराग्य पूर्णरूप से विराज रहा था। धीमी रोशनी में पहले अचला न समझ सकी थी कि यह मृणाल है। आमने-सामने खड़ी होने के कारण क्षणभर में ही दोनों स्तम्भित हो गईं। एकाएक अचला का सारा शरीर काँप उठा, जरा बोलने के लिये होंठ भी काँपने लगे; लेकिन कोई बात उसके मुँह से बाहर न निकल सकी, और दूसरे ही क्षण बिल्कुल मूर्छित होकर वह छिन्न-लता की तरह मृणाल के पैरों पर गिर पड़ी।

होश आने पर अचला की आँखें खुलीं, उसने देखा वह पिता की गोद में सिर रखकर एक कोच पर पड़ी है। एक दासी उसके मुँह पर गुलाबजल के छींटें दे रही है और बगल में खड़े होकर सुरेश धीरे-धीरे पंखा झल रहा है।

बात क्या हुई थी यह स्मरण होते उसे कुछ देर लगी। लेकिन स्मरण होते ही शर्म के मारे विकल होकर उठ बैठने की उसने ज्योंही कोशिश की कि केदार बाबू ने रोकते हुए कहा—'ज़रा आराम करो बेटी, अभी उठने की जरूरत नहीं।'

अचला मृदु-स्वर में बोली—'नहीं पिताजी, अब मैं अच्छी हो गई हूँ'—यह कहकर उसने ज्योंही फिर उठने की कोशिश की कि केदार बाबू जोर के साथ पकड़कर उद्विग्न होकर बोले—'अभी उठने की कोई ज़रूरत नहीं अचला, बल्कि ज़रा नींद लेने की कोशिश करो।'

सुरेश ने भी शायद अस्फुट स्वर में इसका अनुमोदन किया। अचला ने चुपचाप एकबार उसके मुँह की ओर देखकर प्रत्युत्तर में

केवल पिता के हाथ हटाकर सीधी होकर खड़ी हो गयी और बोली—'सोने तो यहाँ आई नहीं हूँ पिताजी—मुझे कुछ नहीं हुआ है—मैं उस कमरे में जा रही हूँ।' इतना कहकर प्रतिवाद की प्रतीक्षा किये बगैर ही कमरे से बाहर हो गई।

इस घर के कमरों और दरवाज़ों को वह भूली न थी। रोगी का कमरा पहचानने में उसे देर न लगी। उसके प्रवेश करते ही मृणाल ने आँखें उठाकर देखा और कहा—'तुम आकर ज़रा बैठो भाभी, मैं अपना नित्य-कृत्य समाप्त कर आऊँ। देखना बरफ की पट्टी कहीं गिर न जाय, जरा ध्यान रखना।'—यह कहकर वह अचला को अपनी जगह बैठाकर कमरे से चली गई।

२४

निमोनियाँ जैसी कठिन बीमारी के छूटने में समय लगता है। लेकिन महिम धीरे-धीरे आरोग्य होता जा रहा था, अब उसके लिये कोई ख़तरा नहीं, यह बात सबके समझ में अच्छी तरह आ गई थी। उसके मुँह का अर्थहीन प्रलाप, आँखों की उद्भ्रान्त चितवन सब कुछ शान्त और स्वाभाविक हो चले थे।

दसेक दिन बाद एक रोज़ तिपहरी के समय महिम शान्ति से सो रहा था। इस साल सब जगह सर्दी अधिक मात्रा में पड़ी थी तिस पर बड़े ज़ोर की बारिस हो गई थी। रोगी की खाट से सटाकर एक बड़े तख्तपोश पर बिछौना बिछा दिया गया था। उस पर सभी अच्छी तरह कपड़े ओढ़कर बैठे थे। सब के चेहरेपर बेफिक्री थी, सिर्फ़ बुआजी घर के काम-काज में अलग फंसी हुई थीं और केदार बाबू उस वक्त तक अपने घर से वहाँ पहुँच न सके थे।

सुरेश की ओर देखकर मृणाल अचानक हाथ जोड़कर बोली—'इस बार मेरी छुट्टी की अर्जी मंजूर करने का हुक्म हो सुरेश बाबू, मैं

इसी काम में अपनी जिन्दगी बिता दी हो ! तिस पर आश्चर्य मर न हैं कि किसी दिन वह गाँव से बाहर निकली तक नहीं।'

केदार बाबू इसे सच जानते हुए भी विस्मय प्रकाशित करते हु. बोले—'सच कह रहे हो सुरेश !'

सुरेश ने कहा—'सचमुच ! उसकी तरफ़ देखकर कभी कभी सोचता हूँ कि जन्म-जन्मान्तर के संस्कार की बात जो प्रचलित है, शायद वह सच हो।'—यह कहकर हँसने लगा।

परलोक-सम्बन्धी प्रसंग छिड़ जाने पर केदारबाबू कुछ देर तक चिन्तित-भाव से स्थिर बैठे रहने के बाद सहसा बोल उठे—'चाहे जो कुछ भी हो, इस बीच कई दिन गौरकर मुझे यक़ीन हो गया है कि यह लड़की स्त्रियों के बीच अमूल्य रत्न है। इसको जीवनभर इस तरह जीवन्मृत बनाकर रखना सिर्फ़ पाप ही नहीं, महापाप है। अगर वह मेरी लड़की होती तो मैं किसी भी तरह निश्चेष्ट बैठा न रह सकता।'

सुरेश ने आश्चर्यान्वित होकर पूछा—'आप क्या करते ?'

वृद्ध उत्तेजित स्वर में बोला—'मैं उसका पुनर्विवाह करा देता। एक बूढ़े के साथ उसकी शादी कराके इस उन्नीस-बीस साल की उम्र में जिन्होंने उसे संन्यासिनी बना दिया है वे उसके मित्र नहीं शत्रु थे। शत्रु के कार्य को मैं किसी भी तरह न्यायसंगत कहकर स्वीकार नहीं कर सकता।'

ज़रा चुप रहकर फिर कहने लगे—'इसके अलावा उसके पति के व्यवहार पर ही तो एकबार विचार कर लो सुरेश। वह व्यक्ति दो-दो पत्नियों के मर जाने पर पचास साल की उम्र में जब इस तरह की कन्या से शादी करने को राजी हो गया उस वक्त उस पाखंडी ने अपनी सुख-सुविधा को छोड़ पत्नी के भविष्य की ओर ज़रा भी दृष्टिपात किया था ? विचार कर देखो तो !'

सुरेश को निरुत्तर देखकर वृद्ध महाशय और अधिक उत्तेजित हो उठे। बोले—'नहीं सुरेश, मैं विधवा-विवाह की अच्छाई-बुराई पर

केवल पिता के करना चाहता, लेकिन इस मामले में तुम्हारा सारा हिन्दू-
'सोने तो - चिल्ला-चिल्लाकर मर भी जाय फिर भी मैं यह मानने को
कमरे स्कुल तैयार नहीं हूँ कि यही व्यवस्था इस दुधमुँही बच्ची के लिए
कल्याणकर है। उसके लिये ऐसी कोई चीज़ नहीं है जिसको देखकर
वह एक दिन भी काट सके। सारी जिन्दगी को क्या तुम लोगों ने खेल
की चीज़ समझ रक्खा है सुरेश, जो 'ब्रह्मचर्य-ब्रह्मचर्य' चिल्लाने से सारी
दुनिया उसके लिये एक ही रात में बदलकर तपोवन बन जायगी! उस
लड़की के सिर्फ़ पहनावे को देखकर ही मेरी छाती मानो फटने
लगती है।

सुरेश ने जवाब नहीं दिया, सिर उठाकर देखा भी नहीं; लेकिन तिरछी नज़र से देखा कि चौकठ के सहारे इतनी देर तक अचला मूर्ति की तरह खड़ी थी अब उस जगह न थी, न जाने कब चुपचाप कमरे के अन्दर चली गई।

मृणाल के चले जाने पर अचला जब कभी सुरेश के मुँह की ओर देखती, तभी उसे मालूम पड़ता कि वह उदास है, और न मालूम किस शोक से वह सूखा जा रहा है।

दो दिन बाद एक दिन तीसरे पहर सुरेश निचले बरामदे में एक तरफ़ धूप में आराम-कुर्सी पर बैठा हुआ कोई किताब पढ़ रहा था, पैर की आहट पाकर देखा—अचला उसी के लिये चाय लेकर ख़ुद आ रही है। ऐसी घटना पहले किसी दिन न हुई थी, इसीलिये उसने आश्चर्य से सीधे बैठकर पूछा—'बेहरा कहाँ है? आज तुम कैसे!'

अचला ने इस प्रश्न का कोई उत्तर दिये बग़ैर ही एक छोटी तिपाई कुर्सी के नज़दीक खींचकर उस पर चाय की कटोरी रख दी और एक दूसरी कुर्सी खींचकर ख़ुद बैठ गई।

इस नये रंग-ढंग को देखकर सुरेश को अब साहस नहीं हुआ कि वह उससे दूसरी बार प्रश्न करे। सिर्फ़ चाय का प्याला उसने चुपचाप हाथ में उठा लिया।

देश जाऊँगी । इस कड़ाके की सर्दी में बुढ़िया सास कहीं मर न गई हो ।'

सुरेश बोला—'अब भी क्या उनके जीने की कोई ज़रूरत है ? नहीं, उनके लिये आपका जाना नहीं हो सकता ।'

मृणाल ने पलभर के लिये गर्दन फिराकर शायद एक लम्बी साँस ले ली । इसके बाद सुरेश के मुँह की ओर देखकर ज़रा मुस्कुराती हुई बोली—'सिर्फ़ आपकी बात नहीं सुरेश बाबू, यह प्रश्न पहले कई बार मेरे दिल में भी उठ चुका है । सोचती भी हूँ—अब उनका जाना ही अच्छा है । लेकिन मारने-जिलाने के जो मालिक हैं उन्हें तो उसका ख्याल नहीं है । अगर ऐसा हो सकता तो संसार के अनेक दुख-कष्टों से मनुष्य छुटकारा पा जाता ।'

अचला इतनी देर चुप बैठी थी । मृणाल की बात से शायद उसके पति की मृत्यु को स्मरण करके उसने कहा—'इसका तात्पर्य यह है कि जो अन्तर्यामी हैं उन्हें यह पता है कि मनुष्य सैकड़ों कष्टों के बीच भी अपनी मौत नहीं चाहता ।'

मृणाल के मुख पर एक छिपी हुई वेदना का चिन्ह अंकित हो गया । वह सिर हिलाकर बोली—'नहीं भाभी, यह बात नहीं है । ऐसा समय जरूर आता है जब कि मनुष्य यथार्थ में मृत्यु की कामना करता है । एक दिन बहुत रात बीते आँख खुलने पर सासजी को उनके बिछौने पर न देख पाई । तड़फड़ बाहर आकर देखा कि—ठाकुर-द्वारे का दरवाजा जरा खुला है । चुपचाप पास जाकर खड़ी हो गई । देखा कि वे गले में वस्त्र लपेटे ठाकुरजी के आगे हाथ जोड़कर मृत्यु की भीख माँग रही हैं । उनका कहना था—'हे ठाकुरजी ! अगर एक दिन भी तन-मन से मैंने तुम्हारी सेवा की हो तो आज मेरी लाज रख लो । मैं न तो मुक्ति चाहती हूँ, न स्वर्ग चाहती हूँ, सिर्फ़ मैं यही चाहती हूँ ठाकुरजी, तुम अब मुझे और लज्जित न करो—मुझे इस

मुह से अपनी बहू के सामने होने का साहस नहीं होता।'—कहते-कहते मृणाल की आँखों से आँसू गिरने लगे।

इस प्रार्थना के भीतर मातृ-हृदय की कितनी गम्भीर वेदना निहित थी, इसे अनुभव करते किसी को देर न लगी। सुरेश की आंखों में पानी भर आया। किसी के सामान्य दुख से भी वह कातर हो उठता, आज इस पुत्रविहीन वृद्धा जननी की मर्मान्तिक व्यथाभरी कहानी ने उसके हृदय को रुला दिया। वह क्षणभर भूमि की ओर देखता रहा, अकस्मात् सिर उठाकर एक लम्बी साँस लेकर बोल उठा—'अच्छा, जाओ बहन, अपनी बुढ़िया सास की सेवा करके अपने कर्तव्य का पालन करो, अब मैं तुम्हें मना नहीं करूँगा। यह हतभाग्य देश आज भी तुम जैसी महिलाओं के बदौलत ही गर्व से सिर उठा सकता है। इस तरह की वस्तु और कोई भी देश नहीं दिखा सकता!'—इतना कहकर जिज्ञासा-पूर्ण नेत्रों से एकबार उसने अचला की ओर देखा। लेकिन वह खिड़की के बाहर एक धूसर मेघ-खण्ड की तरफ दृष्टि निबद्ध करके चुपचाप बैठी हुई थी, इसलिये उसकी ओर से कोई जवाब न मिला।

लेकिन मृणाल शर्मा गयी, इसलिये बात-चीत की धारा को दूसरी ओर घुमाने के ख्याल से तड़फड़ चेहरे पर जबरन हँसी लाकर बोली—'नहीं, ऐसा नहीं! आप तो सब देश की खबर जानते हैं! अच्छा, आप मेरे भैया से छोटे हैं या बड़े?'

इस अद्भुत प्रश्न को सुनकर सुरेश हंसकर बोला—'क्यों, आप बताइये तो?'

मृणाल ने रोककर कहा—'नहीं, मुझे अब 'आप' मत कहिये। मैं बहन होने पर भी जब आप से उम्र में छोटी हूँ, तब आप मझले भैया, छोटे भैया या बड़े भैया,—बताइये, बताइये, जल्दी बताइये, क्या हैं?'

अचला ने आकाश की तरफ से आँखें हटाकर इस बार उसकी ओर देखा। उसे वह बात याद आ गई कि इसी लड़की ने कितनी जल्दी

और कितनी आसानी से उसके साथ जीजी-भाभी का नाता कायम कर लिया था। लेकिन सुरेश को मृणाल के इस अद्‌भुत चरित्र का पता न रहने के कारण उसने इस अद्‌भुत रमणी के मुख की ओर देखा और कौतुक-पूर्ण हँसी हँसकर बोला—'छोटे भैया! छोटे भैया! तुम्हारे भैया से मैं करीब डेढ़ साल छोटा हूँ।'

मृणाल बोली—'अच्छा छोटे भैया, कृपा करके एक आदमी का बन्दोबस्त कर दीजिये जो मुझे कल सबेरे की गाड़ी में बिठा आवे।'

सुरेश ने यद्यपि जाने की अनुमति दे दी थी फिर भी उसने यह नहीं सोचा था कि वह कल सबेरे ही जाने को तैयार हो जायगी। इसीलिये क्षणभर स्थिर रहकर ज़रा गंभीरता से बोला—'और दो दिन न ठहर सकोगी बहन? तुम पर भार देकर हम लोग महिम की ओर से बिल्कुल निश्चिन्त हो गये थे। रात-दिन इतनी तत्परता और सावधानी से सेवा करते तो मैंने अस्पताल में भी कभी किसी को नहीं देखा। क्यों अचला?'

प्रत्युत्तर में अचला ने सिर्फ़ सिर हिला दिया।

मृणाल सुरेश के चिन्तित चेहरे को देखकर मुस्कुराती हुई बोली—'आप इसकी बिल्कुल फिक्र न करें। जिसकी चीज है, उसी के हाथ मैं सौंपे जा रही हूँ, नहीं तो मैं खुद नहीं जा सकती थी। आप तो जानते ही हैं, हम लोगों को कितनी जल्दी चले आना पड़ा था। इसीलिये कोई बन्दोबस्त करके नहीं आयी थी। कल मुझे छुट्टी दे दीजिये छोटे भैया, फिर जब आप हुक्म करेंगे, उसी वक्त चली आऊँगी।'

सुरेश फिर कुछ देर मौन रहने के बाद सहसा बोल बैठा—'अच्छा मृणाल, उस बिल्कुल देहाती गाँव में सिर्फ़ एक बूढ़ी सास की सेवा तथा पूजा-पाठ करके तुम्हारा सारा समय कैसे कटेगा, मैं सिर्फ़ यही सोच रहा हूँ।'

मृणाल के चेहरे पर फिर व्यथा का चिह्न प्रगट हो गया। लेकिन उसने हँसकर कहा—'समय बिताने का भार तो मुझपर है नहीं छोटे

भैया। जिन्होंने समय की सृष्टि की है, वे ही इसकी व्यवस्था भी करेंगे।'

सुरेश ने कहा—'अच्छा, यही सही, लेकिन तुम्हारी सास तो अधिक दिन जियेंगी नहीं, और महिम को भी डाक्टर की सलाह के मुताबिक अच्छे होने पर कुछ समय के लिये पश्चिम के किसी स्वास्थ्य-प्रद स्थान में रहना ही पड़ेगा। तब तुम अकेली वहाँ किस तरह रहोगी?'

मृणाल आकाश की ओर दृष्टिपात करके फिर थोड़ा हँसी और बोली—'सो वे ही जानें।'

अनजाने में ही सुरेश के मुँह से एक लम्बी साँस निकल पड़ी। मृणाल बोली— जान पड़ता है मेरे छोटे भैया यह सब मानते नहीं है!'

'क्या सब?'

'यही जैसे भगवान—'

'नहीं।'

'तभी मालूम पड़ता है कि हम लोगों के प्रति अवज्ञा की वह आपकी लम्बी साँस निकली है छोटे भैया!'

सुरेश ने इस प्रश्न का एकाएक कोई जवाब न दिया। कुछ देर अनमना सा उसके मुँह की ओर देखता हुआ अचानक गर्दन हिला कर बोल उठा—'नहीं मृणाल, यह बात नहीं है। एक अज्ञात भविष्य का भार उसी तरह के एक अज्ञात ईश्वर पर रखकर चलने वालों का रास्ता हम लोगों को अपेक्षा सहल है यह मैंने अक्सर देखा है। लेकिन इन सब बातों को जाने दो बहन, बात बढ़ने पर मेरे प्रति तुम्हारे दिल में घृणा उत्पन्न हो जायगी।'

मृणाल तड़फड़ नीचे झुककर सुरेश के पैर छूकर बोली—'अच्छा, रहने दो।'

सुरेश आश्चर्य-चकित होकर बोला—'यह क्या, मृणाल?'

'क्या छोटे भैया!'

'कोई बात न चीत, अचानक पैर छूलिये !'

मृणाल बोली—'बड़े भाई के पैर छूने के लिये क्या दिन-मुहूर्त देखना पड़ता है ?' इतना कहते-कहते हँसकर उठ गयी।

'बाहरी लड़की !'—कहते हुए स्नेह की हँसी हँसकर सुरेश ने जब अचला के मुह की ओर देखा तो वह एकबारगी ही विस्मय से अभिभूत हो गया ! ऐसा लगा, मानो उसका सारा चेहरा श्रावण के आकाश की तरह घने बादलों से घिर गया है। किन्तु विस्मय के धक्के को सम्हालकर इस सम्बन्ध में किसी प्रकार का प्रश्न करने का मौका देने से पहले ही अचला हतबुद्धि सुरेश को आकाश-पाताल सोचने का काफ़ी मौका देकर द्रुतगति से करीब-करीब मृणाल के साथ ही कमरे से बाहर हो गयी।

उसी जगह स्तब्धभाव से बैठा हुआ सुरेश सोचने लगा—'यह कैसे क्या हो गया ? मृणाल के प्रणाम करने के साथ इसका कुछ गहरा सम्बन्ध है, यह वह मन-ही-मन अनुमान करने लगा, लेकिन यह सम्बन्ध है कहाँ ? मृणाल क्यों अकस्मात् प्रणाम करके चली गयी और पलक मारते ही अचला उस तरह के उदास चेहरे को लेकर कमरे से बाहर क्यों हो गयी ? अपने व्यवहार और बातचीत पर शुरू से आखीर तक गौर करने पर भी उसके कुछ समझ में न आया। और साथ ही साथ इतनी बड़ी दो घटनाएँ कुछ योंही घट नहीं सकती, यह भी उसने समझा। इसलिये उसी का कोई अज्ञात निन्दित आचरण ही इस अनर्थ का मूल है, यह सन्देह उसके हृदय में काँटे की तरह चुभने लगा।

लेकिन इस बारे में मृणाल से भी किसी तरह का प्रश्न करना असंम्भव था। रात एक तरह से करवटें बदलकर उसने बितायी और सबेरे ही एक बार अचला को एकान्त में पाकर कहा—'तुम्हें एक बात का जवाब देना होगा।'

अचला का मुँह लज्जा से लाल हो उठा। वह प्रश्न क्या होगा, यह उससे छिपा न था। गत रात की अपनी अद्भुत आचरण की कैफियत उसे देनी पड़ेगी यह समझकर आरक्त मुख से वह मृदुस्वर में बोली—'कौन-सी बात?'

सुरेश धीरे से बोला—'कल मृणाल अचानक मेरे पाँव छूकर उठ गयी, तुम भी चेहरे पर गुस्से का भाव लेकर चली गयी, सो क्या उसकी सास के मरने की बात मैंने कही थी इसीलिये?'

इस अप्रत्याशित प्रश्न में अचला को एक रास्ता मिलता दिखायी दिया, वह मन-ही-मन खुश होकर बोली—'इस तरह का प्रसंग छेड़ना क्या तुम्हारे लिये उचित था? उस बेचारी के पति नहीं रहे, सास की मृत्यु से उसकी कैसी अनाथ अवस्था हो जायगी जरा इस पर तो एक बार सोच कर देखो!'

सुरेश अत्यन्त क्षुब्ध होकर बोला—'मुझसे बड़ा भारी अन्याय हो गया है। लेकिन वे अधिक दिनों तक जी नहीं सकतीं यह तो खुद मृणाल भी जानती है। इसके अलावा, वह निःसहाय होगी ही क्यों?'

अचला ने जवाब दिया—'यह बात हमने तो उससे एक बार भी न कही, बल्कि तुम्हीं उसे अनेक तरह से डरा रहे थे कि गाँव में वह अकेली रहेगी कैसे?'

सुरेश ने अत्यन्त अनुतप्त होकर पूछा—'ऐसी स्थिति में उसके जाने से पहले उसे दिलासा देना क्या मुझे उचित नहीं है? उसे किसी बात का डर नहीं, यह बात क्या उसको—' कहते-कहते स्वाभाविक करुणा से उसका गला रुँध गया।

अचला उसके मुँह की तरफ देखकर हँसी। इस पर-दुख-कातर सहृदय युवक की हजारों दया की कहानी उसे पलमात्र में याद पड़ गयी। गर्दन हिलाकर बोली—'नहीं, तुम्हें दिलासा देने की कोई जरूरत नहीं, डर दिखाने की भी आवश्यकता नहीं। जब वैसा समय आ पहुँचेगा तब क्या मैं चुप बैठी रहूँगी?'

पत्र भी अकस्मात् उन्हीं के आचरण को और अधिक निन्दित मुँह पर ही तिरस्कार करके तीव्र अभिमान के साथ रोकर चला जा इसकी सम्भावना उन्हें स्वप्न में भी न थी। इसलिये अभिभूत को कुछ देर खड़े रहने के बाद वे भी बैठ गये और सिर खुज खुजलाते कहने लगे—'यह लो—फिर दूसरा तमाशा।'

इसके बाद आठ-दस दिन तक पिता-पुत्री की कैसे कटी सो अन्तर्यामी ही जानते हैं। अचला किसी भी तरह अपने कमरे से बाहर न निकली, घर के नौकर-चाकर, दास दासी किसी के आगे मुँह दिखाना उसके लिये असम्भव हो गया था। विगत कई दिनों की तरह आज भी वह सड़क की ओर देखकर दिन काटने के लिये ही खुली खिड़की के सामने बैठी हुई थी।

सर्दी का दिन था, दोपहर के साथ-ही-साथ एक म्लान छाया जिस तरह आकाश से धरती पर आहिस्ते-आहिस्ते पड़ती जा रही थी और उस मलिनता के साथ अपने जीवन के एक अज्ञात सम्बन्ध को हृदय गहराई के साथ अनुभव करके उसका सारा मन मानो इस स्वल्पा दिन की तरह ही निःशब्द भाव से समाप्त हो रहा था। उसकी आँ कुछ देख रही थीं सो तो नहीं, फिर भी अभ्यास-वश ऊपर, नीचे, अ बगल किसी वस्तु पर उसकी नज़र पड़ने से बाक़ी न रहती। तरह बैठे-बैठे दिन जब कुछ शेष रह गया तो सहसा उसे दिखाई कि सुरेश की गाड़ी उसके घर में प्रवेश कर रही है। क्षणमात्र में सारा चेहरा फक् हो गया। और पुलिस को देखकर चोर जिस साँस रोककर भागता है, ठीक उसी तरह वह भी खिड़की से एक ही भाग कर खाट पर जा लेटी।

कोई बीस मिनट बाद उसके बन्द दरवाज़े पर धक्का पड़ा। बाहर से उसके पिता प्रेमपूर्ण स्वर में पुकारने लगे—'बेटी अच जाग रही हो क्या?'

कन्तु कोई उत्तर न पाकर स्वर को अत्यधिक कोमल बनाकर —'दिन बीत गया बेटी, उठो। सुरेश की बुआजी तुम्हें लेने के आयी हैं, महिम बहुत बीमार है।'

अचला ने बिस्तर छोड़कर चुपचाप ज्योंही दरवाज़ा खोला कि श की बुआजी कमरे में घुसीं।

अचला ने झुककर उनके पैर छुए।

केदार बाबू सबसे पीछे कमरे में प्रवेश करके बिस्तर के एक कोने पर बैठकर कन्या को सम्बोधितकर कहने लगे—'तुम लोगों के चले आने के बाद से ही महिम को बड़े ज़ोर का बुखार आ रहा है। इस बात की पूरी सम्भावना है कि रात को सर्दी लग जाने से दुश्चिन्ता, परिश्रम और अनेक कारणों से उसे यह बीमारी हो गई है।'—इतना कहकर सुरेश की बुआजी को लक्ष्य करके फिर बोले—'मैं सोच के मारे मरा जा रहा था कि इन लोगों को भेजने के बाद से उसने एक संवाद भी क्यों नहीं भेजा ? मेरा सुरेश चिरंजीवी हो, वह वहाँ जाकर बुद्धिमानी से उसे यहाँ न ले आया होता तो क्या होता सो भगवान ही जानते हैं।'—इतना कहकर प्रेमपूर्ण पश्चात्ताप से वृद्ध का गला भर गया।

अचला मौनभाव से मुँह लटकाये खड़ी होकर सब कुछ सुनती । उसने न तो कोई प्रश्न ही किया और न किसी तरह की चञ्चलता ाट की।

सुरेश की बुआजी अचला की बाँह पर अपना दाहिना हाथ रखकर एवं मृदु स्वर में बोलीं—'डरो मत बेटी, वह दो दिन में ही हो जायगा।'

चला ने बिना कुछ कहे एक बार और झुककर उन्हें प्रणाम किया प्रलगनी से सिर्फ़ चादरमात्र खींचकर जाने के लिये तैयार हो

सुरेश आत्म-विभोर होकर बड़े आवेग से अचानक उसके हाथ को पकड़कर जोर से झटका देकर बोल उठा—'यही तो तुम्हारे लायक बात है ! यही तो तुमसे चाहता हूँ अचला !'—यह कहकर असीम लज्जा से उसका हाथ छोड़कर एक साँस में ही वहाँ से भाग गया।

क्षणभर पहले जिसका वही उच्छ्वास परार्थता के निर्मल आनन्द से उत्पन्न हुआ था, इस लज्जित पलायन से पलमात्र में ही वह भद्दे और कलुषित रूप में दिखाई पड़ा। अचला की नस नस में बिजुली दौड़ गई और मस्तक पसीने से तरबतर हो उठा। उसका अंग प्रत्यंग बार-बार सिहर उठा और एक पास की कुर्सी पर मुर्दे की तरह वह बैठ गई। कुछ क्षण में ही उसका यह भाव तो दूर हो गया, लेकिन अपने बीमार पति की शय्या के निकट बैठने में आज सवेरे से ही उसे कुछ डर-सा मालूम होने लगा।

जाते-जाते मृणाल को दो दिन की देर हो गई। महिम से बिदा लेने जब वह गई तो उसने देखा—वह करवट लिये आज बिल्कुल असमय में ही सो रहा है। जो बिदा लेने आयी थी उसने इस झूठी नींद का कारण अच्छी तरह अनुमान करके भी चुपके से कहा—'उन्हें अब जगाने की ज़रूरत नहीं भाभी, क्यों ठीक है न ?'

प्रत्युत्तर में अचला के होंठों के किनारे सिर्फ़ एक तिरछी हँसी दिखाई दी। मृणाल मन-ही-मन समझ गई—इस छल को उसके सिवा एक और नारी भी ताड़ गई है। उसके विरुद्ध अचला जो अन्दर ही अन्दर एक छिपी हुई ईर्ष्या का भाव रखती है उसका वह महिम के निकट किसी दिन आभासमात्र न पाकर भी जानती थी। यह बिल्कुल निर्मूल ईर्ष्या उसके हृदय में काँटे की तरह चुभती ! लेकिन फिर भी वह ऐसा नहीं सोचती थी कि अचला अपनी नीचता दिखाकर आज भी उस बीमार पति की पवित्र दुर्बलता को विकृत रूप में देखेगी। क्षण भर के लिये मन-ही-मन वह जल उठी, लेकिन उसी वक्त अपने

को सम्हालकर उसने अचला के कान में कहा—'तुम तो सब जानती ही हो भाभी, मेरी तरफ़ से माफ़ी माँग लेना। उनसे कहना—अच्छे ने किये पर जब वे देश लौटेंगे उस समय जिन्दा रही, तो मुलाकात होगी।'

नीचे केदारबाबू बैठे थे। मृणाल प्रणाम करके ज्योंही खड़ी हुई उनकी आँखों में पानी भर आया। इस थोड़े से समय में ही सबकी तरह उन्हें भी इस विधवा कन्या से अत्यन्त स्नेह हो गया था। कुर्ते की बाँही से आँसू पोंछकर बोले—'बेटी, तुम्हारे पुण्य से ही हमने महिम को मौत के मुँह से वापस पाया है। जब तुम्हारी इच्छा हो, जब कभी घूमने की लालसा हो अपने इस बूढ़े को न भूलना बेटी। मेरा घर तुम्हारे लिये दिन-रात खुला रहेगा, मृणाल।

अचला भीतर ही चुप खड़ी थी; मृणाल उसकी ओर संकेत करके मुस्कुराती हुई बोली—'जमराज के बाप की क्या ताकत है पिताजी, कि वह उनके निकट से भैया को ले जाय! जिस दिन भाभी के हाथ मैंने उन्हें सौंप दिया उसी दिन मेरा काम पूरा हो गया।'

केदार बाबू के मुँह का भाव कुछ गम्भीर हो गया, लेकिन वे कुछ और नहीं बोले।

दो बूढ़े कर्मचारी और एक नौकरानी मृणाल को देश पहुँचाने के लिये तैयार खड़े थे। उन सबों को लेकर घोड़ा-गाड़ी फाटक से बाहर स्टेशन की ओर चली, केदारबाबू के भीतर से एक लम्बी आह निकल पड़ी। धीरे से बोले—'अद्भुत अपूर्व लड़की है!'

शायद सुरेश का हृदय भी इसी भाव से भरा हुआ था। वह किसी तरफ़ बगैर देखे उन्हें शह देकर बोल उठा—'मैंने कभी ऐसी लड़की नहीं देखी केदार बाबू! ऐसी मीठी-मीठी बातें भी कभी सुनने को नहीं मिलीं, ऐसी निपुणता के साथ किसी को कभी काम करते भी नहीं देखा। चाहे जिस काम को दे दीजिये वह ऐसी अपूर्व दक्षता के साथ कर दिखायेगी कि ऐसा मालूम होता है जैसे उसने

कुछ देर स्तब्ध-भाव से बैठी रहने के बाद अचला ने मृदुकण्ठ से पूछा—'अच्छा सुरेशबाबू क्या आप विधवा-विवाह को किसी भी परिस्थिति में अच्छा नहीं समझते ?'

सुरेश ने चाय के प्याले पर से मुँह उठाये बगैर ही जवाब दिया—'अच्छा समझता हूँ। इसका कारण यह है कि मेरा कुसंस्कार अब भी उतनी दूर तक नहीं पहुँचा है।'

अचला अपने को और सोच-विचार करने का मौका न देकर बोली—'अगर आप ऐसा मानते हैं तो मृणाल जैसी लड़की के साथ शादी करने में आपको ज़रा भी एतराज न होना चाहिये।'

सुरेश चाय के प्याले को हाथ में लेकर दृढ़ता के साथ बैठकर बोला—'इसका मतलब ?'

अचला के मुँह या कण्ठ-स्वर में किसी तरह की उत्तेजना दिखाई न दी। वह बिल्कुल सहज भाव से बोली—'मैं आपके एहसानों के बोझ से लदी हूँ। इसके अलावा मैं आपकी हित-चिन्तक भी हूँ। मैं आपको सुन्दर, सहज और स्वाभाविक गृहस्थ के रूप में देखना चाहती हूँ। एक दिन आप विवाह करने को तैयार थे, आज मेरे अनुरोध को आप स्वीकार करें।'

एक साँस में ही रटी हुई बात की तरह बोलकर अचला मानो हाँफने लगी।

सुरेश पत्थर की मूर्ति की तरह बहुत देर तक स्थिर भाव से बैठा रहा और अन्त में बोला—'इससे क्या तुम सचमुच सुखी होगी ?'

अचला ने कहा—'हाँ।'

'वह राजी होगी ?'

'मेरा विश्वास तो ऐसा ही है।'

सुरेश ज़रा म्लान हँसी हँसकर बोला—'मेरा विश्वास तो ऐसा नहीं है। किताब में पढ़ने को मिला है कि सहमरण के दिनों में कोई कोई सती हँसते-हँसते पति के साथ जल मरती थी, मृणाल भी उसी श्रेणी

की स्त्री है। उसे मुँह से राज़ी कराने की बात तो दूर रही, टुकड़े-टुकड़े करके उसके हाँथ-पाँव काट डालने पर भी उसे शादी के लिये राज़ी नहीं किया जा सकता। इस असाध्य-साधन की कोशिश करके मुझे उसकी नज़रों से गिरा न देना, अचला। वह मुझे भैया कहकर पुकारती है, उसके निकट मैं इस सम्मान को सुरक्षित रखना चाहता हूँ।'

देखते ही देखते अचला का सारा चेहरा क्रोध से लाल हो उठा। सुरेश की बात खत्म होते ही कठिन कोमल स्वर में बोल उठी—'दुनिया में सिर्फ़ मृणाल ही एकमात्र सती नहीं है सुरेशबाबू! ऐसी भी सतियाँ मौजूद हैं जिन्हें एक बार मन ही मन किसी को पति के रूप में वरण कर लेने पर सैकड़ों प्रलोभनों से भी विचलित नहीं किया जा सकता। उन सतियों की बात छपी किताब में पढ़ने को न मिलने पर भी इस बात को आप सच मानियेगा सुरेशबाबू!'—इतना कहकर स्तम्भित एवं अभिभूत सुरेश की ओर दृष्टिपात किये बिना ही यह गर्विता रमणी दृढ़ता के साथ कदम बढ़ाती हुई कमरे से बाहर हो गई।

२५

किसी एक की उच्छ्वसित एवं निष्कपट प्रशंसा में दूसरे का कितना कठोर आघात और अपमान छिपा रह सकता है, शायद वक्ता और श्रोता दोनों में से किसी को क्षणभर पहले इस बात का पता न था। सुरेश हाथ का प्याला हाथ में ही लिये विह्वल होकर बैठा रहा और अचला अपने कमरे में घुसकर चुपचाप द्वार बन्द करके तकिये पर मुँह डाल मर्मान्तिक रुलाई के प्रबल वेग को रोकने की कोशिश करने लगी। बगल में ही महिम का कमरा था, कहीं उसके कान में ज़रा भी शब्द न पहुँच जाये! वस्तुतः अन्तर्यामी के सिवा उस रोने के इतिहास को दूसरा कोई व्यक्ति न जान सका।

किन्तु उसे अपने इस दुख से एक नया तत्त्व प्राप्त हुआ। इस नारी जीवन की सतीत्व कितनी बड़ी सम्पत्ति है, इतने दिनों बाद उसकी पूरी महिमा पहले-पहल आज ही मानो उसकी आँखों के आगे पूर्ण-रूप में प्रगट हुई। उस दिन सुरेश के सम्बन्ध में पिता की सन्दिग्ध दृष्टि को वह अन्याय-उपद्रव समझकर अत्यन्त क्रुद्ध और व्यथित हो गई थी, लेकिन आज अचानक उसी धर्महीन परस्त्री-लोलुप सुरेश को ही सतीत्व के चरण-कमल में इस तरह सिर झुकाकर प्रणाम करते देख उसकी अपनी सच्ची स्थिति उसकी आँखों से छिपी न रह सकी।

एक बात और थी। स्पष्टवादिता की कितनी प्रबल शक्ति है इस तथ्य को भी आज ही पहले-पहल उसने अनुभव किया। वह थी शिक्षिता रमणी! पति के प्रति शारीरिक और मानसिक निष्ठा ही सतीत्व है, इससे वह अविदित थी नहीं। सिर्फ़ देह या सिर्फ़ मन कोई भी अकेले पूर्ण नहीं—इस बात को भी वह अच्छी तरह जानती थी। फिर भी जब उसका हृदय विचलित हो उठा था, वह पति को प्यार नहीं करती—यह बात बोलने में भी जब ज़बान नहीं रुकी, तब भी उसने अपने को तुच्छ नहीं समझा। लेकिन आज जब सुरेश ने अनजाने में उसके नाम के साथ 'असती' शब्द को जोड़ना चाहा, तब उसकी अन्तरात्मा मानों हृदय-विदारक वेदना से पीड़ित होकर आर्त-स्वर में चीत्कार कर रो उठी।

इससे मृणाल के प्रति उसकी श्रद्धा बढ़ गई, सो बात नहीं। लेकिन इस लड़की के सम्बन्ध में उसे जो आज ज्ञान प्राप्त हुआ इसे वह जीवन में कभी भुला न सकेगी—इस बात की वह मन ही मन बारबार प्रतिज्ञा करने लगी!

बाहर पिता की छड़ी की आवाज़ और पीछे सुरेश के पैर के शब्द उसे सुनाई पड़े। वह समझ गई कि वे महिम को देखने जा रहे हैं और थोड़ी देर बाद ही पिता के कण्ठ-स्वर में अपनी पुकार सुनकर आँचल

से आँखें पोंछकर दरवाजा खोल वह महिम के कमरे में उपस्थित हो गई।

केदारबाबू उसके चेहरे की तरफ देखकर बिकल होकर बोल उठे—'आज बात क्या है? दो-बजे सोरवा देने की बात थी, सो चार बज गये! यह क्या, तुम्हारा चेहरा इस तरह भारी क्यों है? सो रही थी क्या?'

अचला उत्तर दिये बगैर ही चल दी। रोगी को सोरवा देने की व्यवस्था होने के बाद से यह काम मृणाल ही करती थी। नौकर सोरबे को चूल्हे पर चढ़ा देता, और वह अन्दाज से ठीक वक्त पर उसे उतार लेती थी। उसके चले जाने पर यह भार अब अचला पर आ पड़ा था। आज उसे इस बात की याद ही न रही। बदहवास होकर वहाँ पहुँची और देखती है—बहुत पहले ही आग बुझ गई है और सारा सोरवा जलकर राख हो गया है।

बहुत देर तक वहीं हक्की-बक्की-सी खड़ी रहने के बाद जब वह लौटी तो केदारबाबू सब जानकर अचला से कुछ न कहकर सिर्फ सुरेश को लक्ष्य करके कठोरता के साथ बोले—'इसीलिये तो तुमसे मैंने कहा था सुरेश, एक होशियार नर्स को रखे बगैर तुम महिम को बचा नहीं सकोगे। मेरी लड़की को क्या मेरी अपेक्षा तुम अधिक जानते हो?'

सुरेश निरुत्तर बैठा रहा। लेकिन महिम अब तक चुपचाप पत्नी के लज्जित एवं उदास चेहरे की ओर एकटक देख रहा था यह किसी ने नहीं देखा। उसने धीरे से कहा—'नर्स के हाथ से मुझे दवा तक खाना नहीं रुचेगा सुरेश, इसलिये मदद के लिये उन्हें एक आदमी दे दो। कल-परसों दोनों दिन उनको सारी रात जागना पड़ा। दिन के वक्त अगर थोड़ा-सा आराम करने की फुर्सत न मिले तो मशीन के आदमी से भी काम नहीं चल सकेगा भाई।'

यह बात अक्षरशः सत्य न होने पर भी बिल्कुल झूठी भी न थी। सुरेश ने खुश होकर मुँह उठाया, लेकिन केदारबाबू अपने कठोर वाक्य से लज्जित होकर कुछ मीठी-सी बात बोलना ही चाहते थे कि अचला कमरे से बाहर निकल गई।

रात में उसे बार-बार इच्छा होने लगी कि वह बीमार पति के निकट अपने सब अपराधों के लिये रो-रोकर एकबार क्षमा की भिक्षा मांगे और उनसे पूछे कि—मुझ जैसी पापिष्ठा—को तिरस्कार से बचाने के लिये आपको क्या पड़ी थी—किन्तु घोर लज्जा के मारे यह प्रश्न उसके मुँह से बाहर न निकल सका।

सुरेश के लिये यह दैनिक कार्यक्रम बन गया था कि वह प्रतिदिन बहुत रात बीते महिम के कमरे में घुसकर आवश्यक वस्तुओं का बन्दोबस्त करके सोने जाया करता। मृणाल के रहने पर वह अक्सर रातभर आया-जाया करता और इसकी जरूरत भी थी, लेकिन इधर कई दिनों से देखा गया कि अब वह यों ही कमरे में नहीं घुसता है। जरूरत पड़ने पर नौकरानी को भेज कर खबर ले लेता, सिर्फ शाम से पहले कुछ देर के लिये एक बार खुद आकर खबर लेता था। उसके इस नूतन आचरण पर सब की अपेक्षा अचला की ही नजर अधिक पड़ी थी, लेकिन इस सम्बन्ध में कोई मन्तव्य प्रगट करना भी उसके लिये सम्भव न था। इसलिये वह चुप रहती मगर जिस दिन महिम ने स्वयं इस बात की चर्चा की तो उसे बोलना ही पड़ा—आजकल वे अक्सर घर पर भी नहीं रहते और इसका कारण भी वह नहीं जानती।—महिम ने चुपचाप सुन लिया, किसी प्रकार का मतामत प्रगट न किया।

दूसरे रोज सबेरे अचला नीचे उतर रही थी और सुरेश भी कोई काम से उसी सीढ़ी से ऊपर चढ़ रहा था; मुख उठा कर अचला को देखते ही एक तरफ हट गया। वह जो सब तरह से उसी से बच-कर चल रहा है, इस बारे में अब उसे तिल मात्र भी सन्देह न रहा

और एक दिन जिस बात की उसने पूरे दिल से कामना की थी, आज उसका वही दिल सुरेश के इस आचरण से व्यथित हो उठा।

२६

अचला का हृदय काम-काज करते, उठते-बैठते हर समय इसी बात को लेकर जलने लगा कि सुरेश के हृदय में एक भारी परिवर्तन हो रहा है. जिसके साथ उसका अपना कोई सम्बन्ध न था। जो उद्दाम प्रेम एक [illegible]मी को आधार बनाकर उत्पन्न हुआ और बढ़ते-बढ़ते इस [illegible]को प्राप्त हुआ, आज वही प्रेम जीर्ण आश्रय की तरह उसको त्याग कर दूसरी ओर यात्रा कर रहा था। वह अपने-आप को हजारों तिरस्कारों एवं कटूक्तियों से लांछित करने लगी, किन्तु फिर भी इस बिदाई की वेदना को अपने मन से किसी भी तरह दूर न कर सकी। यहाँ तक कि बीच-बीच में भयंकर भय से उसका सर्वाङ्ग रोमाञ्चित हो उठता और यह सन्देह उसके हृदय में उठता कि उसने भी अनजाने सुरेश के साथ कभी गुप्त प्रेम किया है या नहीं। बार-बार इस सन्देह को अनुचित और अमूलक कहकर हँसी में उड़ा देने की कोशिश करने लगी; अपना परिहास आप ही करके बोलने लगी—इस असम्भव के सम्भव होने से पहले ही मैं गले में रस्सी डालकर मर जाऊँगी—फिर भी मानो छाया की तरह यह सन्देह उसके पीछे लगा ही रहा, घूमते-फिरते भी मानो उसे यह प्रत्यक्ष दिखायी देने लगा। और शायद इसी भय से अपने को बचाने के लिये ही स्नान-भोजन के कुछ समय को छोड़कर रात-दिन कभी भी पति से अलग होने का उसे साहस न हुआ। बगल का कमरा जो उसके निजी व्यवहार के लिये निर्दिष्ट था, कई दिनों तक उसमें जाने की उसे इच्छा तक न हुई। इसी तरह कुछ दिन बीत गये।

महिम लगभग स्वस्थ हो चुका है। शीघ्र ही जल-वायु परिवर्तन के लिये जब्बलपुर जाने की बात चल रही है। उसदिन सबेरे अचला फर्श पर बैठी एक स्टोव पर पति के लिये दूध गरम कर रही थी। दूध बार-बार उफन रहा था, उसे किसी तरफ़ ताकने की भी फ़ुर्सत न थी, और महिम जो इतनी देर उसी की ओर एकटक देख रहा था, यह उसे मालूम न था—अचानक पति का दीर्घ-निश्वास कान में पड़ते ही उसने मुँह उठाकर सिर्फ़ एक बार देखा और फिर अपने काम में लग गई।

महिम की कभी भी ज्यादा बातें करने की आदत न थी लेकिन आज अचानक एक साँस लेकर बोल उठा—'वास्तव में कि वह ... बिना बड़ा कष्ट उठाये कभी बड़ी वस्तु प्राप्त नहीं की जा सकती। मेरा घर फिर बन जायगा, बीमारी भी एक दिन अच्छी हो जायगी; लेकिन इससे भी बढ़कर अमूल्य वस्तु जो मुझे प्राप्त हुई है वह तुम हो। आजकल मुझे ऐसा लग रहा है कि शायद तुमसे अलग रहकर मैं एक दिन भी न काट सकूँगा।'

अचला चुपचाप गरम दूध कटोरे में डालकर ठंडा करने लगी, उसने कोई जवाब नहीं दिया। महिम कुछ ठहरकर फिर बोला—'मृणाल और सुरेश, इन दोनों ने भी मेरी कम सेवा नहीं की, लेकिन जब कभी होश में आता तभी न जाने क्यों एक बेचैनी सी मालूम होती। केवल मन में यही भाव उठता इन्हें कितना कष्ट हो रहा होगा, कितनी असुविधा हो रही होगी इन्हें—इस जीवन में इनका ऋण किस तरह चुका सकूँगा। लेकिन भगवान के हाथ का जोड़ा हुआ यह सम्बन्ध ऐसा है कि तुम्हारे सम्बन्ध में ऐसा भाव कभी उठता ही नहीं कि इस सेवा का मूल्य मुझे एक दिन चुकाना पड़ेगा ही। मुझे बचा लेना मानो तुम्हारी अपनी ही गरज है।' यह कहकर महिम ज़रा हंसा।

अचला गर्दन झुकाये दूध उड़ेलती रही, कुछ बोली नहीं।

महिम ने कहा—'और कितना ठंडा करोगी, लाओ न !'

फिर भी अचला ने कोई जवाब न दिया, उसी तरह सिर झुकाये बैठी रही। पहले तो महिम कुछ विस्मित-सा हो गया लेकिन दूसरे ही क्षण उसकी समझ में आ गया कि अचला पति के निकट अपने उमड़ते हुये आँसुओं को छिपाने के लिये ही इस तरह एकभाव से सिर झुकाये बैठी है।

सुरेश अब इस कमरे में अधिक क्यों नहीं आता ?'—इसका कारण निश्चित रूप से न समझते हुए भी महिम ने इसका कुछ अनुमान न किया हो, सो बात न थी। बल्कि इससे क्षोभ-मिश्रित एक आनन्द का भाव ही उसके मन में उत्पन्न हुआ। कारण, अचला अब सावधान हो चुकी थी, एकान्त में कहीं सुरेश से उसकी मुलाकात न हो जाय—इसी डर के मारे वह कमरे से अलग किसी और जगह नहीं जाना चाहती, मन-ही मन उसने यह अनुभव किया। इसीलिये आज सारा दिन उसका मन मानो बासन्ती हवा में उड़-उड़कर नाच रहा था। उसकी शय्या से कुछ दूर पर एक चौकी पड़ी थी। उस दिन अधिक रात तक अचला एक किताब पढ़ती रही और बाद में थककर बाकी रात वहीं सो गई थी। दूसरे दिन सबेरे ही महिम के पुकारने पर घबड़ाकर उठ बैठी और खिड़की खोलकर उसने देखा कि काफी दिन चढ़ आया है।

महिम किसी काम के लिये कहना ही चाहता था कि अचानक चुप रह गया, और पत्नी को नख से शिख तक बार-बार निहारकर विस्मित स्वर में पूछा—'तुम्हारा दुशाला कहाँ गया ?

अचला ने उससे भी अधिक विस्मय के साथ अपनी ओर नज़र दौड़ाकर देखा—अभी नींद टूटने पर उसने तड़फड़ जो दुशाला अपनी देह पर रख लिया था वह सुरेश का था। पति के प्रश्न से वह मर सी गई। शर्म और पीड़ा के मारे उसका चेहरा बदरंग पड़ गया, लेकिन ऐसा हुआ कैसे—यह किसी भी तरह न समझ सकी। स्मरण हो

आया—गत रात को जब महिम सो गया तो उसने अपना दुशाला चौपेतकर उसके पाँव को ढँक दिया और खुद आँचल मात्र से शरीर ढककर पढ़ने बैठी थी। नींद में उसे कभी-कभी बहुत जाड़ा मालूम दे रहा था यह भी याद आया, उसके बाद जागने पर यह नज़ारा देखने को मिला।

मगर पत्नी के अत्यन्त लज्जित और उदास चेहरे की ओर देखकर महिम स्नेह और कौतुक के साथ हँसकर बोला—'इसमें शर्माने की क्या बात है अचला? नौकर ही शायद उलट-पुलट करके तुम्हारा उस कमरे में और उसका इस कमरे में रख गया होगा। हो सकता है, सुरेश खुद ही कल शाम को इसे छोड़ गया हो और रात में अनजाने तुमने ओढ़ लिया हो। बेहरा से कहकर बदलवा लो।'

'बदलवा लेती हूँ'—यह कहती हुई उसे हाथ में लेकर बाहर आई और बगल के कमरे में जब जाकर बैठी तो उसे सब कुछ समझते देर न लगी। बहुत रात बीते सब के सो जाने पर सुरेश चुपचाप कमरे में आया था और जाड़े में उसे उस तरह सोया हुआ देखकर अपने शरीर का वस्त्र उतार कर निद्रा-विमग्न उसको प्रेम और यत्न के साथ ढककर चुपचाप वहाँ से चला गया था—इसमें अब उसे रंचमात्र भी संदेह न रहा। आँखें बन्द करने पर मानो उसी आनत एवं सतृष्ण नेत्रों को स्पष्टतया देखकर उसके रोंगटे खड़े हो गये। उसके मन में ऐसा होने लगा कि वह सिर्फ़ उसी को देखने के लिये और इस ढंग से अच्छी तरह देखने के लिये ही इस प्रकार आया था, और हो सकता है हर रात आता हो जिसे कोई जान न सकता था।

इस कुत्सित आचरण से उसकी लज्जा की सीमा न रही और इसको कुत्सित, निन्दित और असभ्य कहकर हजारों तरह से अपमानित करने लगी। अतिथि के प्रति गृह-स्वामी की इस चौर्य-वृत्ति को वह कभी क्षमा न करेगी—इस तरह की प्रतिज्ञा बारंबार करने लगी। लेकिन फिर भी उसका सारा मन इस अभियोग में किसी तरह की शह नहीं दे

रहा था यह भी उससे छिपा न रहा, और किस जगह कौन-सी चीज इतने दिनों से उठते-बैठते उसे चुभ रही थी वह उसके सामने एकाएक स्पष्ट होकर दिखाई देने लगी।

केदारबाबू के एक बाल-सखा जब्बलपुर में रहते थे। उनके यहाँ से जवाब आया—जल-वायु और प्राकृतिक दृश्य के लिहाज से यह स्थान अत्यन्त उत्तम है। उनका अपना मकान भी काफी बड़ा है; इसलिये अगर महिम को आना ही हो तो वह आराम से उन्हीं के पास रह सकता है।

एक रोज सबेरे आकर केदारबाबू ने यह खबर सुनाई। जब माघ का महीना खत्म होने को ही है और रास्ते का थोड़ा-बहुत कष्ट भी महिम बर्दाश्त कर सकता है तो अब अधिक देर न करके यात्रा करना ही ठीक होगा। युवावस्था में वे एक बार खुद जब्बलपुर गये थे, वही स्मृति उनके हृत्पटल पर विद्यमान थी। बड़े उल्लास के साथ उसका वर्णन करते हुए बोले—'जगदीश की धर्मपत्नी अब भी जीवित हैं, वे माँ की तरह महिम को यत्न से रखेंगी, और चाहिये क्या, इसी उपलक्ष्य में मेरा भी एकबार और देश-भ्रमण हो जायगा।' महिम चुपचाप यह सब सुनता रहा, उत्साह बिल्कुल नहीं दिखाया। इस आग्रह-हीनता को सिर्फ अचला ने ही लक्ष्य किया। पिता के चले जाने पर उसने धीरे से पूछा—'क्यों, जब्बलपुर तो बहुत अच्छी जगह है, क्या तुम्हारी जाने की इच्छा नहीं है?'

महिम ने कहा—'तुम सभी मुझे जितना स्वस्थ और सबल समझ रहे हो उतना मैं अब भी नहीं हूँ। किसी दिन हो भी सकूँगा या नहीं, इसकी भी मुझे आशा नहीं।'

अचला बोली—'इसीलिये तो डाक्टर ने तुम्हारे जल-वायु-परिवर्तन की सलाह दी है। एक बार घूम आने से सब रोग-व्याधि दूर हो जायगी।'

महिम धीरे धीरे गर्दन हिलाकर क्षणभर चुप रहा, बाद में बोला—'क्या पता। मगर, इस हालत में मुझे अपने या किसी और पर निर्भर रहकर स्वर्ग जाने की इच्छा नहीं हो रही है! अचला, भीतर-ही-भीतर

मैं बहुत कमजोर हूँ, बहुत अस्वस्थ हूँ। अगर तुम मेरे पास न रहोगी, तो मैं अधिक दिन जी भी न सकूँगा।'—यह कहते-कहते उसका गला भर आया।

जिन्होंने मुँह खोलकर कभी किसी वस्तु की चाह न की, जिसने अपनी कष्ट-गाथा कभी किसी के आगे नहीं सुनाई, उसी के मुँह से यह आकुल-भिक्षा ने ठीक मानो शूल की तरह चोट करके अचला के हृदय में जितनी स्नेह, जितनी करुणा, जितनी माधुर्य की माया इतने दिनों तक रुकी हुई थी, वह सब की सब एक साथ ही एक क्षण में खोल दी। वह अपने को अब अधिक देर तक सम्हाल न सकने पर कहीं कुछ असम्भव न कर बैठे—इस डर से उमड़ते हुए आँसुओं को रोकती हुई एकबारगी ही द्रुत वेग से कमरे से बाहर निकल गयी। महिम हत-बुद्धि की तरह विस्मय और व्यथा से उस खुले हुए दरवाजे की तरफ़ बहुत देर तक टकटकी लगाकर देखता हुआ फिर सो गया।

फिर जब दोनों में मुलाकात हुई, उस वक्त पति और पत्नी दोनों में से किसी ने भी इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा। दूसरे रोज़ अचला एक तार हाथ में लिये हुए मुस्कुराती हुई बोली—'जगदीश बाबू ने तार का जवाब दे दिया है। उन्होंने अपने मकान के नजदीक ही हम लोगों के लिये एक छोटा-सा मकान ठीक कर दिया है।'

महिम अच्छी तरह न समझ सकने के कारण बोला—'इसका मतलब ?'

अचला बोली—'पिताजी के मित्र होने के नाते वह तुम्हें अपने ही घर में ठहरा सकते थे। लेकिन दो-दो आदमियों का भार तो उनके कन्धे पर डालना ठीक नहीं! इसीलिये कल ही एक घर ठीक कर देने के निमित्त एक तार देने के लिये पिताजी को चिट्ठी लिख दी थी। यह उसी का जवाब है।'—यह कहती हुई उसने तार के लिफाफे को पति के बिछौने पर रख दिया।

महिम ने उसे हाथ में लेकर शुरू से आखीर तक पढ़ के सिर्फ इतना कहा—'अच्छा।' अचला अपनी इच्छा से ही साथ जाना चाहती है—यह भी उसे मालूम हुआ। मगर, उसका कल का आचरण उसके लिये उसी तरह दुर्बोध उसी तरह दुर्ज्ञेय बना रहा। उसीको स्मरण करके किसी प्रकार की अनुचित चञ्चलता प्रगट करने की उसकी इच्छा न हुई।

किन्तु अचला की ओर से यात्रा की तैयारी पूरी मात्रा में होने लगी। उस दिन दोपहर के समय वह इस घर में आकर अपना सर-सामान ठीक कर रही थी, कि केदार बाबू दरवाज़े के बाहर से ही कुछ देर चुपचाप देख-भाल करने के बाद बोले—'तुम्हारे न जाने से क्या काम नहीं चलेगा बेटी?'

अचला चौंक उठी और मुँह फिराकर पूछ बैठी—'सो क्यों पिताजी?'

स्वास्थ्य और चिकित्सा की दृष्टि से उसका साथ रहना ठीक नहीं, पिता होकर यह बात कन्या से कहने में केदार बाबू को शर्म मालूम हुई। इसीलिये उन्होंने महिम की आर्थिक स्थिति का इशारा करके कहा—'अधिक दिन की बात तो है नहीं। इसके अलावा, जगदीश के यहाँ महिम को किसी तरह की असुविधा भी न होती। इस थोड़े से समय के लिये इतना खर्च करना—'

असल बात अचला को समझ में आयी नहीं उसने पिता के मुँह की ओर नजरकर पूछा—'शायद उन्होंने आपसे कहा होगा?'

'नहीं, नहीं, महिम ने कुछ नहीं कहा, सिर्फ मैं ही सोच रहा हूँ कि—'

तुम कुछ सोच मत करो पिताजी, मैं सब ठीक कर लूँगी'—इतना कहकर अचला फिर अपने काम में मशगूल हो गयी और दूसरे ही दिन उसने चोरी-चोरी अपने दो गहने बेचकर नगद रुपये इकट्ठे कर लिये।

फाल्गुन के मध्य में यात्रा करने का विचार था, लेकिन सुरेश की बुआजी ने पुरोहित को बुलवाकर पञ्चाङ्ग के द्वारा महीने के प्रथम सप्ताह में ही दिन स्थिर करवा दिया। वही बात सबको माननी पड़ी।

जाने के दो दिन पहले से ही अचला का सारा प्राण मानो हवा में उड़-उड़कर नाचने लगा। इस कलकत्ते को छोड़कर कुछ दिन अपने पति-गृह में बास करने के अतिरिक्त कभी वह जिन्दगी में दूसरी जगह गयी नहीं थी, आज तक उसने पश्चिम का मुँह नहीं देखा था। वहाँ कितने पुराने यादगार, कितने बन-जंगल, कितने पहाड़-पर्वत, कितनी नद-नदियाँ, झरने, और न जाने क्या-क्या हैं जिनकी कथाएँ लोगों के मुँह से सुनने के सिवा उन्हें अपने आँखों से देखने की कभी उसके दिल में कल्पना तक न हुई थी। अब उन सब आश्चर्यजनक वस्तुओं को खुद अपनी आँखों वह देखने चली है। इसके अलावा वहाँ उसके पति का बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य सुधर जायगा, वहाँ वह अकेली ही घरनी और मालकिन होगी और सब काम में अपने पति की सहायिका बनेगी। वहाँ की जलवायु स्वास्थ्यजनक है; वहाँ की जीवन-यात्रा का मार्ग सरल और सुगम है; उनके अच्छे हो जाने पर हो सकता है एक दिन वहीं अपनी घर-गृहस्थी जमा बैठेंगे और निकट भविष्य में ही अपरिचित अतिथिगण एक-एककर आयेंगे और इस तरह उसके घर में रौनक ला देंगे—उनके कोमल चेहरे अत्यन्त परिचित की तरह मानो वह अपनी आँखों के आगे स्पष्ट देखने लगी। इस तरह के न जाने कितने सुख-सपने दिन-रात उसके दिमाग में चक्कर लगाने लगे, जिनकी कोई सीमा नहीं। और सब बातों से बढ़कर पति ने जो कहा था, कि वह उसे छोड़कर स्वर्ग भी जाना नहीं चाहता—इस बात ने उसकी सारी चिन्ता को एकबारगी ही अमृतमय बना दिया। अब उसे किसी के विरुद्ध कोई क्षोभ या शिकायत न रही। भीतर की सारी ग्लानि धुल-पुछकर उसका हृदय गङ्गाजल की तरह निर्मल और पवित्र हो उठा। आज उसके दिल में यही ख्वाहिश होने लगी, कि जाने के पहले

एकबार मृणाल को देखें और उसे छाती से लगाकर जाने-अनजाने सभी अपराधों की माफी उससे माँग लें। आज सुरेश के लिये भी उसका जी रोने लगा। वह इतना बड़ा मित्र होकर भी शर्म और संकोच के मारे उनसे मुलाकात नहीं करता—अपने दुर्भाग्य की छिपी वेदना को जितना उसने आज अनुभव किया, उतना शायद और किसी दिन भी न किया होगा। सुरेश के निकट भी वह सर्वान्तःकरण से क्षमा माँगकर विदा लेगी। लेकिन पता लेने पर मालूम हुआ कि वह कल से ही घर पर नहीं था।

जाने के दिन सबेरे से ही रिम-झिम बूँदी पड़नी शुरू हो गई थी। सारा सर-सामान बाँध-बूँधकर तैयार कर लिया गया था, कुछ स्टेशन पर भी भेजा जा चुका था और टिकट तक खरीदा जा चुका था। अचला के लिये भी सेकण्ड-क्लास का ही टिकट खरीदने का प्रस्ताव किया गया था, लेकिन उसने भारी ऐतराज करते हुए महिम से कह दिया था—'अगर व्यर्थ में ही रुपये बरबाद करना हो, तो खरीद लो। मैं स्वस्थ और सबल हूँ, इसके अलावा, बहुत बड़े-बड़े घर की औरतें इन्टर क्लास में सफर करती हैं, और मैं न कर सकूँगी! मैं ड्योढ़ा किराये से अधिक देकर किसी भी तरह न जा सकूँगी।'

इसलिये इन्तजाम भी इसी तरह का किया गया था।

दो दिन से सुरेश बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ा। लेकिन, आज सबेरे ही दुर्भाग्य से हो या अन्य किसी कारण से हो, वह अपने पढ़ने के कमरे में मौजूद था। इस आनन्दहीन कमरे में अचला ठीक मानो बसन्ती हवा के समान जा घुसी। उसका कण्ठ-स्वर आनन्द के अतिशय से उतरा रहा था; वह बोली—'सुरेश बाबू, इस जन्म में आप हम लोगों का मुँह नहीं देखेंगे क्या? इतना बड़ा मैंने कौन-सा अपराध किया है, बताइये तो?'

सुरेश चिट्ठी लिख रहा था, मुँह उठाकर देखा। अपने घर जल जाने पर आस-पास के वृक्षों की जो हालत अचला ने आने के दिन

देखा था सुरेश का आज का चेहरा देखकर उसे उसी की याद आने से मन-ही-मन वह सिहर उठी। बसन्ती हवा रफ़्फू हो गई—वह क्या कहने आयी थी सो सब कुछ भूल गई, उद्विग्न-स्वर में उसने पूछा—'क्या तुम्हारी तबियत खराब है, सुरेश बाबू! मुझे तो यह बताया नहीं।'

सिर्फ़ पल भर के लिये सुरेश ने सिर उठाया था। उसी वक्त नीचा करके बोला—'नहीं, मुझे कोई बीमारी नहीं है, मैं अच्छा ही हूँ'—इतना कहकर किताब के पन्ने उलटते-उलटते फिर बोला—'आज ही तो तुम लोग जाओगे—क्या सब कुछ ठीक हो गया है न! न जाने फिर कब भेंट होगी।'

मगर एक मिनट तक दूसरी ओर से कोई जवाब न पाकर सुरेश ने विस्मय के साथ मुँह उठाकर देखा—अचला की आँखों में आँसू उमड़ आये थे, चार-आँखें होते ही झरझरकर आँसू गिरने लगे।

सुरेश की नसों का उष्ण रक्त-स्रोत उन्मत्त हो उठा, लेकिन आज उसने सारी शक्ति बटोरकर अपने को सम्हालते हुए आँखें नीची कर लीं।

अचला आँचल से आँसू पोंछकर गम्भीर स्वर में बोल उठी—'तुम्हारी तबियत भी ठीक नहीं है, सुरेश बाबू, तुम भी हमारे साथ चलो।'

सुरेश ने सिर हिलाकर सिर्फ़ इतना कहा—'नहीं।'

'नहीं क्यों? तुम्हारे लिये—' बात खत्म भी न होने पाई थी कि बाहर से बेहरा ने आवाज़ देकर कहा—'बाबू, आपकी चाय'—कहते-कहते वह पर्दा हटाकर कमरे में घुसा और दूसरे ही क्षण अचला दूसरी तरफ़ मुँह फेरकर बाहर निकल गई।

घण्टे भर बाद वह अपने स्वामी के कमरे में घुसी, महिम ने पूछा—'सुरेश कई दिनों से कहाँ गया है, जानती हो? बुआजी से कुछ कहकर नहीं गया है, वह आज मुझसे मिलेगा नहीं क्या?'

अचला आहिस्ते ही से बोली—'आज तो वे घर पर ही हैं।'

महिम ने कहा—'नहीं। अभी-अभी नौकरानी मुझसे बोली कि वह सबेरे ही कहीं बाहर निकल गया है।'

अचला चुप रह गई। क्षणभर पहले ही जो उससे मुलाकात हुई थी, वह जो बहुत बीमार है, उसने जो बचपन की तरह इस बार भी तुम्हें बचाया है—सिर्फ़ कृतज्ञता के नाते भी एक बार उसे बुलाना हमारा फ़र्ज़ है—अब उससे कोई भय नहीं—लज्जा को सन्देह की दृष्टि से देखकर और भी लज्जित मत करो—आज वह अपने दिल की इन बातों को जबान पर न ला सकी। पति के मुँह की तरफ़ अच्छी तरह देखने का भी उसे साहस न हुआ। चुपचाप बिना जवाब दिये ही अपने हाथ के किसी काम में लग गई।

धीरे-धीरे स्टेशन जाने का समय करीब आ गया। नीचे केदार बाबू की पुकार सुनाई पड़ी और बुआजी मंगल-कलश आदि जुटाने में लग गईं। नौकरों ने सारा सामान-असबाब गाड़ी पर लाद दिया, सिर्फ़ घर के मालिक का कोई पता नहीं था। और इस बात को लेकर प्रगट रूप में आलोचना करने का साहस भी किसी को न हुआ। यह सारा व्यापार भीतर ही भीतर सबको कुण्ठित सा कर रहा था।

केदार बाबू कन्या को कुछ निराले में पाकर उसके सिर पर हाथ फेरते हुए स्नेह-सने कंठ से बोले—'सती-लक्ष्मी बनो बेटी, अपनी माँ की तरह बनो। बुढ़ापे में अनजाने बहुत-सा बुरा-भला बक गया हूँ बेटी, रुष्ट मत होना।'—इतना कहकर तड़फड़ वहाँ से सरक गये।

गाड़ी पर सवार होते वक्त महिम रुँधे हुए स्वर में अचला से धीरे से बोला—'उसने सचमुच हम लोगों से मुलाकात नहीं की। एक बात कहने के लिये दो दिन से उसकी राह देख रहा था।'

पिता की बात से उसकी आँखों से आँसू गिर रहे थे, उसने सिर्फ़ गर्दन हिलाकर जताया—'नहीं।'

दरवाज़े के पीछे बुआजी खड़ी थीं। अचला ने प्रगाढ़ भक्ति-भाव से उन्हें प्रणाम करके उनका चरण-रज माथे लगाया; वे गद्‌गद् कंठ

से असंख्य आशीर्वाद देती हुई बोलीं—'तुम्हारा सोहाग अचल रहे बिटिया, पति को नीरोग बनाकर जल्द लौटा लाओ, ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है।'

'यही मेरे लिये सबसे बढ़कर आशीर्वाद है बुआजी!'—इतना कहकर आँसू पोंछते-पोंछते गाड़ी में जा बैठी। यह बात केदार बाबू के कान में भी पड़ी। वे अपनी अक्षम्य लज्जा से मानो गड़ से गये।

२७

हवड़ा स्टेशन से पछाँह की गाड़ी छूटने में दस मिनट की और देर है। आकाश बादलों से घिरा है, रिम-झिम अविराम वर्षा हो रही है। लोगों के पैर की कीचड़ से सारा प्लेटफ़ार्म भर गया है—मुसाफिर फिसलने से बचते हुए भीड़ को ठेल-ठालकर सामान लिये जगह की तलाश में घूम रहे हैं—इसी वक्त अचला ने देखा—एक बहुत बड़ा बेग हाथ में लिये सुरेश आ रहा है।

विस्मय और दुश्चिन्ता से केदार बाबू के आँखों के आगे अँधेरा छा गया। उसके नजदीक पहुँचने से पहले ही वे चिल्लाकर पूछ बैठे—'बात क्या है सुरेश? तुम किधर चले?'

जवाब सुरेश ने अचला को दिया। उसी के मुँह की ओर देखता हुआ सूखी हँसी-हँसकर बोला—'नः देखा कि तुम्हारे उपदेश और निमंत्रण की उपेक्षा नहीं की जा सकती। आज सबेरे ही अगर तुमने इस तरह आँखों में अँगुली डालकर दिखा न दी होती, तो मैं खुद जान न पाता, कि मेरा स्वास्थ्य कितना गिर गया है। चलो, तुम्हारा मेहमान बनकर कुछ दिन काट आऊँ, देखूँ तन्दुरुस्ती सुधरती है या नहीं। मैं वास्तव में कह रहा हूँ—'

'ठीक तो है, ठीक तो है सुरेश! इसके अलावा नई जगह में हम लोगों को भी काफ़ी मदद मिलेगी।'—इतना कहकर पल भर के लिये

महिम ने अचला की ओर दृष्टिपात किया। उसी क्षण उस निःशब्द एवं व्यथित दृष्टि ने मानो सबको सुना-सुनाकर अचला से कहा—'मुझसे बताया क्यों नहीं ? जिसके स्वास्थ्य के लिये मन-ही-मन इतनी उत्कंठित थी, आज सबेरे तुम दोनों ने जो आपस में बातें की हैं, मुझे उसके बारे में रत्ती भर भी बताया क्यों नहीं ? इस लुका-छिपी की ज़रूरत क्या थी अचला ?'

मगर अचला ने दूसरी तरफ़ मुँह फिरा लिया, और सुरेश क्षण भर किंकर्तव्य-विमूढ़ की तरह खड़े रहने के बाद अकस्मात् आन्तरिक उत्तेजना को बाहर ठेलते हुए योंही विकल होकर बोल उठा—'लेकिन अब तो समय है नहीं। चलो, चलो, गाड़ी में बैठकर और बातें की जायेंगी। आइये केदार बाबू'—इतना कहकर वह सिर्फ़ नाक की सीध में देखता हुआ मानो सबको ठेलकर आगे बढ़ा।

बहुत देर तक केदार बाबू के मुँह से कोई बात न निकली। महिम को उसकी जगह पर बिठाकर अचला को जनाना डब्बे में छोड़ आये। सिर्फ़ जब गाड़ी छूटने के समय सुरेश नीचे उतरकर उन्हें नमस्कार करके महिम के बगल में जा बैठा, तभी वे उससे बोले—'तुम भी साथ जा रहे हो, आशा है रास्ते में कोई तकलीफ न होगी। जनाना डब्बा जरा दूर पड़ गया है, बीच-बीच में खबर लेते रहना सुरेश।' और महिम को एक बार फिर होशियार करते हुए बोले—'पहुँचते ही खबर देना, भूलना मत—याद रखो। मैं अत्यन्त चिन्तित रहूँगा'—कहकर उमड़ते हुए आँसुओं को दबाकर चल पड़े। उनका चिन्तित एवं मलिन मुख तथा स्नेह-सना स्वर बहुत देर तक दोनों मित्रों के कानों में गुंजित होने लगा।

गाड़ी छूटने पर सर्दी लगने के भय से महिम कंबल से मुँह ढककर सो रहा, लेकिन सुरेश उसी जगह ज्यों का त्यों बैठा रहा। उसके चेहरे की ओर देखने वाला वहाँ और कोई नहीं था, रहने पर कोई भी कह सकता था कि उसकी आँखें आज किसी भी तरह स्वाभाविक

न थीं। दिल के अन्दर ज़रूर कुछ ऐसी आग है जो बाहर आँखों में इतनी चमक ज़ाहिर कर रही है।

धीमी-पैसेंजर गाड़ी छोटे-बड़े सभी स्टेशनों पर खड़ी होती हुई मन्दगति से आगे बढ़ती जा रही थी और बाहर बूँदी लगातार पड़ रही थी। एक बड़े स्टेशन पर गाड़ी खड़ी होने ही जा रही थी कि महिम कम्बल के भीतर से मुँह निकालकर बोला—'भीड़ तो है नहीं, ज़रा सो क्यों नहीं लेते सुरेश! इस तरह की सुविधा तो बार-बार मिलेगी नहीं?

सुरेश ने चौंककर कहा—'हाँ, अभी सोता हूँ।'

उसका चौंकना इतना असंगत और अकारण प्रतीत हुआ, कि महिम विस्मय से दंग रह गया। मानो वह उससे छिपाकर कोई अपराध कर रहा था और पकड़े जाने पर इस तरह डर गया था, इस भाव को महिम अपने दिल से बहुत देर तक दूर न कर सका।

गाड़ी आकर खड़ी हो गयी।

सुरेश अपनी हालत महसूस करके चेहरे पर ज़रा मुस्कुराहट लिये बोला—'मैं सोचता था कि तुम सो रहे हो, इसीलिये इस तरह चौंक उठा—'

महिम ने सिर्फ कहा—'हुँ', मगर उसे यह अनावश्यक कैफियत भी अच्छी न लगी।

सुरेश बोला—'उन्हें कुछ चाहिये या नहीं—इसकी एकबार खबर तो लेनी चाहिये—'

'लेकिन पानी जो बरस रहा है।'

'इतना तो नहीं बरस रहा है, मैं अभी झटपट देखे आता हूँ'—कहता हुआ सुरेश दरवाजा खोलकर बाहर हो गया। उसने जनानी गाड़ी के आगे आकर देखा—अचला को इसी बीच एक हमउम्र साथिन मिल गई है, और वह उसी के साथ बातें करने में मशगूल है। सुरेश पर पहले उसी साथिन की नज़र पड़ी, वह अचला को

इशाराकर खुद मुँह फेर कर बैठ गई। अचला के देखते ही सुरेश ने पूछा—'कुछ चाहिये ?' अचला ने गर्दन हिलाकर कहा—'नहीं ! तुम्हें पानी में भीगने की कोई ज़रूरत नहीं, जाओ।'—इतना कहकर खुद खिड़की के सामने आयी और मीठे स्वर में बोली—'मेरे लिये तुम्हें कोई फिक्र न करनी पड़ेगी, किन्तु जिनकी फिक्र होनी चाहिये, उन पर ज़रा नज़र रखना।

सुरेश बोला—'सो सब ठीक है; मगर तुम्हारे कुछ खाने के लिये या थोड़ा जलपान—'

अचला मुस्कुराती हुई बोली—'नहीं भाई नहीं, मुझे कुछ न चाहिये। लेकिन तुम खुद पानी में भींगकर क्यों बीमार पड़ना चाहते हो !'

सुरेश पलकमात्र में अचला के मुँह की ओर देखकर नीची निगाह किये बोला—'कितने दिनों से तो यही मना रहा हूँ, मगर अभागों के निकट बीमारी फटकना भी नहीं चाहती !'

यह बात सुनकर अचला का कर्णमूल पर्यन्त लाल हो उठा, लेकिन पीछे सुरेश मुँह उठाकर उसे कहीं देख न ले इस डर से किसी तरह इसे हँसी में परिणत करने की कोशिश करती हुई जबरन हँसकर बोली—'अच्छा, अब की चलो तो इतनी मेहनत लूँगी कि—'

मगर बात पूरी भी न होने पाई थी, कि उसकी अदृश्य लज्जा ने इस छद्म रहस्य के बाहरी प्रकाश को मानो बीच रास्ते में ही धिक्कार कर रोक दिया।

गाड़ी छूटने का घन्टा बजा। सुरेश कुछ बोलने के लिये सिर उठाकर भी अन्त में ग़ैर कुछ बोले ही लौट रहा था, कि अचानक बाधा पा मुड़कर देखा—उसके दुशाले की एक छोर अचला के मुट्ठी में है। उसने धीमी आवाज में ताना दिया—'तुम्हें जो मैंने साथ चलने को कहा था, यह बात तुमने सबके सामने क्यों जाहिर की ? क्यों मुझे इस तरह शर्मिन्दा किया ?'

ठीक इसी बात को बार-बार सोच करके सुरेश अफसोस कर रहा था, इसीलिये प्रत्युत्तर में सिर्फ़ करुणाजनक स्वर में बोला—'मैंने बिना समझे अपराध किया है अचला !'

अचला को इससे रंचमात्र भी शान्ति न मिली, उसने उसी तरह उत्तप्त स्वर में जवाब दिया—'नहीं, जान-बूझकर ! सिर्फ़ सबके सामने मेरा सिर नीचा करने के लिये ही तुमने कहा है।'

गाड़ी छूटी। सुरेश को और कुछ कहने का मौका नहीं मिला। अचला ने ज्योंही उसका वस्त्र छोड़ा, वह तेज़ी से धड़कते सीने से रवाना हुआ। वह बगैर किसी तरफ़ देखे तेज़ी से जा तो रहा था, लेकिन उसकी ओर दृष्टि अनुसरण करते-करते एक दूसरे व्यक्ति की दिल की धड़कन एकबारगी ही रुक जाने का उपक्रम करने लगी। अचला की नज़र पड़ गई—एक दूसरी खिड़की से मुँह निकाले महिम ठीक उन्हीं दोनों की ओर देख रहा था। जब वह अपनी जगह आकर बैठ गई, तो दूसरी युवती ने पूछा—'मालूम पड़ता है ये ही आपके बाबू हैं ?'

अचला अन्यमनस्क भाव से सिर्फ़ ज़रा 'हुँ' करके एक खिड़की के बाहर पेड़-पत्ती, खेत-मैदान की ओर शून्य दृष्टि से देखती रही। जिस बात को खत्म किये बगैर ही वह सुरेश के निकट गई थी, लौटकर फिर उसे पूरा करने की उसे बिल्कुल इच्छा न हुई।

फिर गाँव के बाद गाँव, शहर के बाद शहर पार होने लगे, फिर उसके मन का क्षोभ दूर होकर मुख निर्मल और प्रशान्त हो उठा, फिर अपनी साथिन के साथ स्वच्छन्दता से बातचीत करने लगी। जिस लज्जा ने कुछ घंटे पहले उसे दुखी बना दिया था, अब उसकी उसे याद भी न रही।

एक बड़े स्टेशन पर सुरेश खानसामे के हाथ चाय और दूसरी खाने की चीज़ें लेकर आ पहुँचा। अचला उन चीज़ों को लेकर प्रेम-

पूर्ण उलाहना भरे स्वर में बोली—'इतना हंगामा करने को तुमसे कहा किसने ? शायद तुम्हारे मित्र-रत्न ने कहा होगा ?'

इन बातों में सुरेश किसी के कहने-सुनने का इन्तजार नहीं करता—अचला इसे अच्छी तरह जानती थी, फिर भी इस अयाचित खातिरदारी के बदले में वह थोड़ा प्रेमपूर्ण ताना दिये बगैर न रह सकी।

सुरेश मन्द-मन्द मुस्काता हुआ जा ही रहा था कि अचला ने उसे पीछे से पुकारा। उस मन्द मुस्कान की आभा अब भी उसके होठों पर विराज रही थी। उस पर दृष्टि पड़ते ही अचला अचानक मुस्करा दी, लेकिन लज्जा से कुण्ठित होकर लाल हो उठी। इस लाली को सुरेश ने दोनों आँखों से मानो जी भरकर पी लिया।

अचला ने पति की खबर जानने के लिये ही सुरेश को पुकारा था। उन्हें किसी बात की तकलीफ या असुविधा तो नहीं, या किसी वस्तु की आवश्यकता तो नहीं है—एक बार खुद आ सकते हैं या नहीं—इन सारी बातों को एक-एककर वह जान लेना चाहती थी; मगर इसके बाद इस सम्बन्ध में कुछ पूछने की उसमें शक्ति ही न रह गई। उसने असंगत गम्भीरता के साथ सिर्फ पूछा—'हम लोगों को इलाहाबाद में गाड़ी तो बदलनी पड़ेगी ? वहाँ कितनी रात बीते गाड़ी पहुँचेगी जानते हैं ? एक बार पता लगाकर मुझे खबर देंगे ?'

'अच्छा'—कहकर सुरेश कुछ आश्चर्यान्वित होकर वहाँ से चला गया।

मुड़कर आने पर अचला ने देखा—वह युवती अपनी जगह छोड़कर जरा दूर जाकर बैठ गई है। अचला अपनी आन्तरिक विरक्ति छिपा न सकने के कारण बोल उठी—'आपके घर में शायद चाय-रोटी नहीं खाते क्या ?'

युवती विनयपूर्वक हँसकर बोली—'हाय, हाय इस उपद्रव से कौन-सा घर छुटा होगा ! इसे तो सभी पीते हैं !'

अचला बोली—'तो फिर इतनी नफरत से दूर क्यों खिसक गईं ?'

युवती लज्जित-स्वर में बोली—'ना भाई, नफरत नहीं—मर्द तो सभी पीते हैं पर मेरे ससुर यह सब पसन्द नहीं करते, और हम औरतों के लिये तो—'

एक दिन इसी खाने-पीने की बात लेकर मृणाल के साथ उसका बिलगाव हो गया था। उस दिन भी जिस कारण से वह अपने को न सम्हाल सकी, आज भी उसी तरह एक भीतरी जलन से वह अपने आपको भूल-सी गयी और उस युवती की बात बिना खत्म हुए ही रूखे स्वर में बोल उठी—'आपको मैं तकलीफ देना नहीं चाहती, आप बेखटके आकर अपनी जगह पर बैठें।'—इतना कहकर पलक मारते ही चाय और खाने की सारी सामग्री उसने खिड़की से बाहर फेंक दी। वह युवती बहुत देर तक चुपचाप ताकती हुई काठ की तरह बैठी रही, इसके बाद एकाएक मुँह को बिल्कुल फिराकर आँचल से आँसू पोंछने लगी। शायद उसने यही सोचा, कि इतनी देर के प्रेमालाप और बातचीत के बाद भी जिसने रत्तीभर भी उसकी मर्यादा न रखी, न जाने वह इन आँसुओं को देखकर क्या कर बैठे।

कुछ क्षण के लिये वर्षा थम जाने पर भी आकाश में उत्तरोत्तर घने बादल इकट्ठा होने लगे। तीसरे पहर फिर ज़ोर का पानी गिरने लगा। इसी पानी में वह युवती उतर जायगी, वह उतरने की तैयारी भी करने लगी।

अचला अब और स्थिर न रह सकने के कारण एकदम उसके निकट जा बैठी। उसके हाथ को अपने हाथ में खींचकर स्नेह-सने स्वर में बोली—'मैं अपनी हरकत पर बहुत शर्मिन्दा हूँ। मुझे माफ करें।'

युवती हँसी, लेकिन सहसा उत्तर न दे सकी। अचला फिर बोली—'मन खराब रहने पर न जाने क्या कर बैठती हूँ। पति बीमार हैं, उनको लेकर हवा-पानी बदलने जा रही हूँ—अच्छे हो जायँ तो

ठीक नहीं तो इस परदेस में क्या होगा सो भगवान ही जानें।'—कहते-कहते उसका गला भर आया।

युवती विस्मित होकर बोली—'मगर आपके पति देखने में बीमार तो नहीं मालूम पड़ते।'

अचला बोली—'मेरे पति इसी गाड़ी में हैं, लेकिन आपने उन्हें देखा ही नहीं, वे मेरे पति के मित्र हैं।

युवती अत्यन्त आश्चर्य से चुप रह गयी।

'ये मित्र महाशय उसके पति तो नहीं हैं—पूछने पर जो उसने 'हुँ' कर दी थी, वह बात अचला को याद भी न थी, लेकिन वह युवती उसे भूली न थी। मगर उसके आश्चर्य का अचला ने कुछ दूसरा ही अर्थ लगाया। सुरेश के साथ अपने आचरण और वार्तालाप को अपनी आन्तरिक ज्वाला से विकृत कर के इस हिन्दू नारी की आँखों में वह कैसी भद्दी जची होगी।—इसकी कल्पना करके लज्जा के मारे वह मरी जा रही थी और बिलकुल निरर्थक और भद्दा जवाब देने के लिये बोल उठी—'हम हिन्दू नहीं—ब्रह्मसमाजी हैं।'

उस युवती को फिर भी चुप देखकर अचला ने संकोच से उसका हाथ छोड़ दिया और बोली—'हमारे आचार-व्यवहार को आप अच्छी तरह ग़ौर जाने-समझे हमें अद्भुत न समझ बैठें!'

इसबार युवती हँसी और बोली—'हम तो ऐसा समझती नहीं, बल्कि आप ही लोग—चाहे जिस कारण से भी हो—हम सबों से दूर रहना चाहती हैं। मैंने यह जाना कैसे? हमारे दो-एक रिश्तेदार हैं, जो आपके ही समाज के हैं। उनके नजदीक रहकर ही मैं यह सब जान गई हूँ'—इतना कहकर हँसने लगी।

अचला ने पूछा—'सो कौन-सा कारण है?'

युवती ने कहा—'सो आप जरूर जानती होंगी। अगर न जानती हों तो समाज के किसी आदमी से पूछ लीजियेगा।'—कहते-कहते हँसकर

इस प्रसंग को दबाती हुई फिर बोली—'अच्छा इतनी दूर न जाकर अपने पति के साथ हमारे घर पर ही न ठहर जाइये।'

'कहाँ, आरा में ?'

'अरी मैया, वहाँ क्या कोई आदमी रहता है ! मेरे पति वहाँ ठेकेदारी का काम करते हैं, इसीलिये मुझे कभी-कभी आरा जाकर रहना पड़ता है। मैं डोहरी की बात कह रही हूँ। सोन नदी के तट पर हमारा छोटा-सा मकान है, वहाँ दो-दिन ठहरने पर आपके पति अच्छे हो जायेंगे। चलेंगी वहाँ ?'—इतना कहकर उस युवती ने अचला के हाथ को अपने हाथ में खींचकर उत्तर की आशा में उसके मुँह की ओर देखती रही।

इस अपरिचिता की उत्सुकता और आन्तरिक आग्रह को देखकर अचला मुग्ध हो गई। वह बोली—'मगर आपके पति की अनुमति भी तो चाहिये। अगर उन्होंने ना कर दी, तब तो जाना नहीं हो सकता।'

युवती सिर हिलाती हुई बोली—'ऐं, ऐसा क्यों होगा ! हम सेवा के लिये दासी होने से क्या सब बात में दासी हैं ? ऐसा न सोचियेगा। हुक्म देने के वक्त तो हम ही लोग मालकिन हैं। अगर वह देश पसन्द न आवे तो सीधे डोहरी लौट आइयेगा। जरा भी फिक्र न करें—यह मैं आपसे कहे देती हूँ अनुमति लेनी पड़ेगी, सो मैं ले लूँगी, इसकी आपको क्या गरज पड़ी है ?'—कहती हुई उस पति-गर्विता स्त्री ने अपने आनन्दोच्छ्वास से अचला को आवृत कर दिया।

आरा स्टेशन करीब आ गया है, यह ट्रेन की धीमी गति से मालूम पड़ गया। उसने अचला के दोनों हाथ फिर अपनी गोद में खींच बड़ी उत्कण्ठा से कहा—'मेरा समय हो गया, मैं चलती हूँ, मगर आप इतना फिक्र करके व्यर्थ अपने मन को खराब न करें, मैं यह कहे जाती हूँ। आपको किसी बात का भय नहीं, आपके पति बहुत जल्द अच्छे हो जायेंगे। किन्तु वचन दीजिये—लौटते वक्त एकबार मेरी कुटिया को अपने चरण-रज से पवित्र कीजियेगा ?'

अचला उमड़ते हुए आँसुओं को रोककर बोली—'अगर वह दिन आवेगा, तो एकबार अवश्य आपका दर्शन करूँगी।'

युवती बोली—'वह दिन जरूर आयेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। आपको मैं पहचान गई हूँ। यह मैं कहे जाती हूँ—आपकी इतनी बड़ी श्रद्धा-भक्ति और प्रेम को भगवान विमुख न होने देंगे, ऐसा हो नहीं सकता!'

अचला जवाब न दे सकी, मुँह फिराकर उमड़ते हुए उच्छ्वास को रोका।

वर्षा के बीच गाड़ी आकर प्लेटफार्म पर रुक गई। युवती का छोटा देवर किसी दूसरे डब्बे में था, वह आया और दरवाजा खोलकर खड़ा हो गया। अचला उसके कान के पास मुँह ले जाकर चुपके से बोली—'आप अपने पति का नाम तो जबान पर ला नहीं सकतीं लेकिन आपका अपना नाम क्या है बताइये तो? अगर कभी लौटूँ तो किस तरह आपको ढूढ़ूँ।

युवती मधुर मुस्कान के साथ बोली—'मेरा नाम राक्षसी है। डिहरी में किसी भी बंगाली औरत से मेरा नाम पूछने पर मेरा पता चल जायगा। लेकिन दोनों जने एकबार आना बहिन मेरे सिर की कसम, मैं राह देखती रहूँगी। सोन नदी के ऊपर ही हमारा घर है।'—इतना कहकर युवती दोनों हाथ जोड़कर अचानक एक नमस्कार करके भीगतीं-भीगतीं बाहर हो गई।

रेलगाड़ी पुनः मन्द चाल से चल पड़ी। अभी-अभी शाम हुई थी, लेकिन लगातार पानी गिरने के साथ हवा ने मिलकर इस दुर्योग की रात को सौगुना भयानक बना दिया था। काँच की खिड़की के भीतर से देखकर उसकी आँखें दर्द करने लगीं। उसके मन में सिर्फ यही भाव उठने लगा—इस प्रगाढ़ अन्धकार ने उसके आदि अन्तको मानो निगल लिया हो। प्रकाश और आनन्द का मुख

फिर उसे देखने को न मिलेगा—इससे इस जीवन में अब उसको मुक्ति नहीं मिलेगी, साथीविहीन इस सुनसान डब्बे के एक कोने में चादर फैलाकर आँखें मूँदकर लेट गई और इस बार उसकी आँखों से झरझरकर आँसू गिरने लगे। क्यों उसकी आँखें आसुओं से भर आईं, क्या वास्तव में वह बहुत दुखी है, इतना भी वह समझ न सकी, मगर रुलाई को किसी भी तरह रोक न सकी। जबर्दस्त लहर की तरह वह उसके हृदय को चूर-चूर करती हुई गर्ज-गर्जकर चक्कर काटने लगी। उसे पिता की याद आई, बचपन की सखी-सहेलियाँ याद आईं, बुआजी याद आईं, मृणाल की याद आई, अभी जो युवती राक्षसी कहकर परिचय दे गई थी वह भी याद आ गई—जद्दू नौकर तक मानो उसकी आँखों के सामने बार-बार घूमने लगा। उन सबों से मानो वह जीवन भर के लिये विदा होकर कहीं किसी निरुद्देश्य दिशा की ओर चल पड़ी है—उसकी छाती इस व्यथा से फटने लगी।

इस तरह लगातार आँसू गिराते रहने के बाद जब गाड़ी अगले स्टेशन पर आकर ठहरी, उस समय तक उसका वेदनातुर हृदय बहुत कुछ शान्त हो चुका था। वह उठ बैठी और विकल दृष्टि से देखने लगी कि शायद कोई महिला यात्री इस दुर्योग की रात में भी उसके डब्बे में पदार्पण करे। पानी में भींगते-भींगते कोई उतरा और कोई चढ़ा, लेकिन उसके डब्बे के पास कोई फटका तक नहीं।

गाड़ी छूटने पर सिर्फ एक लम्बी साँस लेकर वह अपनी जगह आ बैठी और सिर से पैर तक ढँककर पहले की तरह लेटते ही इस बार किसी अचिन्तनीय कारण से उसका दुःख-दग्ध हृदय अचानक सुख की कल्पना से उत्फुल्ल हो उठा। लेकिन यह कोई नई बात न थी; जिस दिन जल-वायु-परिवर्तन के लिये पहले-पहल प्रस्ताव किया गया था, उस दिन भी वह इसी तरह सुख के सपने देख रही थी। आज भी वह उसी तरह अपने बीमार पति को याद करके उसीके स्वास्थ्य और दीर्घायु

की कामना करके एक अपरिचित जगह में सुख और शान्ति की जाल बुनते-बुनते आनन्द-विभोर हो गई।

कब और कितनी देर तक वह सोई रही, यह उसे याद नहीं। अचानक अपना नाम कान में पड़ते ही हड़बड़ाकर उठ बैठी और देखा—दरवाज़े पर सुरेश खड़ा है और उस खुले हुए दरवाजे से अजस्र जल-वायु भीतर घुसकर प्रलय की सृष्टि कर रही है।

सुरेश ने चिल्लाकर कहा—'जल्दी उतर पड़ो, गाड़ी प्लेटफार्म पर खड़ी है। तुम्हारा अपना बेग कहाँ है।'

अचला की आँखें उस वक्त भी नींद से भरी हुई थीं, मगर उसे ख्याल आया—इलाहाबाद स्टेशन पर जबलपुर की गाड़ी बदलनी पड़ेगी। वह बेग की तरफ इशारा करके उतर पड़ी और विकल होकर बोली—'मगर इतने जोर की बारिस में उन्हें कैसे उतारोगे! यहाँ क्या कोई पालकी-वालकी नहीं मिलेगी! नहीं तो बीमारी बढ़ जाने का डर है सुरेश बाबू।'

सुरेश ने क्या जवाब दिया, सो वर्षा के शब्द में सुनाई न पड़ा! वह एक हाथ में बेग और दूसरे हाथ में अचला के एक हाथ को मजबूती से पकड़े दूसरे प्लेटफार्म की ओर तेज़ी से उसे खींचता हुआ चल पड़ा। गाड़ी छूटने वाली ही थी, उसीके एक सुनसान फर्स्ट क्लास कमरे में अचला को ठेलकर सुरेश तड़फड़ बोला—'तुम स्थिर होकर बैठो, महिम को उतारे लिये आ रहा हूँ।'

'तो फिर मेरा यह मोटा दुशाला लेते जाओ, उन्हें अच्छी तरह ढक कर लाना।'—इतना कहकर अचला ने हाथ बढ़ाकर अपना दुशाला सुरेश की देह पर फेंक दिया और वह द्रुतवेग से चला गया।

अँधेरे में जहाँ तक नजर जा सकती थी, अचला सामने की ओर देखने लगी—दूर-दूर खम्भों पर स्टेशन की बत्तियाँ जल रही थीं; लेकिन इस प्रचंड वर्षा में वह प्रकाश इतना धीमा और नगण्य प्रतीत हो रहा

था, कि उसकी मदद से प्रायः कोई चीज दिखाई नहीं पड़ती थी। पानी में भींगते हुए मुसाफिर इधर से उधर दौड़ रहे थे, सामान से लदे कुलियों की टोली आ-जा रही थी, रेलवे-कर्मचारी झंझट में फँसे हुए थे—धुँधली छाया की तरह ये सब चीजें दीख भर रही थीं। धीरे-धीरे यह दृश्य भी खत्म होने पर आया, स्टेशन का घंटा भारी आवाज से बज उठा और जिस ट्रेन से अचला अभी-अभी उतरी थी, वह भीषण अजगर की तरह फों-फों शब्द से आकाश को कँपाती हुई प्लेटफार्म छोड़कर रवाना हो गई और अब एक अखंड अन्धकार के सिवा सामने किसी चीज का व्यवधान न रहा।

फिर घंटी बजी। यह घंटी इसी गाड़ी के लिये थी सो अचला समझ गई, मगर वे लोग सवार हो सके या नहीं, किस डब्बे में सवार हुए, सर-सामान सब उतारा गया, कि कुछ बाकी रह गया—कुछ न समझ सकने के कारण वह अत्यन्त चिन्तित हो उठी।

एक प्यादा कम्बल से सारे अंग को ढँककर हाथ में नीली लालटेन लटकाये तेजी से जा रहा था; सामने पाकर अचला ने पुकारकर उससे पूछा—'सभी मुसाफिर सवार हो चुके हैं ?' फस्ट क्लास डब्बा देखकर प्यादा ठमककर खड़ा हो बोला—'हाँ, मेम साहेब !'

अचला के जरा निश्चिन्त होकर समय के बारे में पूछने पर उस प्यादे ने कहा—'नौ बज कर—'

'नौ बजकर ?'—अचला चौंक उठी। मगर इलाहाबाद तो भोर में पहुँचने की बात थी। व्याकुल होकर फिर पूछी—'इलाहाबाद—'

लेकिन वह आदमी अब और खड़ा नहीं रह सकता था। ऊपर साया थी नहीं, इसलिये आकाश की वृष्टि-धारा गाड़ी की छत से गिरकर उसके चेहरे को सुई की तरह छेद रही थी; वह हाथ की रोशनी जोर से हिलाकर—'मोगलसराय ! मोगलसराय !'—चिल्लाता हुआ जल्दी से चल पड़ा।

सीटी बजने पर गाड़ी छूट गई। इसी समय सुरेश उसके सामने दौड़ा-दौड़ा आया और कह गया—'कोई डर नहीं—मैं पास के ही डब्बे में हूँ।'

२८

सुरेश पास के डब्बे में सवार हो गया जरूर, मगर वे ? यही तो वह आँख फाड़-फाड़कर लगातार बाहर की ओर देख रही थी—उनका चेहरा, चाहे जितना भी धुँधला हो गया हो, क्या एक बार भी उसे दिखाई नहीं पड़ता ? और इलाहाबाद के बदले एक नये स्टेशन पर गाड़ी बदलने की जरूरत ही क्या थी ? पानी के छींटे से उसके सिर के बाल, उसके शरीर का कपड़ा सब भींगने लगा, फिर भी वह खुली हुई खिड़की में से बार-बार मुँह निकालकर एक बार सामने एक बार पीछे अँधेरे में क्या देखने की कोशिश कर रही थी, सो तो वही जाने; मगर इस बात को उसका मन किसी भी तरह न मान सका कि इस गाड़ी में उसका पति नहीं है—वह एकदम दूसरे के भरोसे अकेली सुरेश के साथ किसी एक दिशाहीन निरुद्देश्य यात्रा के पथ पर निकल पड़ी है। ऐसा कभी नहीं हो सकता ! इस गाड़ी में ही वे कहीं न कहीं अवश्य होंगे।

सुरेश चाहे जैसे भी हो, जो कुछ भी करे, एक निरपराधा रमणी को उसके समाज से, उसके धर्म से, स्त्री जाति के समस्त गौरव से विचलित करके इस अनिवार्य मृत्यु के मुख में उसे ठेल देगा—वह इतना बड़ा पागल नहीं। खासकर ऐसा करने से उसे फायदा ही क्या है ? अचला के जिस शरीर पर उसको इतनी लालच है, उसी शरीर को एक वेश्या के शरीर में परिणत देखने के लिये अचला जीवित नहीं रह सकेगी, इस सीधी-सी बात को अगर वह नहीं समझता तो प्रेम करने की बात ही उसने किस मुँह से निकाली थी ? नहीं नहीं—ऐसा कभी हो ही नहीं सकता ! इञ्जिन की ओर किसी डब्बे में

वे जल्दी में चढ़ गये हैं, इसीलिये उन्हें न देख सकी।

सहसा एक जबर्दस्त झोंका चेहरे पर लगते ही वह संकुचित होकर एक कोने में चली गई और उसी क्षण अपनी ओर देखने पर मालूम पड़ा कि उसके सारे शरीर पर कहीं सूखे कपड़े का नाम नहीं। वर्षा के पानी में वह इस तरह भींग गई थी, कि आँचल से चोली की बाँही से टप्-टप् करके पानी चू रहा था। इस जाड़े की रात में वह अनजाने में जो कुछ सह रही थी, अब जानने पर और सहने का साहस न कर सकी और कपड़े-सपड़े बदलने के विचार से काँपते हुए हाथों से बेग को खींचकर जब चाभी लगाकर उसे खोलने का आयोजन करने लगी, उसी वक्त गाड़ी की चाल बिल्कुल धीमी पड़ गई और शीघ्र ही स्टेशन पर आकर खड़ी हो गई। पानी उसी तरह गिर रहा है, कौन स्टेशन है यह जानने का उपाय नहीं; फिर भी बेग को खुला ही छोड़कर वह भीतर के अदम्य उद्वेग के धक्के से एक बार ही द्वार खोलकर बाहर उतर पड़ी और अँधेरे में ही अन्दाजा करके भींगती-भींगती जल्दी से सुरेश की खिड़की के सामने जा खड़ी हुई।

चिल्लाकर पुकारने लगी—'सुरेश बाबू!'

इस कमरे में दो भद्र बंगाली और एक अंग्रेज थे। सुरेश एक तरफ कोने में दिवाल के सहारे जड़वत् लेटा हुआ आँखें मूँदकर बैठा था। शायद अचला को भय था कि उसके गले से सहज ही आवाज न निकलेगी। इसीलिये बड़ी कोशिश के साथ जो आवाज उसके गले से निकली वह आहत जन्तु के तीव्र आर्तनाद की तरह सिर्फ सुरेश को ही नहीं, बल्कि वहाँ उपस्थित सभी व्यक्तियों को एकबारगी चौंका दी। घबड़ाहट के साथ सुरेश ने आँखें मलकर देखा—अचला दरवाजे पर खड़ी है, और उसके खुले हुए मुँह पर पड़ती हुई जल की अजस्र धारा और गाड़ी के उज्ज्वल आलोक ने एक साथ मिलकर रूप का एक ऐसा इन्द्रजाल रच दिया था, कि सब लोगों की आँखें विस्मय से विमूढ़ होकर एकबारगी ही दंग रह गईं। सुरेश झट से ज्योंही उसके

पास आकर खड़ा हुआ त्योंही अचला पूछ बैठी—'उन्हें तो नहीं देख रही हूँ, कहाँ हैं वे ? किस डब्बे में उन्हें बैठा आये हो ?'

'चलो दिखाये देता हूँ'—यह कहकर सुरेश वर्षा में ही नीचे उतर पड़ा और जिस तरफ से अचला आई थी, उसी तरफ उसका हाथ पकड़कर उसे खींचता हुआ ले गया।

दोनों बंगाली एक दूसरे का मुँह देखकर जरा हँसे, लेकिन अंग्रेज बेचारा कुछ समझ न सका, सिर्फ नारी-कंठ से विकलता के साथ निकला हुआ प्रश्न उसके मर्म-स्थल को छू गया। उसने जमीन पर गिरे हुए कम्बल को पाँव पर तानकर सिर्फ एक लम्बी साँस ली और स्तब्ध-भाव से बाहर की ओर अँधेरे में ताकता रह गया।

अचला के डब्बे के सामने आकर सुरेश ठमककर खड़ा हो गया, भीतर की ओर नजर दौड़ाकर भय के साथ पूछा—'तुम्हारा बेग कैसे खुला पड़ा है ?' और जवाब के लिये क्षणभर भी इन्तजार न करके दरवाजे को जोर से ठेल दिया और अचला को बलपूर्वक भीतर खींचकर दरवाजा बन्द कर दिया।

सुरेश ने बेग की ओर अँगुली का इशारा करते हुए कहा—'इसको खोला किसने ?'

अचला ने कहा—'मैंने। मगर इन बातों को छोड़ो—वे हैं कहाँ, मुझे दिखा दो—नहीं तो सिर्फ इतना ही बता दो कि वे किस तरफ हैं, मैं खुद जाकर ढूँढ़ लेती हूँ'—यह कहते-कहते अचला ने दरवाजे की तरफ ज्योंही पाँव बढ़ाया कि सुरेश ने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा—'इतनी घबड़ाहट क्यों ? देख नहीं रही हो कि गाड़ी चल पड़ी है ?'

अचला बाहर अन्धकार की ओर देखकर समझ गई कि बात सही है। गाड़ी चल पड़ी थी। उसकी आँखों में निराशा मानो मूर्तिमान होकर दिखाई पड़ी। वह पलटकर खड़ी हो गई और सिर्फ पल भर के लिये सुरेश के अत्यन्त पीले और मुर्झाये चेहरे की ओर दृष्टिपात कर दूसरे ही क्षण छिन्नमूल वृक्ष की तरह धड़ाम से भूमि पर लोट

गई और दोनों हाथों से सुरेश के पाँव पकड़कर फूट-फूटकर रोने लगी—'कहाँ हैं वे ? उन्हें क्या तुमने सोती हुई हालत में गाड़ी से ढकेल दिया है ? बीमार आदमी की हत्या करके तुम्हारा—'

इतने पर भी इस भीषण अभियोग का अन्त न हुआ। अकस्मात् उसकी हृदय-विदारक रुलाई में बस अभियोग खण्ड-खण्ड होकर सुरेश को एकबारगी ही पत्थर बनाता हुआ चतुर्दिक अपनी ही तरह भयानक रात्रि के गर्भ में विलीन हो गया; और सुरेश उसी जगह गद्दीदार बेंच पर पीठ के बल लेटा हुआ असह्य विस्मय से स्तब्ध होकर सिर्फ देखता रह गया। इसके बाद उसके पाँव के नीचे क्या हो रहा था, कुछ देर तक उसे इसका भी पता न था। कुछ देर बाद अपने दोनों पाँव खींचने की कोशिश करता हुआ धीरे से बोला—'यह काम मुझसे हो सकता है, ऐसा तुम्हारा विश्वास है ?'

अचला ने उसी तरह रोते-रोते जवाब दिया—'तुम सब कुछ कर सकते हो। हमारे घर में आग लगाकर तुमने उन्हें जला मारना चाहा था। तुमने कहाँ क्या किया है, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मुझे बता दो।'—इतना कहकर एक बार और उसके दोनों पाँव पकड़कर उन्हीं पर सिर पटकने लगी। मगर दोनों पाँव जिसके थे, वह एकाएक अवश और अचेतन की तरह चुपचाप सिर्फ एकटक देखता रह गया।

बाहर मदमत्त रात्रि उसी तरह सदर्प दहाड़ रही थी; आकाश की बिजली उसी तरह बार-बार अन्धकार को चीरकर खण्ड-खण्ड करने लगी; उच्छृंखल जल-वर्षण उसी तरह समस्त पृथ्वी को डुबोने लगा, मगर इन अभिशप्त दो नर-नारियों के हृदय में जो प्रलय उमड़-घुमड़-कर गरजने लगा, उसके आगे बाहर की ये सारी भयावह घटनाएँ बिल्कुल तुच्छ एवं नगण्य हो गईं।

सहसा अचला जब अपनी भूमि-शय्या को त्यागकर तीर ही तरह ज्योंही उठ खड़ी हुई, कि सुरेश का स्वप्न भंग हो गया। उसने देखा अगले स्टेशन के नजदीक आने के कारण गाड़ी की चाल धीमी पड़

गई है। अचला क्यों इस तरह खड़ी हो गई है—यह समझते उसे देर न लगी। जबर्दस्त कोशिश के साथ सुरेश ने अपने को सम्हाला और दाहिना हाथ बढ़ाकर उसे रोकते हुए कहा—'बैठो! महिम इस गाड़ी में नहीं है।'

'नहीं हैं! तब वे हैं कहाँ?'—बोलते-बोलते अचला सामने के बेंचपर धप् से बैठ गई।

सुरेश ने गौर करके देखा—'उसके चेहरे पर खून का नामोनिशान नहीं। शायद इतनी देर तक रोने-पीटने और सिर पटकने के बीच भी उसके हृदय में समस्त प्रतिकूल युक्तियों के विरुद्ध भी एक अव्यक्त अन्तर्निहित आशा विद्यमान थी। हो सकता है—ये सारी आशंकाएँ झूठी साबित हों, हो सकता है—प्रचण्ड दुःस्वप्न की दुःसह वेदना नींद टूटते ही सिर्फ एक लम्बी साँस के साथ खत्म होकर एक रोमांच के साथ समस्त चराचर प्रफुल्लित हो उठे। इसी तरह की एक अनिर्वचनीय वस्तु उस वक्त भी उसका हृदय खाली करके विदा नहीं ले रही थी। क्योंकि, अभी तक तो उसके हृदय में समस्त सांसारिक कामनाएँ हिलोरें ले रही थीं; अभी एक रात भी न बीतने पाई कि उनमें से एक भी न रही—एक बार ही सब खत्म हो गईं? आँख की पलक मारते-मारते उसका जीवन दुर्भाग्य की समस्त सीमा लाँघकर एकाएक बाहर हो गया! इतनी बड़ी परिणाम-विहीन विपत्ति में शायद उसका बचना भी सन्दिग्ध हो उठा। दोनों स्थिर होकर बैठे रहे। गाड़ी एक अनजाने स्टेशन पर आ लगी और थोड़ी देर बाद चल भी पड़ी।

सुरेश एक बार ज़रा बोलने की कोशिश करके फिर कुछ क्षण के लिये चुप बैठा रहा। इस बार उठकर खड़ा हो गया और खिड़की का काँच उठाकर कई बार इधर-से-उधर टहलने के बाद अचानक अचला के सामने स्थिर भाव से खड़े होकर बोला—'महिम सकुशल है। अब तक शायद वह इलाहाबाद पहुँच गया होगा।' थोड़ी देर

ठहरकर फिर बोला —'वहाँ से वह जबलपुर भी जा सकता है, कलकत्ते वापस भी जा सकता है।

अचला ने आहिस्ते से मुँह उठाकर पूछा—'हम लोग कहाँ जा रहे हैं?'

उस अश्रु-पूर्ण चेहरे पर दुख और निराशा की अन्तिम प्रतिछाया फिर एक बार सुरेश को दिखाई पड़ी। उससे कितनी बड़ी गलती हो गई है यह बात अब उससे छिपी न रही और, इसके लिये आज वह आत्म-हत्या भी कर सकता था। लेकिन जिसकी हजारों छलनाएं उसकी-सत्य दृष्टि को इस तरह आवृत करके इस भूल के बीच भी बारम्बार अँगुली का इशारा कर रही हैं, उसी छलनामयी के विरुद्ध उसका सारा हृदय एकाएक तिक्त हो उठा था। इसीलिये आज वह अचला के प्रश्न के उत्तर में कड़वे स्वर में बोल उठा—'शायद हम लोग इस शरीर के साथ ही नरक में जा रहे हैं। जिस अधःपतन का मार्ग दिखाकर इतनी दूर तक खींच लायी हो, उसके बीच में खड़े होने की जगह तो मिल सकेगी नहीं! अब अन्त तक जाना ही पड़ेगा।'

यह बात सुनकर अचला नीचे से ऊपर तक एकबारगी काँप उठी। बाद में बिना कुछ जवाब दिये ही सिर झुका लिया। जो मिथ्याचारी कापुरुष पराई-स्त्री को इस तरह कुमार्ग पर भटकाकर बेधड़क इतना बड़ा निर्लज्ज कलंक जबान पर ला सकता है, उससे अब और कुछ कहने की क्या जरूरत है।

सुरेश फिर इधर से उधर टहलने लगा। शायद इस पाषाण-प्रतिमा के सामने खड़े होकर कुछ बोलने की शक्ति अब उसमें न थी। कहने लगा — तुम तो इस तरह का भाव दिखा रही हो, जैसे सिर्फ तुम्हारा ही सर्वनाश हुआ हो। किन्तु जिसको सर्वनाश कहा जाता है, वह मेरे लिये कहाँ तक पहुँच चुका है जानती हो? मैं तुम लोगों की तरह ब्रह्मज्ञानी नहीं हूँ, मैं हूँ नास्तिका। मैं पाप-पुण्य की थोथी आवाज

नहीं करता, मैं ठोस सच्चे सर्वनाश की ही बात सोचता हूँ। 'तुम्हारे रूप है, तुम्हारी आँखों में पानी है, स्त्रियों के जितने अस्त्र-शस्त्र हैं वे सबके सब तुम्हारे तरकस में ज़रूरत से ज्यादा मौजूद हैं। तुम्हें किसी भी मार्ग में कठिनाई का सामना न करना पड़ेगा। मगर मेरे लिये क्या परिणाम होगा इसकी कल्पना कर सकती हो? मैं पुरुष हूँ—इसी लिये अपने लिये जेल का रास्ता बन्द करने के लिये अपने-आपको गोली दागनी पड़ेगी।—यह कहते-कहते सुरेश थमककर खड़ा हो गया और छाती पर हाथ रखकर दिखलाने लगा।

अचला ने कुछ कहने के लिये सिर उठाया भी लेकिन बगैर कुछ कहे मुँह फेर लिया। मगर उसकी आँखों में जो घृणा इकट्ठी हो गई थी, उसे देखते ही सुरेश क्रोध से जल उठा और बोला—'मोर का पंख लगाकर कौवा कभी मोर नहीं बन सकता अचला। उस चितवन को मैं पहचानता हूँ, लेकिन वह तुम्हें शोभा नहीं देती। जिसे वह शोभा देगी, वह है मृणाल, तुम नहीं! तुम हिन्दू घर की असूर्यम्पश्या कुल-बधू नहीं हो, इतने से तुम्हारी जान नहीं चली जायगी। जहाँ खुशी हो तुम उतरकर चली जाओ। मैं चिट्ठी लिखे देता हूँ, महिम को दिखा देना, वह तुम्हें अंगीकार कर लेगा। रुपये दे रहा हूँ, अपने बाप को दे देना—उनका मुँह बन्द हो जायगा। तुम्हें चिन्ता किस बात की है अचला, यह कोई बड़ा अपराध तो है नहीं?'

वह फिर टहलने लगा, एक बार आँख तक उठाकर न देखा कि उसके दहकते हुए शूल ने कहाँ क्या असर किया। खाद्य-वस्तु के लोभ में जंगली जानवर फंदे में फँस जिस तरह क्रोध में अन्धा होकर सामने जिसे पाता है उसीको चीड़-फाड़ डालता है, ठीक उसी तरह सुरेश ने अचला को एकदम टुकड़े-टुकड़े कर डालना चाहा। अचानक बीच में ही रुककर बोला—यह क्या कोई ऐसा भयंकर अपराध है? पति के घर में खड़ी होकर उसके मुँह पर ही तुमने कहा था—'एक पर-पुरुष को मैं प्यार करती हूँ'—सो क्या भूल गयी?

जो आदमी घर में आग लगाकर तुम्हारे पति को जला डालना चाहता था, जैसा कि तुम्हारा विश्वास है, उसीके साथ चली आने को तैयार थी—और आयी भी उसीके साथ; याद है ? उसीके घर में, उसीके आश्रय में बास करके लुक-छिपकर रोते हुए उसको साथ चलने का आग्रह किया था सो क्या भूल गयी ? क्या उससे भी यह बड़ा अपराध है ! और न जाने इस तरह की बदले की छोटी-मोटी कितनी असंख्य बातें हैं ! इसीलिये आज मुझे इतना साहस हुआ। असल में तुम एक वेश्या हो, इसीलिये तुम्हें यहाँ भुलाकर ले आया हूँ ! सोचा था पहले जरा चौंक उठोगी. बस ! इससे अधिक तुमसे आशा नहीं की जा सकती। तुमसे बार-बार कहे देता हूँ अचला, तुम सती-सावित्री नहीं हो। वह तेज, वह दर्प तुम्हें नहीं शोभा देता, बिल्कुल नहीं—वह तुम्हारी बिल्कुल अनधिकार चेष्टा है !'

इतना एक साँस में कहकर सुरेश ज्योंही बेदम होकर रुका त्योंही अचला ने मुँह उठाया और भग्न-कण्ठ से चीत्कार कर उठी—'आप रुकिये मत सुरेश बाबू, और कहते जाइये। मुझे दोनों पैरों से कुचल-कुचलकर संसार में जितनी भी कड़वी बातें हैं, जितने भी कुत्सित व्यंग्य हैं, जितने भी अपमान हैं सब कुछ कर लीजिये।'—इतना कहकर फर्श पर अचानक औंधी-मुँह लोट गयी और उमड़ती हुई रुलाई को रोक कर भर्राई हुई आवाज में कहने लगी—'यही मैं चाहती हूँ, इसी की मुझे ज़रूरत है ! यही मेरा सच्चा सम्बन्ध है ! पृथिवी से, भगवान से, आपसे एकमात्र यही मुझे मिलना चाहिये।'

सुरेश दीवाल के सहारे काठ की तरह खड़े देखता रह गया। अचला के लम्बे-लम्बे केश के लट यत्र-तत्र बिखरकर मिट्टी में लोटने लगे, पानी में भींगा हुआ उसके शरीर का वस्त्र धूल और कीचड़ से मैला एवं भद्दा हो उठा; मगर उस तरफ पैर बढ़ाने का साहस सुरेश को न हुआ। नया शिकारी जिस तरह जमीन पर गिरे हुए सबसे पहले शिकार की पंछी के मृत्यु-यन्त्रणा में तड़पते देखकर अवाक

हो जाता है उसी तरह अपने मुग्ध नेत्रों से वह मानो मृत्यु-वेदना से तड़पती हुई किसी एक नारी के अन्तिम क्षण को खड़ा-खड़ा एक-टक देखता रहा।

फिर गाड़ी की गति मन्द और मन्दतर होती गयी, वह धीरे-धीरे स्टेशन पर आ खड़ी हुई। सुरेश सीधा होकर खड़ा हो गया और शान्त-सहज स्वर में बोला—'लोग तुम्हें इस हालत में देखकर आश्चर्य करेंगे। तुम उठकर बैठो, मैं अपने डब्बे को चला। सबेरा होने पर तुम जहाँ उतरना चाहो वहाँ उतार दूँगा, जहाँ जाना चाहोगी वहाँ भेज दूँगा। इस बीच में कोई भयानक काम करने की कोशिश मत करना, इससे कोई फायदा न होगा।' इतना कहकर सुरेश किवाड़ खोलकर नीचे उतर गया और होशियारी के साथ उसे बंद करके न जाने क्या सोचकर क्षण भर के लिये चुपचाप खड़ा हो गया। इसके बाद मुँह आगे बढ़ाकर बोला—'तुम मेरी बात समझोगी नहीं, लेकिन इतना सुन रखो कि इस समस्या पर सोच-विचार करने का भार मैंने अपने ऊपर ले लिया, तुम्हारा किसी भी तरह अहित न होने दूँगा—यह सारा ऋण मैं कौड़ी-कौड़ी करके चुका दूँगा'—इतना कहकर धीरे-धीरे वह अपने डब्बे की ओर चल पड़ा।

ट्रेन के निरन्तर और एक-रस शब्द के विराम के साथ-साथ प्रतिबार सुरेश की तन्द्रा तो टूट जाती थी, मगर आँखों की पलक हटाकर देखने की शक्ति अब मानो उसमें थी ही नहीं। भींगे हुए कपड़े से उसे अत्यन्त जाड़ा मालूम पड़ रहा था, वस्तुतः वह बीमार पड़ सकता था, और मौजूदा हालत में यह कितना भयंकर होगा—यह भीतर ही-भीतर अनुभव भी कर रहा था, लेकिन बेग खोलकर कपड़े बदलने की कोशिश करना मानो असाध्य अभिलाषा की तरह ही उसके दिल में निस्पन्द हो गयी थी। ठीक इसी समय उसके कानों में एक परिचित कण्ठ की आवाज़ पहुँची—कुली! कुली! अध-जगे रूप में उसने आँखें खोलकर देखा—गाड़ी किसी एक स्टेशन पर आ खड़ी

हुई है, और न जाने कब अन्धकार मिटकर वर्षा से क्षीण एवं धूसर बादलों में से मन्द आलोक में सब स्पष्ट हो उठा है। उसने देखा—अनेक उतर रहे हैं, अनेक चढ़ रहे हैं और उन्हीं के बीच में खड़ी हुई एक रमणी की शोकाच्छन्न मूर्ति न जाने किसके लिये आग्रह के साथ इन्तजार कर रही है। यह तो अचला है। एक कुली के सिर पर एक बहुत बड़ा चमड़े का बेग लादती हुई गाड़ी से उतरकर न जाने उससे क्या कुछ कहकर गेट की तरफ धीरे-धीरे बढ़ चली।

अब तक सुरेश निश्चेष्टभाव से सिर्फ ताक रहा था। शायद उसकी नजर भीतर घुसने का रास्ता न पा रही थी। मगर गाड़ी छूटने का घन्टा प्लेटफार्म के किसी एक कोने से सहसा ध्वनित होकर बिजली की तरह उसके बाहर और भीतर को क्षण भर में ही एकीभूत करके उसकी सारी जड़ता नष्ट कर दिया, और पलभर में अपना बेग उठाता हुआ दरवाजा खोलकर बाहर आ पहुँचा।

टिकट की बात अचला को याद नहीं थी। वह गेट के आगे टिकट बाबू को देखकर ज्योंही रुककर खड़ी हुई कि पीछे से सुरेश ने स्नेह-सने स्वर में कहा—'रुको मत, चलो मैं टिकट दिये देता हूँ।'

उसके आने की आहट अचला को न मिली। क्षणभर के लिये कुण्ठा और भय के कारण उसके पाँव, नहीं उठे किन्तु यह संकोच दूसरों की नज़र में पड़ने से पहले ही वह धीरे से बाहर हो गई।

बाहर आने पर दोनों में निम्नलिखित वार्तालाप हुआ।

सुरेश ने कहा—'मैं सोच रहा था, तुम सीधे कलकत्ते ही लौट जाना चाहोगी, अचानक इस डिहरी स्टेशन पर क्यों उतर पड़ी? यहाँ क्या तुम्हारे कोई जान पहचान के हैं?'

अचला दूसरी तरफ़ देख रही थी, उसी तरफ़ देखती हुई बोली—'कलकत्ता मैं किसके पास जाऊँगी?'

'मगर यहाँ?'

अचला चुप रह गई। सुरेश स्वयं भी कुछ क्षण मौन रहने के बाद बोला—'मेरी किसी बात पर तुम अब विश्वास तो करोगी नहीं, और इसके लिये मेरी कोई शिकायत भी नहीं है, मैं अन्त समय में तुमसे केवल कुछ भीख चाहता हूँ।'

अचला उसी तरह चुपचाप खड़ी रही।'

सुरेश ने कहा—'मेरी बात किसी को समझने की ज़रूरत नहीं, और न मैं समझाना ही चाहता हूँ, मेरी चीज मेरे ही साथ जायगी! जहाँ पहुँचने पर यहाँ की आग अब और न जला सकेगा, मैंने उसी देश की राह आज पकड़ ली है, मगर मेरे लिये अन्तिम सहारा मुझे दो, मेरी यही करबद्ध प्रार्थना है।

फिर भी अचला के मुँह से एक शब्द भी न निकला। सुरेश कहने लगा—'मैंने स्वयं तुमसे अनेक कड़वी बातें कही हैं, अनेक दुख दिये हैं, लेकिन कोई दूसरा अगर अपनी नेकचलनी के घमण्ड में तुम्हारे माथे पर कलंक की स्याही पोतकर उसे काला करना चाहे, सो तो मुझे मरने पर भी बर्दाश्त न हो सकेगा। मेरे लिये अब तुम्हें और कष्ट न झेलना पड़ेगा, बिदा होने से पहले मुझे सिर्फ इतने से मौक की भीख देती जाओ अचला।'

उसके कण्ठ-स्वर में क्या था, सो तो अन्तर्यामी ही जानें। अचानक गर्म आँसुओं से अचला की आँखें भर आईं। लेकिन फिर भी वह अपने गले को साफ रखने की जी-जान से कोशिश करती हुई कोमल-स्वर में बोली—'मुझे क्या करना होगा, कहिये?'

सुरेश ने अपने पाकेट से टाइम-टेबुल निकाल कर गाड़ी का समय देखकर कहा—'तुम्हें कुछ भी करना न पड़ेगा। मगर शाम के पहले जब कि किसी तरफ़ जाने का उपाय नहीं है, तब इतने समय के लिये भी मुझ पर अविश्वास न करो, मैं सिर्फ़ इतना ही चाहता हूँ। मुझसे अब तुम्हारा कोई अहित न होगा, यह बात मैं आज तुम्हारे नाम की सौगन्ध खाकर कहता हूँ।

प्रत्युत्तर में वह कुछ न बोली, किन्तु वह सहमत हो गयी, यह मालूम पड़ा ।

लोगों की दृष्टि और कौतूहल से अपने को बचाने के लिये स्टेशन पर लौटकर तुच्छ वेटिंग-रूम में बैठकर इन्तजार करने की इच्छा दोनों में से किसी को न हुई । पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि बड़ी सड़क पर सम्राट शेरशाह के नाम पर आज भी एक सराय मौजूद है । शहर के एक कोने में उसी तरफ दोनों जने क्षणभर के लिये अपने मर्मान्तिक कष्ट को भूलकर एक बैलगाड़ी पर किराया करके चल पड़े ।

रास्ते में किसी ने न तो कोई बात ही की, और न एक-दूसरे के मुँह की तरफ देखा ही । सिर्फ जब बैलगाड़ी आकर सराय के आँगन में खड़ी हुई, तो गाड़ी से उतरते वक्त क्षणभर के लिये सुरेश के चेहरे पर अचला की दृष्टि पड़ी और मन-ही-मन उसे केवल आश्चर्य ही नहीं हुआ, बल्कि वह आकुल हो उठी । उसकी आँखों में भयंकर लाली छा गयी थी, और मुँह पर तो किसी ने मानो स्याही पोत दी थी । संसार की कितनी ही मुसीबतों में उसने उसे देखा था, मगर उसकी ऐसी मूर्ति कभी देखी हो यह याद न आया ।

गाड़ीवान को भाड़ा देकर विदा करने के बाद सुरेश मनी-बेग वहीं रखता हुआ बोला—'फिलहाल इसे अपने ही पास रखो, अगर कुछ जरूरत पड़े, तो लेने में शर्म मत करना ।'

अचला को इच्छा हुई—वह पूछे कि इस बात का क्या अर्थ है, मगर पूछ न सकी । सुरेश फिर बोला—'सामने का कमरा शायद कुछ अच्छा है, तुम जाकर जरा आराम करो, मैं बगल के किसी कमरे में कपड़े बदल आता हूँ । क्या जानें, इसी वजह से चेहरा भद्दा मालूम पड़े रहा हो ।'—इतना कहकर वह अचला की सुविधा-असुविधा पर रंचमात्र भी दृष्टिपात किये बगैर अपना बेग हाथ में लेकर ठीक-मद-

भक्त की तरह लड़खड़ाता हुआ बरामदा पार करके कोने के एक कमरे में घुस गया।

उसके चले जाने पर अचला अकेली ही सड़क के किनारे खड़ी न रह सकी। इसीलिये बड़े कष्ट से अपने भारी बेग को खींच-खाँच कर सामने वाले कमरे में ला-पटकी, और उसी पर स्तब्ध भाव से बैठी हुई सड़क पर लोगों की यातायात देखने लगी।

२६

उसी कमरे के सामने बेग पर बैठकर आशा और आश्वासन के स्वप्न देखते-देखते अचला के किस तरह दो घण्टे बीत गये सो उसे पता न चला। दिन कुछ चढ़ आया है। जाड़े के दिनों में धूल-धूसरित तरु पंक्तियाँ कल की वर्षा में धुल और स्वच्छ होकर प्रातःकालीन सूर्य-किरणों में झल मला रही हैं। वर्षा-जल से सिञ्चित और कोमल राजपथ पर पथिक पिछला कष्ट भूलकर प्रसन्नचित्त से चलने लगा है। कभी-कभी दो-एक एक्का-गाड़ियाँ छोटी-छोटी घण्टियों के शब्द से सब दिशाओं को मुखरित करती हुई दौड़ रही हैं। बीच-बीच में ग्वाल-बाल गाय-भैंस का झुण्ड लेकर अद्भुत और असम्भव रिश्तों का जोर-जोर से उच्चारण करते हुए किसी गाँव की ओर चल पड़े हैं। समीप की एक झोंपड़ी से गेहूँ पीसने की चक्की के आवाज के साथ मिलकर हिन्दुस्तानी गृह-वधु की स्वर-लहरी मुखरित हो रही है। कुल मिलाकर इस नये दिन की कर्म-धारा में उसकी चेतना धीरे-धीरे प्रवाहित हो उठी थी, और इसी विचित्र प्रवाह में उसका दुख, उसका दुर्भाग्य, उसकी दुश्चिन्ता—कुछ क्षण के लिये मानों कहीं बहकर चली गयी थी। ठीक किस लिये, क्यों वह यहाँ इस भाव से बैठी थी इसका उसे पता नहीं था। अचानक याद आई—दो देहाती बच्चे विस्मित होकर उसे घूर रहे हैं! वे आँगन की एक छोर से सिर्फ़ आँखे

फाड़फाककर चुपचाप उसे देख रहे थे। इस जीर्ण-शीर्ण सराय के अतीत गौरव के इतिहास का उन दोनों बच्चों को पता न था, मगर उनके होश सम्हालने से अब तक इस प्रकार के विशिष्ट अतिथि का समागम इस सराय में कभी हुआ हो नहीं—यह बात उनकी चितवन ने अचला को साफ-साफ जता दी। नींद टूटने पर अपनी नित्य-नियमित क्रीड़ा के निमित्त यहाँ आने पर आज अचानक उनकी नजर इस आश्चर्यजनक घटना पर पड़ी गई।

अचला चौंककर उठ खड़ी हुई और शायद कुछ पूछना ही चाहती थी कि वे बच्चे पलभर में चम्पत हो गये। लेकिन उसी क्षण उसे यह भी स्मरण हो आया कि अभी करीब दो घण्टे पहले कपड़ा बदलने का नाम लेकर सुरेश जो बगल के कमरे में घुसा सो अब तक दिखाई नहीं पड़ा। इतनी देर तक वह अकेले क्या कर रहा है, यह जानने के लिये उसी वक्त धीरे-धीरे उसी कमरे के सामने जा खड़ी हुई और बन्द किवाड़ के भीतर से कोई आहट न पाकर दो मिनट तक चुपचाप खड़ी रहने के बाद आहिस्ते से दरवाजा ठेलकर सामने जो उसे दिखाई पड़ा उससे एक साथ ही मुक्ति और विकट भय के तीव्र आवेग से क्षणभर के लिये उसका सारा शरीर और मन मानो पत्थर बन गया। कमरे में अँधेरा है, सिर्फ एक तरफ की टूटी हुई खिड़की में से होकर मन्द-मन्द प्रकाश फर्श पर पड़ रहा है। वहीं पर उस प्रकाश और अँधेरे में, धूल और बालू में चित्त होकर सुरेश पड़ा हुआ है। उसके बदन पर तब भी वही सब कपड़े थे, सिर्फ खुले हुए बेग में से बहुत-सा सामान इधर-उधर बिखरा पड़ा था।

पलक मारते ही उसकी सारी बातें अचला को याद आ गईं। वह डाक्टर है, उसने सिर्फ मनुष्य को जीवित रखने की ही विद्या नहीं सीखी थी बल्कि चुपचाप उसे निष्प्राण कर देने का कला उससे छिपी नहीं थी। उसे स्मरण हुआ—अत्यन्त दारुण भूल के लिये ही यह उसकी उत्कट आत्म-ग्लानि है: याद पड़ा—उसका वही बिदाई चाहना

उसका वही आश्वासन देना, और सबसे अधिक प्रायश्चित्त करने के लिये उसका वही बार-बार निष्ठुर इशारा—ये सभी घटनाएँ एक साथ ही. एक साँस में मानो उस भू-लुण्ठित शरीर के एकमात्र परिणाम की बात कान में कह गई हों। उसी जगह दरवाजा पकड़कर वह धीरे से बैठ गई—उस कमरे में घुसने का अब उसे साहस न हुआ।

किन्तु इस बार उस चेतनाहीन शरीर की तरफ देखकर उसकी आँखों से आँसू निकल ही पड़े। जो उसी के लिये इतने बड़े कलंक का बोझ सिर पर लादे हताश होकर हमेशा के लिये इस संसार से विदा हो गया, अपराध चाहे उसका जितना भी बड़ा हो, ऐसे कठोर हृदय के आदमी संसार में बिरले ही होंगे जो उसे क्षमा न कर सकें और आज ही पहले-पहल उसके निकट उसे आज अपना अपराध स्पष्ट रूप से दिखाई दिया।

सुरेस के साथ जिस दिन उसका प्रथम परिचय हुआ, तब से लेकर आजतक जो कुछ कामना-वासना, जो मूल-भ्रान्ति, जो मोह, जो छल, जो आग्रह-आवेग दोनों के बीच उत्पन्न हुए थे, वे सब एक-एक करके दिखायी देने लगे। उसका अपना आचरण, उसके पिता का आचरण—अकस्मात् उसका सारा शरीर सिहर उठा, मन में हुआ—सिर्फ अपना ही नहीं, बल्कि अनेक व्यक्तियों के अनेक पापों का जबर्दस्त बोझ लादे आज सुरेश जिस न्यायाधीश के चरणों में उपस्थित हुआ है, वहाँ वह चुपचाप सारा दण्ड स्वीकार कर लेगा, अथवा एक-एक करके समस्त दुख और अभियोग प्रगट करके उसके लिये क्षमा की भीख चाहेगा।

इस व्यक्ति के लिये संसार में उपभोग करने की सारी चीजें सारे साज-सरञ्जाम मौजूद थे, फिर भी इस प्रकार बिना कुछ कहे, रत्ती भर भी आडम्बर किये बगैर समस्त उपभोग्य वस्तुओं का त्याग करके चला गया—इसकी गम्भीर वेदना आज रह-रहकर अचला को चोट पहुँचाने लगी। उसने जो वास्तव में जी-जान से प्यार किया था, इस बारे में

आज इस मौत के आगे खड़ी होकर प्रश्न करने या सन्देह करने की कोई गुञ्जायश ही न रह गई थी।

फिर उसके दोनों कपोलों पर से झर-झर करके अश्रु की धारा बहने लगी। पिछली रात को गाड़ी में उनके बीच अनेक कड़वी बातें, धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय के बारे में विस्तारपूर्वक तर्क-वितर्क हो चुके थे। अचला क्या उस समय जानती थी कि ये सबके सब कितने अर्थहीन प्रलाप हैं। प्रेम की कोई जात नहीं, कोई धर्म नहीं, भले-बुरे का विचार-विवेक कुछ भी नहीं। जो इस तरह मर सकता है, वह समाज के हाथ से बने इन सब आइन-कानूनों से बहुत ऊपर है, ये सब विधि-निषेध उसे छू तक नहीं सकते, आज इस मौत के सामने खड़ी होकर वह इस तथ्य को अस्वीकार ही कैसे कर सकती थी?

अचला आँचल से आँखें पोंछ रही थी कि सहसा उसकी छाती धड़क उठी, वह लाश मानो जरा हिल उठी, और दूसरे ही क्षण जरा अस्फुट आर्त स्वर के साथ सुरेश ने करवट बदली। तो फिर वह मरा नहीं—जिन्दा है; एक प्रचण्ड आग्रह के वेग से अचला लपक कर उसके पास जा पहुँची और भर्राई हुई आवाज में बोली—'सुरेशबाबू!'

आवाज सुनने पर सुरेश ने अपनी लाल-लाल दोनों आँखें खोल कर देखा, मगर कुछ कहा नहीं।

अचला भी अब कुछ कह न सकी, सिर्फ प्रबल वाष्पोच्छ्वास उसका गला रुँधकर आँसू के रूप में दोनों आँखों से झर-झर कर गिरने लगे। किन्तु क्षण भर पहले के आँसुओं के साथ इन आँसुओं का कितना भेद था!

उसकी सारी चिन्ताओं के बीच जो चिन्ता भीतर ही भीतर गुप्त रूप से उसे अत्यन्त सता रही थी, वह थी उसकी वास्तविक दशा। इस अनजान अपरिचित स्थान में सुरेश की लाश को लेकर वह कौन उपाय करेगी, किसे पुकारेगी, किससे कुछ कहेगी,—हो सकता

है कई तरह की अप्रीति-जनक आलोचनाएं होंगी, अनेक प्रकार के कुत्सित प्रश्न उठेंगे—वह किसको क्या जवाब देगी; हो सकता है पुलिस तंग कर सारा रहस्य भेद कर ले—इन्हीं सब रहस्यों के भंडाफोड़ की लज्जा के मारे उसका सारा शरीर और मन भीतर ही भीतर किस तरह पीड़ित हो रहा था, किस तरह कष्ट-ग्रस्त हो गया था, सो शायद पूरी तरह उसे भी पता न था। इस समय उसी विपत्ति की अपरिमेय लांछना से अचानक छुटकारा पाकर उसकी रुलाई मानो अब रुकना चाहती ही नहीं थी, और वह मरा नहीं है, सिर्फ उतने से ही उसके प्रति अचला का सारा हृदय रो-रोकर कृतज्ञता से परिपूर्ण हो उठा।

कुछ क्षण इसी तरह बीत गये, सुरेश ने धीरे से पूछा—'रो क्यों रही हो अचला!'

अचला भर्राई हुई आवाज में बोल उठी—'क्यों तुम इस तरह से सो रहे हो? क्यों नहीं आये? क्यों मुझे इतना डरा दिया!'

उसके कंठ-स्वर में जो स्नेह उमड़ पड़ा था वह इतना करुण और इतना मधुर था कि सिर्फ सुरेश के ही नहीं, बल्कि अचला के हृदय में भी एक प्रकार के मोह का सञ्चार हो गया। उसने फिर कहा—'अगर तुम्हें इतनी नींद आ रही थी तो मुझसे तुमने कहा क्यों नहीं? मैं उस तरफ के बड़े कमरे को साफ करके किसी तरह तुम्हारे लिये सोने की जगह तैयार कर देती। गाड़ी के आने में तो अभी काफी देर थी!'

सुरेश ने कोई जवाब नहीं दिया, सिर्फ विगलित स्नेह से उसके मुँह की तरफ देखा और धीरे से अपना हाथ बढ़ाकर अचला का दाहिना हाथ खींचकर अपने उत्तप्त ललाट पर रख दिया और केवल एक लम्बी साँस ली।

अचला ने चकित होकर कहा—'अरे, यह तो बहुत गर्म है! तुम्हें क्या बुखार हो गया है?'

सुरेश ने कहा—'हुँ। इसके अलावा इस बुखार के आसानी से हटने की मुझे उम्मीद नहीं। शायद—'

अचला ने धीरे से हाथ हटा लिया और प्रत्युत्तर में उसके मुँह से भी सिर्फ एक लम्बी साँस ही निकली। उसका उमड़ा हुआ स्नेह, सारी ममता क्षण भर में जमकर मानो पत्थर हो गई। बर्दाश्त करने की, धीरज धरने की उसमें जो कुछ भी शक्ति थी उसे बटोरकर आज दिन भर वह किसी तरह गाड़ी का इन्तजार करेगी, यही प्रतीज्ञा उसने मन-ही-मन की थी, मगर इस अनिर्वचनीय और अप्रत्याशित विपत्ति के बादलों से उसकी आशा की क्षीण रेखा भी जब पलक मारते ही अंतर्हित हो गई तब मृत्यु के सिवाय संसार में और दूसरी चीज के लिये वह प्रार्थना नहीं कर सकती थी।

इसको इस दशा में अकेले छोड़ कर जाने की बात वह कल्पना न कर सकी, लेकिन जिसकी पीड़ा को सब तरह की जिम्मेवारी, सब तरह का कठिन भार उसी के माथे पर आ पड़ा है, इस स्थिति में वह इस अपरिचित स्थान में क्या करेगी, कहाँ और किस से मदद की भीख माँगेगी, कौन-सा परिचय देकर मनुष्य की सहानुभूति प्राप्त करेगी, रात-दिन कौन-सा अभिनय करेगी—ये सारी दुश्चिन्ताएँ बिजली की तरह उसके दिमाग में दौड़ गईं। वह क्या करे—कहीं भाग खड़ी हो, दहाड़ मारकर रोना शुरू कर दे, जबर्दस्ती सिर पटक-पटककर इस अभिशप्त जीवन से छुटकारा पा जाय—इस बारे में वह किसी प्रकार का निश्चय न कर सकी।

३०

उस दिन स्टेशन से लौटते वक्त रास्ते में केदारबाबू पानी में भीगने के कारण सात-आठ दिन तक गठिया और सर्दी के बुखार से पीड़ित होकर बिस्तरा पकड़ लिये थे। कन्या और दामाद के कुशल-क्षेम न प्राप्त होने के कारण अत्यन्त चिन्तित होकर भी वे जबलपुर के मित्र के पास एक पोस्टकार्ड लिखने के अतिरिक्त और कुछ न कर

सके। आज उसका जवाब आया है। कोई भी नहीं पहुँचा और न किसी की खबर ही उन्हें मिली—पत्र में सिर्फ़ इतनी ही बात लिखी हुई थी। पत्र की कुछ पंक्तियाँ बार-बार पढ़ने के बाद केदार बाबू उदास चेहरे और शून्य दृष्टि से बाहर की ओर देखकर चश्मे के दोनों काँच घिस-घिसकर साफ़ करने लगे। उन्हें क्या हुआ, वे सब कहाँ गये, खबर के लिये वे किसे बुलायें, कहाँ चिट्ठी लिखें, किससे पूछें, कुछ समझ में नहीं आ रहा था। उनकी सब तरह की मुसीबतों में शरीर और मन से जो व्यक्ति मदद कर सकता था, वह सुरेश भी वहाँ नहीं है, वह भी उनके साथ ही गया है।

ठीक इसी समय बेहरा ने आकर एक और पत्र उनके सामने रख दिया। केदार बाबू ने किसी तरह नाक पर चश्मा चढ़ाकर काँपते हुये हाथ से चिट्ठी उठा ली और देखा, चिट्ठी उनकी कन्या अचला के नाम से थी। उम्दा साफ़ लिखावट किसी औरत की लिखी हुई मालूम पड़ रही थी। यह पत्र किसने लिखा, कहाँ से आया—यह जानने की उत्कण्ठा में दूसरे की चिट्ठी खोलना उचित है या नहीं, यह बात उनके मन में आई ही नहीं; तड़-फड़ लिफाफा फाड़कर सबसे पहले लिखने वाली का नाम पढ़कर देखा, लिखा था—'तुम्हारी मृणाल।' इसके बाद पत्र को भी शुरू से आखिर तक बार-बार पढ़ने के बाद बाहर की ओर शून्य दृष्टि से देखकर चश्मा पोंछने लगे। उनका दिल कैसा होने लगा सो तो परमात्मा ही जानें। बहुत देर तक चश्मे की सफाई का काम स्थगित करने के बाद फिर उसे नाकपर चढ़ाकर एक बार और उस चिट्ठी को शुरू से आखिर तक पढ़ने में लग गये। मृणाल ने स्त्री की सहनशक्ति, क्षमा, धैर्य आदि गुण के सम्बन्ध में अत्यन्त मधुर अनेक उपदेश देने के बाद अन्त में लिखा था—

'भैया' तुम्हारे बारे में कुछ बताते नहीं यह सही है, पूछने पर गुमसुम हो जाते हैं यह भी सही है, लेकिन मैं तो स्त्री हूँ, मैं तो सब कुछ समझ सकती हूँ! अच्छा भाभी, लड़ाई-झगड़ा किससे नहीं होता?

मगर इसी बात को लेकर इतना रुष्ट होना क्या उचित है ! तुम्हारे पति अपने शरीर और मन की वर्तमान अवस्था पर ध्यान न देकर रुष्ट हो भी सकते हैं, अधीर होकर चले भी जा सकते हैं, मगर तुम तो अभी पागल नहीं हो गई हो कि उन्होंने जो कुछ कहा, उसमें शह देती हुई बेधड़क बोल गई—'अच्छा जैसी तुम्हारी मर्जी, जाओ तुम उसी बनवास में ।' इसीलिये मैं सोचती हूँ भाभी, किस दिल से तुमने किस तरह अपने मृत-कल्प स्वामी को इतनी आसानी से इस जंगल में फेंक दिया और स्थिर होकर इन सात-आठ दिनों से—नहीं-नहीं सात-आठ साल समझो—अपने बाप के घर में निश्चिन्त होकर बैठी हो ! मैं सच कह रही हूँ—उस दिन जब वे सामान-असबाब लेकर घर में घुसे, मैं एकाएक उन्हें पहचान भी न सकी ! तुम दोनों में क्योंकर झगड़ा हुआ, वे किस लिये पश्चिम की तरफ जाने के बदले देश लौट आये, यह सब मैं कुछ नहीं जानती और जानना चाहती भी नहीं । मगर तुम्हें मेरे सिर की कसम है, तुम पत्र पाते ही चली आना । जानती ही तो हो भाभी, अपनी सास को छोड़कर कहीं मैं जाने लायक नहीं रही । फिर भी अगर भैया इतने अस्वस्थ्य न होते तो मैं खुद आकर तुम्हारे पाँव पड़कर तुम्हें घर ले आती । एक बार आओ, एक बार खुद अपनी आँखों से उन्हें देखो, तब समझोगी इस व्यर्थ की नाराजी में तुमने कितना अन्याय कर डाला है । यह घर भी तुम्हारा है, मैं भी तुम्हारी हूँ, इसलिये इस घर में आने के लिये किसी तरह की दुविधा में मत पड़ना । तुम्हारी राह देख रही हूँ—श्रीचरणों में शतकोटि प्रणाम । और एक बात । मेरे पत्र लिखने की बात भैया किसी तरह न जान पायें, मैंने उनसे छिपाकर लिखा है । इति—तुम्हारी मृणाल ।'

पत्र समाप्त करने के बाद मृणाल ने एक 'पुनश्च' देकर कैफियत दी थी कि मैं समझती हूँ पति की अनुपस्थिति में तुम सुरेश बाबू के घर पर एक दिन भी नहीं रहोगी, यह जानकर ही तुम्हारे पिता के

ठिकाने से यह पत्र लिखा है। आशा है, यह पत्र तुम्हारे पास पहुँचने में देर न होगी।'

केदार बाबू के हाथ से चिट्ठी खिसककर नीचे गिर पड़ी, वे फिर एक बार आकाश की ओर नजर गड़ाकर अपना चश्मा साफ करने लगे। इतना तो मालूम हो गया कि महिम जबलपुर के बदले अपने गाँव में है और अचला वहाँ नहीं है। वह कहाँ है, उसे हुआ क्या, ये सारी बातें या तो महिम जानता नहीं, या जानकर भी प्रकाश नहीं करना चाहता।

अचानक याद आया—'आखिर सुरेश ही कहाँ है! वह उनका अथिति बनकर उनके साथ हो लिया था! वह निश्चय ही घर को नहीं लौटा है, अगर वह लौटा होता तो एक बार अवश्य मिला होता।' इसके बाद पिता के हृदय में जो आशंका अचानक शूल की तरह आघात कर बैठी, उसकी चोट से अब वे सीधे होकर न बैठ सके। उसी आराम कुर्सी पर पीठ के बल लेटे हुए उन्होंने दोनों आँखें मूँद लीं।

दोपहर के वक्त नौकरानी सुरेश के घर से खबर लेकर लौट आई और उसने बताया—'उनकी बुआजी को कुछ भी पता नहीं है। कोई चिट्ठी-पत्री न पाकर वे भी अत्यन्त चिन्तित हो उठी हैं।'

रात को केदार बाबू अपने सोने की एकान्त कोठरी में दीपक की रोशनी में फिर एक बार मृणाल की चिट्ठी पढ़ने बैठे। उसके अक्षर-अक्षर पर नाना तरह की आलोचना करने लगे। सोचने लगे कि कहीं खड़े होने की थोड़ी-सी जगह मिल जाय। अन्यथा वे कहाँ जाकर किस तरह मुँह छिपायेंगे, यह समझ में नहीं आ रहा था। हमेशा से वंश-परम्परा से कलकत्ते में ही रहते आये हैं; कलकत्ते से बाहर भी कहीं कोई सम्भ्रान्त व्यक्ति जिन्दा रह सकता है, यह बात वे सोच भी नहीं सकते थे। यह आजन्म-परिचित स्थान, यह समाज, सदा के भाई-बन्धु, इन सबों से बिछुड़कर कहीं अज्ञात-वास में अगर बची-खुची जिन्दगी बितानी ही पड़ी, तो वे दुःसह दुर्भर दिन किस तरह कटेंगे—यह उनके सोचने की शक्ति से बाहर की बात थी और कन्या होकर

भी जिस अभागिन ने इस दण्ड का बोझ अपने बीमार पिता के कमजोर कन्धे पर लाद दिया है, उसे वे किन शब्दों से अभिशापित करें, यह भी उनकी चिन्ता से बाहर की बात थी।

सारी रात एक बार भी उनकी पलक न लगी और सबेरे उठते ही उन्हें अजीर्णता की शिकायत मालूम पड़ी; लेकिन जब आज दुनिया में अपना कहकर पुकारने वाला उन्हें कोई नहीं दिखाई पड़ा, तब निर्जीव की तरह बिछौने पर पड़े रहने में भी उन्हें घृणा होने लगी। इतनी बड़ी पीड़ा को भी आज वे शान्त चेहरे के अन्दर छिपाकर अन्य दिन की तरह ही बाहर आये और रेलवे स्टेशन के लिये गाड़ी बुलाने को नौकर मेजकर झटपट कपड़े-लत्ते सम्हालने के लिये उन्होंने बेहरा को आदेश दिया।

३१

दिन के तीसरे पहर शीत-कालीन सूर्य अस्त होने की तैयारी कर रहा था, और उसी की कम गरम किरणों से सोन नदी के किनारे का बालुकामय मैदान धाँय-धाँय कर रहा था। इसी समय एक बंगले के बरामदे में रेलिंग पकड़ कर अचला उसी ओर देखती हुई चुपचाप खड़ी थी। उसके अपने जीवन के साथ उस जलते हुए मरु-खण्ड का कोई गहरा सम्बन्ध था या नहीं, यह दूसरी बात है, लेकिन इन दो निर्निमेष नेत्रों की ओर क्षणमात्र नेत्रपात करते ही यह समझा जा सकता था कि उस प्रकार ताकने से कुछ दिखाई तो पड़ नहीं रहा था, सिर्फ सारा संसार एक विचित्र एवं विराट चित्रपट की तरह प्रतीत हो रहा था।

'जीजी !'

अचला चौंक उठी और उसने पीछे फिर कर देखा। जो युवती एक दिन 'राक्षसी' के नाम से अपना परिचय देकर आरा स्टेशन पर

उतर गई थी, यह वही है। नजदीक आकर अचला के उद्भ्रान्त व अत्यन्त श्रीहीन चेहरे की तरफ क्षणभर देखकर रूठने के स्वर में बोली—'अच्छा जीजी, सभी देख रहे हैं कि सुरेश बाबू अच्छे हो गये हैं, डाक्टर ने कहा है अब रत्ती भर भी भय नहीं, फिर भी जो दिन-रात तुम चिन्ता में मग्न रहती हो, मुँह से हंसी नहीं निकलती, यह क्या तुम्हारी ज्यादती नहीं है ? हमारे भी मालिक हैं, उनको दुख-बीमारी के वक्त हम भी व्याकुल हो जाती हैं लेकिन शपथ खाकर कहती हूँ बहन, तुम्हारे साथ हमारी तुलना ही नहीं हो सकती।'

अचला ने मुँह फेर कर सिर्फ एक साँस ली, कोई जवाब न दिया।

वह युवती कुछ रुष्ट होकर बोली—'छिः ! फुसकार कर लम्बी साँस क्यों ले रही हो !'—इतना कहकर कुछ देर तक इन्तजार करने के बाद भी जब अचला की तरफ से कोई जवाब नहीं मिला, तो उसका एक हाथ अपनी मुट्ठी में लेकर अत्यन्त करुण स्वर में उसने पूछा—'अच्छा सुरमा जीजी, सचसच बताना बहन, हमारे घर में घड़ी भर के लिये भी तुम्हारा दिल नहीं लगता, यही बात है न ? शायद काफी असुविधा और कष्ट होता है, सच है न ?'

अचला नदी की ओर जिस तरह देख रही थी, उसी तरह देखती रही किन्तु इस बार जवाब दिया—'तुम्हारे ससुर जी ने जो मेरा उपकार किया है वह क्या इस जन्म में कभी भूल सकूँगी बहन ?'

युवती हँसी और बोली—'भूलने के लिये ही जैसे तुमसे मैं इतना अनुनय-विनय कर रही हूँ !' और दूसरे ही क्षण बनावटी उलहने के स्वर में बोली—'और इसीलिये शायद उस वक्त पिताजी के इतना पुकारने पर भी तुमने कोई जवाब नहीं दिया था ? तुम सोचती होगी—बूढ़ा जब तब—'

अचला अत्यन्त विस्मय के साथ मुँह फिराकर बोल उठी—'नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता—'

राक्षसी ने जवाब दिया—'हो क्यों नहीं सकता ? अगर मैं खुद गवाह न होती तो मान भी लेती ! ठाकुर-घर से मेरे कान में आवाज आई—'सुरमा ! ओ बेटी सुरमा ?' इस तरह चार-पाँच बार मुझे सुनाई पड़ा कि पिताजी तुम्हें पुकार रहे थे। पूजा की तैयारी कर रही थी, उसे एक ओर रखकर दौड़ी हुई तो क्या देखती हूँ कि वे सीढ़ी से उतर रहे हैं। सच बता रही हूँ जीजी, मजाक नहीं करती।'

मन-ही-मन सिर्फ अचला ही यह समझ सकी कि वृद्ध का 'सुरमा' सम्बोधन उसके अन्यमनस्क हृदय का दरवाजा क्यों नहीं ढूँढ़ पाया ! फिर भी वह लज्जा और अनुताप से चञ्चल हो उठी। बोली—'शायद बहन, घर के भीतर—'

राक्षसी बोली—'किस घर के भीतर ! जिनके लिये घर है, वे तो उस वक्त बाहर घूमने चले गये थे ! आँगन से मैं साफ देख रही थी, ठीक इसी तरह रेलिंग पकड़े खड़ी थीं।'—इतना कहकर थोड़ी देर ठहरने के बाद मुस्कराती हुई बोली—'मगर तुम तो उस वक्त अपने में थीं नहीं बहन, जो बूढ़े-सूढ़े की पुकार सुन सकतीं ! जो सोच रही थीं, अगर मैं वह बता दूँ तो—'

अचला ने नीरव होकर नदी के उस पार नजर गड़ा दी, इन समस्त व्यङ्गयोक्तियों का जवाब देने की कोई कोशिश न की। मगर यहाँ यह बता देना उचित है कि राक्षसी नाम के साथ उसके स्वभाव का लेशमात्र भी सादृश्य न था और नाम भी उसका राक्षसी नहीं, 'वीणापाणि' था। जन्मते ही माँ के मर जाने के कारण दादी ने क्रुद्ध होकर यह कलंक लगाया था और अड़ोस-पड़ोस एवं सास-ससुर के निकट भी वह इस दुर्नाम को छिपा न रख सकी।

अचला के अचानक मुँह फिराकर नीरव हो जाने से मन-ही-मन वह लज्जित हो गई, अनुताप भरे स्वर में बोली—'अच्छा, सुरमा जीजी, तुमसे क्या एक हँसी-मजाक भी नहीं कर सकती बहन ! मैं क्या नहीं

जानती कि मेरे ससुर जी की तुम कितनी श्रद्धा-भक्ति करती हो ? उनसे हम लोगों ने सब कुछ सुना है। वे सबेरे सैर के लिये निकले थे और तुम इस अनजान जगह में रोती हुई डाक्टर ढूँढने निकली थीं। उसके बाद वे तुम्हारे साथ सराय में गये और तुम्हारे पति को घर ले आये। यह सब भगवान की कृपा है जीजी, अन्यथा इस घर में तुम लोगों के पैरों की धूलि पड़ेगी, सो क्या उस दिन गाड़ी में यह बात सोच सकी थी ? लेकिन मेरे सवाल का जवाब तो मिला नहीं। मैं पूछ रही थी—'हमारे यहाँ घड़ी भर के लिये भी तुम्हें अच्छा नहीं लगता वह मैं जान गई हूँ। मगर क्यों ? तकलीफ क्या है, यहाँ तुम लोगों को किस चीज की असुविधा हो रही है बहन, यही मैं जानना चाहती हूँ।'—इतना कहकर पहले की ही तरह थोड़ी देर इन्तजार करने के बाद अचानक इस युवती के मन में हुआ—चाहे जिस कारण से हो, वह उत्तर के लिये व्यर्थ ही प्रतीक्षा कर रही है। उस दिन जिसको उसके ससुर ने सम्मान के साथ आश्रय दिया था और वह स्वयं सुरमा जीजी कहकर उसे प्यार करती थी, जबरदस्ती उसका मुँह अपनी ओर खींचकर घुमाते ही उसने देखा—उसकी दोनों आँखों के कोने से आँसुओं की नीरव धारा बहती जा रही है; वीणापाणि स्तब्ध होकर खड़ी रह गई और अचला ने आँचल से आँसू पोंछकर शून्य दृष्टि दूसरी ओर फिरा ली।

दूसरे दिन तीसर पहर को तुरन्त आये हुए एक मासिक पत्र से एक छोटी-सी कहानी वीणापाणि पढ़कर अचला को सुना रही थी। एक बेंत की कुर्सी पर अध-लेटी हुई अचला कुछ सुन रही थी, कुछ शब्द उसके कानों में पहुँच भी नहीं पा रहे थे, इसी समय वीणा-पाणि के ससुर रामचरण लाहिड़ी महाशय सीढ़ी पर से ही 'बेटी राक्षसी' कहकर उपस्थित हुए। दोनों ही घबड़ा कर उठ खड़ी हुईं और वीणापाणि ने एक कुर्सी वृद्ध महाशय के निकट रखते हुए उत्सुकता के साथ पूछा—'क्या काम है पिताजी !'

ये वृद्ध महाशय अत्यन्त नैष्ठिक हिन्दू हैं। वे धीरे से आसन ग्रहण करके अचला के मुँह की ओर स्नेहपूर्ण एवं प्रशान्त दृष्टि डालते हुए बोले—'एक बात कहनी है बेटी। पुरोहित जी अभी-अभी आये थे, वे तुम पति-पत्नी दोनों के नाम पर संकल्प करके प्रतिदिन नारायण को जो तुलसीपत्र अर्पण कर रहे थे उसकी समाप्ति कल है। इसलिये कल तुम्हें बेटी, जरा कष्ट करके कुछ बेर तक भूखी रहना पड़ेगा। वे हमारे घर पर ही नारायण को लाकर कार्य समाप्त कर जायेंगे, तुम्हें और किसी दूसरी जगह न जाना पड़ेगा।' यह बात सुनकर अचला का सारा चेहरा एकाएक स्याह हो उठा। धीमी रोशनी के कारण वृद्ध की दृष्टि उस पर नहीं पड़ी किन्तु वीणापाणि की दृष्टि पड़ गयी। वह हिन्दू-घर की स्त्री है, जन्मकाल से ही इसी संस्कार के बीच पली है और रोगग्रस्त पति के कल्याण के लिये यह कितने उत्साह और आनन्द का विषय है सो वह संस्कार के सहश ही समझती है। मगर अचला के चेहरे पर इस उत्कट परिवर्तन को देख उसके आश्चर्य की सीमा न रही। फिर भी अपनी सखी की तरफ से उसने पूछा—'अच्छा पिताजी, नारायण पर तुलसी तो आपने चढ़वाई है सुरेश बाबू के लिये, यदि वे उपवास नहीं करते तो जीजी ही क्यों उपवास करें?'

वृद्ध महाशय मुस्कुरा कर बोले—'वे और तुम्हारी ये जीजी क्या भिन्न थोड़े ही हैं बेटी! सुरेश बाबू तो अपनी इस हालत में उपवास कर नहीं सकते इसीलिये तुम्हारी सुरमा जीजी को ही करना पड़ेगा। शास्त्र में ऐसी विधि है बेटी, किसी बात की चिन्ता नहीं।'

अचला ने इसके प्रत्युत्तर में भी जब हाँ-ना कुछ नहीं कहा, तो उसकी यह निरुद्यम नीरवता अचानक इस शुभचिन्तक वृद्ध की आँखों में पड़ गयी। उन्होंने सीधे अचला के मुँह की तरफ देखकर पूछा—'इसमें क्या तुम्हें कोई आपत्ति है सुरमा?'—कहकर अत्यन्त और पुनः-पुनः प्रतिवाद की प्रत्याशा से देखते रहे।

अचला एकाएक इसका भी कोई जवाब न दे सकी। कुछ क्षण चुप रहने के बाद धीरे से अत्यन्त मधुर स्वर में बोली—'उनसे कहने पर शायद वे खुद कर लेंगे।'

इसके बाद सभी चुप हो गये। यह बात कितनी ओछी और कितनी निठुर थी, सो जिस व्यक्ति ने इसे उच्चारण किया था, उसकी अपेक्षा शायद और किसी को अधिक अनुभव न हुआ होगा, मगर सिर्फ अन्तर्यामी को छोड़कर यह बात और कोई न जान सका।

वृद्ध महाशय उठ खड़े हुए और बोले—'तो फिर ऐसा ही होगा'—कहकर धीरे-धीरे नीचे उतर गये। नौकर रोशनी जला गया किन्तु दोनों उसी तरह संकुचित और कुंठित होकर चुपचाप बैठी रह गईं। मासिक पत्र की उस उतनी उत्तेजक और जबर्दस्त कहानी को समाप्त करने की शक्ति भी किसी में न रही।

बाहर अँधेरा गाढ़ा होने लगा और उसी को चीरकर नदी के पार की भूरी रेतीली भूमि एक छोर से दूसरी तक इन दोनों क्षुब्ध, मौन और लज्जित नारी के नेत्रों पर स्वप्न की तरह भासित होने लगी।

इसी तरह शायद बहुत समय कटता, लेकिन न जाने क्या सोचकर वीणापाणि अचानक अपनी कुर्सी अचला के पास खींचकर धीरे से अपना दाहिना हाथ सहेली की गोद में रखकर चुपके से बोली—'उस पार मैदान की तरफ देख-देखकर मेरे मन में क्या हो रहा था जानती हो जीजी? मालूम पड़ रहा था जैसे ठीक तुम्हीं हो। मानो ऐसे अँधेरे में घिरी हुई एक—यह क्या, इस तरह सिहर क्यों उठी बहन?'

अचला क्षण भर चुप रहने के बाद अस्फुट स्वर में बोली—'अचानक जैसे जाड़ा-सा मालूम पड़ा बहन।'

वीणापाणि उठकर दूसरे कमरे में गई और एक गरम कपड़ा लाकर यत्नपूर्वक अचला का सारा शरीर ढँककर अपनी जगह आ बैठी और बोली—'एक बात तुमसे पूछने की मेरी बड़ी इच्छा हो रही है

जीजी, मगर कुछ शर्म मालूम हो रही है। अगर तुम गुस्सा न करो तो—'

अज्ञात आशंका से अचला का हृदय धड़कने लगा। पीछे अधिक बोलने से कहीं गला काँपने न लग जाय, इस डर से सिर्फ एक बार 'नहीं' कहकर वह स्थिर हो गई।

वीणापाणि लाड़ से उसके हाथ को जरा दबाती हुई कहने लगी—'अब तुम मेरी जीजी हो, मैं तुम्हारी छोटी बहन हूँ। किन्तु उस दिन गाड़ी पर तो मैं तुम्हारी कोई लगती नहीं थी, तो फिर क्यों अपना परिचय मुझसे इस तरह छिपाना चाहती थी? जो तुम्हारे पति थे, उन्हें तुमने बताया कि वे तुम्हारे कोई नहीं होते और कहा था—'बीमार पति दूसरे डब्बे में हैं, उन्हें लेकर जबलपुर जा रही हूँ।' मगर तुम मुझे चकमा न दे सकी। मैं ठीक पहचान गई थी वे तुम्हारे कौन हैं। फिर तुमने बताया था, तुम लोग ब्रह्म-समाजी हो',—इतना कहने के बाद जरा मुस्कराकर फिर बोली—'लेकिन अब देख रही हूँ, तुम्हारे पति के जेनऊ का गुच्छा देखकर तो विष्णुपुर के पाठक महाशय का दल भी लज्जित हो सकता है। अच्छा बहन, क्यों इतना झूठ बोली थी, बताओ तो?'

अचला जबर्दस्ती एक सूखी हँसी हँसकर बोली—'अगर न बताऊँ?'

वीणा बोली—'अगर ऐसा है तो मैं ही बताऊँगी। मगर पहले शर्त लगाओ, अगर सच-सच बता दूँ तो मुझे क्या दोगी?'

अब अचला के हृदय में रक्त का संचालन मानो बन्द होने पर हो गया। उसके चेहरे पर जो मौत की सफेदी गहरी हो गई उस पर रात की धीमी रोशनी में वीणापाणि की नजर पड़ी या नहीं, यह कहना कठिन है, लेकिन वह फिर जरा मुस्कराकर बोली—'अच्छा, कुछ दो या न दो, अगर मैं सच्ची बात बता दूँ तो मुझे तुम क्या खिलाओगी, बताओ अचला जीजी?'

अचला का अपना नाम अपने कानों में जलती हुई अग्नि-शिखा की तरह प्रवेश कर गया और दूसरे ही क्षण वह एक प्रकार से अर्द्ध-अचेतन की तरह कठोर होकर बैठ गई।

वीणा कहने लगी—'हम दोनों बहनों का उतना दोष नहीं है बहन, जितना कि हमारे दोनों मालिकों का। एक आदमी ने तो ज्वर के वेग में तुम्हारा नाम प्रगट कर दिया और दूसरे आदमी ने उसी में से तुम्हारा सच्चा परिचय प्राप्त कर लिया।'

अचला ने बड़ी कठिनाई से अपनी धड़कती हुई छाती को सम्हालते हुए पूछा—'वह सच्चा परिचय क्या है जरा बताओ तो!'

वीणापाणि बोली—'यह सच हो या न भी हो बहन, लेकिन उनकी बुद्धिमत्ता का लोहा तुम्हें मानना ही पड़ेगा। वे एक रात को अचानक आकर कहने लगे—क्या तुम अपनी अचला जीजी के करतूत जानती हो? वे घर से भागकर आई हैं। मैं रुष्ट होकर बोली—'जाओ, चालाकी मत करो। अगर यह बात जीजी के कान में कहीं पड़ गई तो वे इस जन्म में तुम्हारा मुँह न देखेंगी।'

अचला कुर्सी की बाहें दोनों मुट्ठी में जोर से पकड़कर बैठी रही।

वीणा बोलने लगी—'उन्होंने कहा—मेरा मुँह वे चाहे देखें या न देखें मगर यह बात सत्य है, यह मैं शपथ खाकर कह सकता हूँ। या तो ननद के साथ झगड़कर आई हैं, या सास-ससुर के साथ न बनने के कारण पति को लेकर विरक्त होकर निकल आई हैं। सुरेश बाबू के रंग-ढंग देखकर तो यही मालूम पड़ता है कि अगर तुम्हारी जीजी उन्हें समुद्र में डूबने का हुक्म दे दें, तो उनमें ना करने की ताकत नहीं। इसके बाद जहाँ कहीं भी हो नाम बदलकर दोनों प्राणी कुछ दिन अज्ञात-वास में व्यतीत करेंगे, जब तक कि बूढ़ा-बूढ़ी सारी पृथ्वी छानकर बहू-बेटे को मना-मुनूकर घर लौटाकर नहीं ले जाते। अगर यह असल घटना न हो तो तुम मुझे—'

"मैंने कहा—'अच्छा, तुम्हारी ही बात सही, मगर गाड़ी में मुझ जैसी एक अजान मूर्ख स्त्री से जीजी को झूठ बोलने की क्या गरज पड़ी थी ?' इसका मेरे मालिक ने हँसकर जवाब दिया 'अगर तुम्हारी जीजी भी तुम्हारी ही तरह बुद्धिमती होतीं तो शायद उन्हें कोई गरज न होती। मगर वे तो ऐसी नहीं हैं। ज्योंही उन्हें मालूम हुआ कि तुम्हारा घर डिहरी में है, तुम दो दिन बाद डिहरी ही जाओगी, उसी वक्त वे अचला के बदले सुरमा, डिहरी के बदले जबलपुरयात्री और हिन्दू के बदले ब्रह्म-समाजी बन गईं। यह तुम्हारे दिमाग में नहीं आया राक्षसी, जो जबलपुर का टिकट खरीदकर यात्रा करने निकली हैं, वे अचानक गाड़ी बदलकर यहीं क्यों वापस आ जायेंगी और बीमार पति को लेकर किसी बंगाली के घर न जाकर उसी दूरवर्ती हिन्दुस्तानी मुहल्ले के बीच एक टूटी-फूटी सराय में जाकर क्यों ठहरतीं?"—कहते कहते वीणापाणि अचानक बगल से झुककर अचला के गले से लिपट गई और स्नेह तथा प्रेम में विभोर होकर उसके कान के पास मुंह ले जाकर अस्फुट स्वर में बोली—'बताओ न जीजी, क्या हुआ था ? देखो मैं तुम्हें छूकर आज शपथ लेती हूँ कि कभी किसी से यह बात न बताऊँगी।'

वीणापाणि के मुख से अपने बारे में इस सत्य आविष्कार का झूठा इतिहास सुनकर अचला का सारा शरीर मानो एक जड़ पदार्थ की तरह सहेली के आलिंगन में लुढ़क पड़ा। इस जीवन की चरम लज्जा मूर्त्ति धारण करके एक-एक पग करके किस ओर बढ़ी आ रही है, यह वह आँखों के सामने देख रही थी; परन्तु जब वह बिल्कुल अचानक अचिन्तनीय रूप से मुँह फिरा कर किसी और रास्ते से निकल गयी और उसे छुआ तक नहीं, उस वक्त इस विपुल सौभाग्य को वहन करने की शक्ति उसमें नहीं रही। सिर्फ दोनों आँखों से अविरल अश्रु-धारा को छोड़ कर बहुत देर तक उसमें जीवन का कहीं कोई चिह्न नहीं दिखाई पड़ रहा था।

इसी तरह कितने क्षण बीत गये। वीणापाणि बराबर अपने अंचल से अचला के आँसू पोंछकर स्नेह भरे करुणा स्वर में बोली—'सुरमा जीजी, तुम उम्र में बड़ी होने पर भी इस छोटी बहन की बात रख लो बहन, अब घर लौट जाओ। मैं कहती हूँ, यह यात्रा तुम लोगों के लिये शुभ नहीं रही। अनेक कष्ट के बाद यदि सोहाग बच गया है जीजी, तो व्यर्थ में रूठ कर गुरुजनों को अब और दुखी मत करो, उनको और फिक्र में न रखो। छोटी बनकर ससुर के घर लौट जाने में कोई शर्म नहीं, यह बेइज्जती की बात नहीं जीजी।'

क्षण भर चुप रह कर वह फिर बोली—'चुप क्यों रह गयीं बहन? क्या जाओगी नहीं? मा-बाप पर गुस्सा होकर घर छोड़ने के बाद से सुरेश बाबू तो अच्छे हैं नहीं। तुम्हारे मुँह से यह बात सुनकर वे खुश ही होंगे, यह मैं तुमसे निश्चय रूप से कह सकती हूँ।'

अचला आँखें पोंछती हुई इस बार सीधी होकर बैठी। आँखें उठाकर उसने देखा—वीणापाणि उसी तरह उत्सुक नेत्रों से उसकी ओर देख रही है। पहले तो जवाब देने में उसे बड़ी शर्म मालूम होने लगी, लेकिन जब उसने देखा कि बिल्कुल चुप रह जाने से भी वह युवती पीछा न छोड़ेगी, तो बड़ी कठिनाई से सारी लज्जा छोड़कर धीरे से बोली—'हम लोगों को घर लौट जाने का अब कोई रास्ता नहीं रहा वीणा!'

वीणा को विश्वास न हुआ। वह बोली—'रास्ता क्यों नहीं रहा? तुमसे मेरा अधिक दिनों का परिचय तो नहीं है, मगर जितना भी है उससे सारे संसार के सामने खड़ी होकर शपथ लेकर कह सकती हूँ कि तुम ऐसा काम कभी कर ही नहीं सकती जीजी जिसके लिये कोई तुम्हारा रास्ता बन्द कर सके। अच्छा, तुम अपने ससुराल का पता बता दो, हम लोग परसों सबेरे की गाड़ी से घर जा रहे हैं, पिता जी को साथ लेकर मैं खुद तुम्हारे घर जाऊँगी—

देखूँ, बूढ़ा-बूढ़ी मुझे क्या जवाब देते हैं। जो तुम्हारे सास-ससुर हैं वे मेरे भी तो हैं—उनके निकट जाने में मुझे कोई लज्जा नहीं।'

अचला चौंक कर बोली—'तुमलोग परसों देश जा रहे हो, यह बात तो मैंने सुनी नहीं ! यहाँ कौन-कौन रहेंगे ?'

वीणा ने कहा—'कोई नहीं, सिर्फ नौकर-चाकर घर की रखवाली करेंगे। मेरी बड़ी सास बहुत दिनों से मृत्यु-शय्या पर पड़ी हुई हैं, अब उन्हें बचने की कोई आशा नहीं। उन्होंने सबको एकबार देखने की इच्छा प्रगट की है।'

अचला ने पूछा—'तुम्हारा ससुराल कहाँ है ?'

वीणा बोली—'कलकत्ते में ही है पटलडाङ्गा मुहल्ले में।'

पटलडाङ्गा का नाम सुनकर अचला का चेहरा सूख गया। क्षण-भर चुप रहने के बाद धीरे से बोली—'वीणा, तो फिर हम भी कल ही यहाँ से चल देंगे। यहाँ अब और ठहरना ठीक न होगा।'

वीणापाणि हँस पड़ी। बोली—'क्या इसलिये शायद तुम लोगों को घर लौट चलने के लिये इतनी खुशामद कर रही हूँ ? अब तक शायद तुमने मेरी बातों का यही अर्थ समझा है। नहीं जीजी, मुझसे कसूर हो गया, तुम्हें और किसी तरह जाने के लिये मैं नहीं कहूँगी. जब तक इच्छा हो तुम इस कुटिया में रहो, इसमें से किसी को कोई आपत्ति न होगी।'

लेकिन इस व्यापूर्ण निमन्त्रण का अचला कोई उत्तर न दे सकी। क्षणभर मौन रहने के बाद उदास चेहरे से पूछा—'तुम लोगों का जाना क्या सचमुच ही निश्चय हो गया है ?

वीणा बोली—'ज़रूर निश्चित हो गया है। आज हम लोगों के लिये गाड़ी रिजर्व करा ली गई है। पिता जी के कमरे में झाँककर एक बार देखो तो पता चल जायगा कि सब कुछ बाँध-बूँधकर ठीक कर लिया गया है।

नौकरानी दरवाज़े के सामने आकर बोली—'बहूजी' माताजी तुम्हें एकबार रसोईघर में बुला रही हैं।'

'आ रही हूँ'—कहकर वह ज़रा मुस्कुराई और फिर अचानक दोनों बाहें अचला के गले में डालकर कान में बोली—'अब तक इतने लोगों की भीड़-भाड़ में तुम लोगों के दिन बहुत मुश्किल से कटे हैं। इस बार घर खाली है—कहीं कोई नहीं—आफत की परकाली मैं भी दूर हो जाऊँगी—इस बार समझी न मेरी प्यारी जीजी रानी !, इतना कहकर सहेली के कपोल पर दो अँगुली जड़कर जल्दी से दासी के पीछे-पीछे भाग गई।

आनन्द का यह एक अंश मयल-पवन की तरह इस सौभाग्यवती तरुणी के चञ्चल-पदक्षेप के साथ ही आँखों से ओझल हो गया, मगर कान में कही हुई दो अन्तिम बातें कानों में घरकर अचला वहीं पत्थर की मूर्ति की तरह स्तब्ध होकर बैठी रह गई। आज की रात और कलका का दिन मात्र बाकी है। इसके बाद और कोई विघ्न-बाधा नहीं—इस निर्जन नीरव घरके बीच—निकट और दूर, उसकी दृष्टि जहाँ तक जा सकती है—आँखें मलकर उसने भविष्य की ओर देखा—एकमात्र अपने और सुरेश को छोड़कर कोई भी वस्तु उसे दृष्टिगोचर न हुई।

३२

इस जनहीन भवन में केवल एक सुरेश को लेकर जीवन-यापन करना पड़ेगा और वह दुर्दिन प्रतिक्षण निकट आता जा रहा है। कोई रुकावट नहीं, कोई दूरी नहीं, कोई शर्म नहीं—'आज नहीं कल' ऐसा कोई बहाना तक करने का मौका न मिलेगा।

वीणापाणि ने कहा था—'सुरमा जीजी, ससुर का घर अपना घर होता है, वहाँ झुककर जाने में औरतों के लिये शर्म की कोई बात नहीं।'

हाय रे भाग्य ! उसका कौन है और कौन नहीं, इस सबका जमा-खर्च उसके अन्तर्यामी को छोड़कर और जानता कौन है ! तथापि आज भी उसका अपना पति है और अपना कहने के लिये उसका वही जला हुआ घर अब भी पृथ्वी की गोद से विलुप्त नहीं हुआ। आज भी वह क्षण भर के लिये ही सही उस जगह जाकर खड़ी हो सकती है !

बँधे हुए पशु के सामने का जनशून्य मैदान जब तक एकाएक आँखों से ओझल नहीं हो जाता तब तक जिस प्रकार वह एक ही जगह बार बार सिर धुनता रहता है, ठीक उसी तरह उसके विवश मन की प्रचंड कामना उसके हृदय के मध्य हाहाकार करती हुई बाहर का रास्ता ढूँढ़ निकालने के लिये विकल हो उठी। बगल के कमरे में सुरेश निश्चिन्त होकर सो रहा है, बीच का दरवाजा जरा खुला हुआ है और उसी के एक किनारे जमीन पर चटाई डालकर नीचे से ऊपर तक कम्बल में लिपटी हुई हिन्दुस्तानी नौकरानी सुख की नींद ले रही है। सारे घर के अन्दर कोई जग रहा है या नहीं—इसका कोई आभास नहीं मिलता—सिर्फ वही एकमात्र मानो अग्नि-शय्या पर पड़ी हुई जलने लगी। बहुत दिनों तक इस पलंग पर ही उसके बगल में वीणा सोती रही है, मगर आज उसके पति आ गये हैं, इसलिये वह अपने कमरे में सोने गई है, और, इस डर से कि कहीं इस चिन्ता-सूत्र को लेकर उनका बन्द कमरे के पलग पर सोना याद न आ जाय, और इससे उसका पागल और पीड़ित चित्त ईर्ष्या, अपमान और लज्जा के अणु-परमाणु से विदीर्ण न होने लगे इसी भय से उसने मानो अपने को अपनी जबर्दस्त शक्ति से उधर से लौटा लिया, किन्तु साथ-ही-साथ उसका सारा शरीर इस तरह थर-थर काँपने लगा जैसे जबर्दस्त बिजली से छू गया हो।

बगल के किसी एक कमरे से घड़ी में दो बजने का शब्द सुनाई पड़ा। शरीर से दुशाला फेंककर उठते हुए उसे ऐसा अनुभव हुआ कि इस जाड़े की रात में भी उसके सारे चेहरे पर पसीने की बूंदें आ गईं

हैं। उस वक्त शय्या से हटकर सिर की तरफ की खिड़की खोलते ही उसे दिखाई पड़ा कि कृष्णपक्ष की अष्टमी का खण्ड-चन्द्र ठीक सामने ही दिखाई दे रहा है, और उसी की स्निग्ध एवं मधुर चाँदनी में सोन नदी का नीला जल बहुत दूर तक चमक उठा है। सुनसान रात की ठंडी हवा ने उसके उत्तप्त ललाट पर स्नेह का हाथ फेर दिया और उसी जगह उसी खिड़की के नजदीक वह अपने भाग्य की शेष समस्या पर विचार करने बैठ गई।

यह बात अचला अच्छी तरह समझ गई थी कि उसके इस अभिशप्त, हतभाग्य जीवन की जो कुछ भी सच्ची घटना है वह सम्पूर्ण संसार के सामने सिर्फ एक अद्भुत उपन्यास के रूप में उपस्थित होगी और जिस दिन इस कहानी का प्रथम सूत्रपात हुआ था उस दिन से जितनी झूठी घटनाएँ सचाई का नकाब पहनकर आँखों के सामने उपस्थित हुई हैं, एक एक कर उन सबकी याद आने पर क्रोध, क्षोभ और दुख से उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे और जिस भाग्य-विधाता ने उसके यौवन के प्रथम आनन्द को झूठा करके ऐसे विकार और ऐसे उपहास की वस्तु बनाकर संसार के सामने प्रकट करने में रञ्चमात्र भी ममता नहीं दिखाई, उसी निर्मम और निष्ठुर को अगर वह बचपन से ही भगवान के रूप में स्मरण करने की शिक्षा पाई है तो उसकी वह शिक्षा एकदम व्यर्थ, एकदम निरर्थक हो गई है। आँखें पोंछती हुई वह बार-बार बोलने लगी—'हे ईश्वर! तुम्हारे ऐसे विशाल ब्रह्माण्ड में इस अभागिनी के जीवन को छोड़कर तुम्हारी खिलवाड़ के लिये क्या और कोई खिलौना नहीं था!'

मन-ही-मन बोली—'कहाँ थी मैं और कहाँ था सुरेश। ब्राह्म-परिवार की छाया से भी जिसकी घृणा और विवेक की सीमा न थी, भाग्य के परिहास से आज उसी व्यक्ति की आशक्ति का आदि-अन्त न रहा! जिसको किसी दिन उसने प्यार न किया आज वही उसके प्राणों का प्यारा है, क्या सिर्फ इस मिथ्या को ही सचने जाना? और जो सत्य

है उसे किसी के निकट आश्रय न मिला ! फिर उसी मिथ्या का उसके अपने ही मुख से प्रचार होने की क्या कोई जरूरत थी ? क्या भाग्य की इतनी बड़ी विडम्बना किसी के भाग्य में कभी घटी है ! बड़े दुख से पति को उसने पाया था, किन्तु भाग्य को वह भी सह्य न हुआ—उसकी चरम दुर्दशा का बोझ लादे हुए अचानक एक दिन सुरेश अभिशाप की तरह उसके देहात वाले घर में जा पहुँचा। उसके सुख का बसेरा जल कर खाक हो गया और साथ ही साथ उसकी तकदीर भी फूट गई !—जब कि वह इतना सब समझ गई थी तो फिर क्यों अपने रोगी पति को उसी की गोद में लाकर डाल दिया ! जिसको एक दिन वह करीब-करीब खो बैठी थी, सेवा के द्वारा फिर उसको पूर्णरूप से लौटा देने का यदि विधाता का संकल्प था तो आज क्यों वह अपनी दुख-दुर्दशा और लांछना-अपमान का कोई ओर-छोर नहीं पा रही है ?'

अचला दोनों हाथ जोड़ कर रुँधे हुए स्वर में कहने लगी—जगदीश्वर ! रोग मुक्त पति के स्नेहमय आशीर्वाद से सकल अपराधों का प्रायश्चित हो जाने का जो एक दिन तुमने मुझे विश्वास दिलाया था तो फिर इतनी बड़ी दुर्गति के बीच मुझे ढकेल क्यों दिया ? संसार में मेरा यह अपराध, कि मैंने संकोच नहीं किया और इतने बड़े काण्ड के बाद भी सुरेश को साथ चलने के लिये निमन्त्रण दिया दूर न हो सकेगा ! कलंक का यह दाग़ मिट न सकेगा—किन्तु अंतर्यामी, मेरे दुर्भाग्य से क्या तुम भूल कर बैठे ! इस हृदय के बीच हमेशा से क्या था उस पर क्या तुम्हारी दृष्टि न पड़ी ?'

पिता की चिन्ता और पति की चिन्ता को वह जी-जान से रोक कर ही दूर रख सकती थी, आज भी उन सारी दुश्चिन्ताओं को अपने पास न फटकने देती लेकिन उसे याद आ गयी मृणाल और सुरेश की बुआजी की बातें। प्रस्थान करने के समय स्नेह-सने करुण-कण्ठ से सती-साध्वी होने का जो उन्होंने आशीर्वाद दिया था

वह भी स्मरण हो आया। अपने बारे में उस धारणा की कल्पना करते ही अचानक मार्मिक वेदना से कुछ क्षण के लिये उसकी समस्त चेतना शक्ति मानो तिरोहित हो गयी और शरीर एवं मन की उसी अशक्त-अभिभूत अवस्था में खिड़की के सहारे माथा टेके बैठी थी और अनजाने ही आँखों से आँसू निकल रहे थे, इसी समय पीछे की तरफ कोमल पद-ध्वनि से चौंक कर उसने मुड़ कर देखा—नंगे बदन, नंगे पाँव सुरेश खड़ा है। क्षणभर की उत्तेजना में वह कुछ बोलने जा ही रही थी कि उमड़ते हुए आँसुओं के वेग से उसका गला रुँध गया। इस वेग को दमन करके फिर कुछ कहने की शायद उसकी इच्छा न हुई इसीलिये दूसरे ही क्षण मुँह फिरा कर उसने उसी तरह खिड़की पर माथा रख लिया; लेकिन जो आँसू अब तक उसकी आँखों से बूँद-बूँद करके टपक रहे थे वे ही मानो अचानक बाँध तोड़ कर उन्मत्त धारा की तरह छूटकर बाहर निकल पड़े।

कहीं कोई शब्द नहीं था, रात्रि की गम्भीर नीरवता घर के भीतर-बाहर विराज रही थी। पीछे की तरफ खड़ा हुआ सुरेश पत्थर की मूर्ति की तरह स्तब्ध हो गया—सहसा उसका सारा शरीर बाँस के पत्ते की तरह काँपने लगा और लहमें भर में ही उसने दोनों हाथ बढ़ा कर अचला का मस्तक खींचकर अपनी छाती से लगा लिया।

अचला ने अपने को छुड़ाकर आँचल से आँखें पोंछ लीं लेकिन बहुत बड़े आश्चर्य की बात तो यह थी कि जो व्यक्ति उसकी इतनी बड़ी विपत्ति का मूल कारण है उसके इस व्यवहार से आज अचला को उत्कट घृणा बोध नहीं हुई, बल्कि मधुर-स्वर में बोली—'तुम इस कमरे में आये क्यों?'

सुरेश चुप रह गया। शायद गले से आवाज न फूट निकलने के कारण ही उसने कोई जवाब नहीं दिया।

अचला धीरे से खिड़की बन्द करके बोली—'जाड़े में तुम्हारा हाथ काँप रहा है, जाओ, नंगे बदन अब और मत खड़े रहो—अपने कमरे में जाकर सो जाओ।

सुरेश की आँखें जल उठीं और गला काँपने लगा। वह अचला का हाथ अपने हाथ में खींचकर अस्फुट स्वर में बोला—'तो फिर तुम भी मेरे कमरे में चलो।'

अचला क्षणभर के लिये अवाक होकर विस्मय से उसके मुँह की तरफ़ देखती रही, इसके बाद सिर्फ़ इतना बोली—'नहीं, आज नहीं।'—इतना कहकर उसने धीरे से अपना हाथ छुड़ा लिया।

इस शान्त एवं संयत निषेध के अन्दर कौन सा भाव छिपा हुआ था इसे निश्चित रूप से न समझ सकने के कारण सुरेश चुप खड़ा रहा। अचला उसकी तरफ़ बगैर देखे ही फिर बोली—'मुझे जगी हुई समझकर ही क्या तुम इस कमरे में घुसे थे?'

सुरेश आहत होकर बोला—'नहीं तो क्या तुम्हें सोई हुई जानकर ही घुसा हूँ—ऐसी आशा तुम करती?'

'आशा?'—अचला मुँह फिराकर ज़रा हँस दी। इस तीखे एवं कठोर हास्य रूपी दीप के अत्यन्त क्षीण आलोक के सामने भी सुरेश की आँखें स्थिर न रह सकीं। वह हँसी मानो साफ-साफ बता रही हो—'अरे कायर! निद्रित रमणी की कोठरी में जो चोर की तरह घुसे, उस पुरुष के महत्त्व का क्या तुम आज भी दावा कर रहे हो?' लेकिन मुँह से वह कुछ न बोली। क्षणभर बाद खिड़की को छोड़कर उठ खड़ी हुई और धीरे-धीरे बोली—'तुम्हारा शरीर ठीक नहीं, अब और मत जागो—जाओ, सो जाओ।' इतना करकर धीरे से बिछौने पर आकर शरीर को नीचे से ऊपर तक कंबल से ढककर लेट गई।

कुछ देर किंकर्तव्यविमूढ़ होकर सुरेश जहाँ-का-तहाँ खड़ा रहा, इसके बाद चुपचाप दबे पाँव अपने कमरे में चला गया।

३३

पाँच-छ रोज हुए, दो-एक नौकर-नौकरानी को छोड़ घर के सभी आदमी कलकत्ते चले गये हैं। सिर्फ रामचरण बाबू नहीं जा सके। शायद किसी ज़रूरी काम से उन्हें जाते-जाते रुकना पड़ा। इधर कई दिनों से वे अपने ही काम में फंसे रहने के कारण बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ रहे थे! अचानक आज तड़के ही सुरमा-सुरमा पुकारते हुये ऊपर के बरामदे में आकर खड़े हुये। जाड़े के दिनों में इतने तड़के किसी ने बिछौना भी नहीं छोड़ा था, पुकार सुनकर अचला घबड़ायी हुई दरवाज़े पर आ खड़ी हुई और क्षणभर बाद सुरेश भी आँखें मलते-मलते एक दूसरे दरवाज़े से बाहर निकल पड़ा। हाल ही जगे हुये दम्पति को विभिन्न कमरे से बाहर होते देखकर इस वृद्ध का हँसता हुआ चेहरा जो सहसा विस्मय से सन्दिग्ध हो उठा—सुरेश की नज़र उस पर भले ही न पड़ी हो, मगर अचला की आँखों से वह छिपा न रहा।

राम बाबू सुरेश की तरफ देखकर पश्चात्ताप के स्वर में बोले—'सुरेश बाबू सबेरे ही सवेरे शोर-गुल मचाकर आपकी नींद तोड़ दी, मुझसे कसूर हो गया।'

सुरेश हँसकर बोला—'यह कसूर हुआ? मैं तो जगा ही था, बाहर से पुकारने की बात तो दूर रही, ढोल पीटकर भी कोई मेरी कोठरी की शान्ति भंग नहीं कर सकता! मगर इतने तड़के ही आप कहाँ जा रहे हैं?'

वृद्ध महाशय अचला को लक्ष करके बोले—'आज मुझे अपनी सुरमा बिटिया को ज़रा तकलीफ देने की ज़रूरत पड़ी है'—इतना कहकर इस बार अचला की ओर मुड़े और मुस्कुराते हुए बोले—'मेरी पालकी तैयार है, इसी वक्त बाहर जाना पड़ेगा, शायद दो-तीन बजे से पहले

लौट न सकूँगा, इस बूढ़े के लिये आज थोड़ा दाल-भात बनाकर रखना बेटी जिससे उतने अबेर फिर मुझे चूल्हा न फूँकना पड़े।'

ये अत्यन्त नैष्ठिक निरामिष भोजी ब्राह्मण पत्नी और पुत्र बधू के सिवाय और किसी के हाथ का बनाया भोजन कभी नहीं खाते। उनकी पाकशाला भी बिल्कुल अलग थी, यहाँ तक कि उस घर में सब को जाने का अधिकार भी न था। बीच बीच में उन्हें अपना भोजन आप तैयार करने की आदत थी इसीलिये स्त्रियाँ भी घर छोड़कर देश जा सकती थीं। इन कई दिनों से उनकी यही व्यवस्था जारी थी मगर आज अचानक इस अनजान अपरिचित महिला पर रसोई का भार सौंपने के प्रस्ताव से अचला विस्मय, और सबसे अधिक भय से विह्वल हो उठी।

रामबाबू उसके उदास चेहरे की तरफ देखकर स्नेह-भरे स्वर में बोले—'तुम सोच रही होगी बेटी, यह बूढ़ा आज क्या बक रहा है! चूल्हे चौके को लेकर जिसने इतना आचार-विचार, इतना अडम्बर खड़ा कर रखा है, आज उसे हो क्या गया है? होने दो इसे। राक्षसी के हाथ का खाने में जब कोई आपत्ति नहीं तब तुम्हीं अगर थोड़ा दाल-भात तैयार कर दो तो मुझे आपत्ति क्यों होगी! चाहे भला हो या बुरा बेटी, उतनी देर में लौटकर मैं फिर हाँडी नहीं चढ़ा सकूँगा।' —इतना कहकर अचला के निरुत्तर चेहरे की ओर क्षणभर देखने के बाद पुनः मुस्कुराकर बोले—'तुम जरूर मन-ही-मन सोच रही होगी कि इस बूढ़े में जब अचानक इतनी उदारता आ गई है तो मुझे तकलीफ न देकर हिन्दुस्तानी रसोइये के हाथ का खाने में ही क्या हर्ज है। मगर नहीं बेटी, ऐसा नहीं हो सकता। आज भी यह बूढ़ा उतना ही अन्धविश्वासी, उतना ही कुसंस्कार से आच्छन्न है—किसी हालत में भी इस सन्ध्या-गायत्री-न करने वाले हिन्दुस्तानी 'महाराज' के हाथ का अन्न मेरे गले के नीचे नहीं उतरेगा और मैं अपनी राक्षसी बेटी को और तुमको इसी बीच बिल्कुल एक समझने लगा हूँ, यह भी सत्य नहीं। लेकिन जितना भी सोचता हूँ, मेरे मन में यही आता है कि यदि मेरी

माँ भी अगर एक दिन राँधकर खिला दे तो वह अन्नपूर्णा का प्रसाद नहीं होगा, यह मैं किसी भी तरह मानने को तैयार नहीं। मगर अब और विलम्ब नहीं कर सकता बेटी। और जो कुछ कहना बाकी रहा है वह सब खाते-खाते कहूँगा। और उसी वक्त का बोलना सबसे अधिक सच्चा भी होगा।'—इतना कहकर वृद्ध ज्योंही जाने को तैयार हुए कि अचला घबड़ा उठी। क्या बोले—इसका निर्णय न कर सकने पर सबसे पहले जो बात जबान पर आ गई उसी को बोल उठी—'लेकिन मैं तो अच्छी रसोई बनाना नहीं जानती। मेरा बनाया भोजन आप को पसन्द तो होगा नहीं।'

वृद्ध रामबाबू मुड़कर खड़े हो गये और ज़रा मुस्कुराकर बोले—'इस बात पर क्या मैं विश्वास कर सकता हूँ बेटी!'

अचला ने कहा—'रसोई बनाना क्या सभी जानती हैं!'

वृद्ध ने जवाब दिया—'यह तो मैं कह भी नहीं रहा हूँ कि सभी जानती हैं।'

अचला इस बात का कोई जवाब न दे सकने के कारण चुप हो रही। किन्तु सुरेश के लिये वहाँ खड़ा रहना एक प्रकार से असम्भव हो उठा। अचला के मुरझाये हुए चेहरे की तरफ तिरछी नजर से देखकर वह उसकी वेदना को समझ गया। इस वृद्ध का संस्कार, उसका हिन्दू आचार-विचार अच्छा हो या बुरा, सच्चा हो या झूठा, उसको बनाकर खिलाने में जो कुत्सित बहाना छिपा हुआ है, यह बात अचला से छिपी हुई नहीं है, और ऐसी हालत में इस भद्र नारी के हृदय का विवेक छिपाने की इस गम्भीर दुष्कृति से अपने को किसी भी तरह मुक्त नहीं कर पा रहा है इसकी झलक उसके श्रीहीन पीले चेहरे पर स्पष्ट रूप से अंकित पाकर सुरेश किसी भी तरफ दृष्टिपात किये बगैर मुँह-हाथ धोने के बहाने जल्दी-जल्दी सीढ़ी से नीचे उतर गया।

'तो मैं अब चला'—कहकर साथ-ही-साथ रामचरण बाबू ने भी सुरेश का अनुसरण किया। क्षणभर के लिये अचला हतबुद्धि-सी होकर

खड़ी रही, इसके बाद ही बलपूर्वक अपने को होश में लाकर पुकार उठी—'एकबार सुनिये तो—'

वृद्ध महाशय मुड़े और उन्हें दिखाई पड़ा मानो सुरमा कुछ कहना चाहती है, मगर वह नीची निगाह किये खड़ी है। कई कदम आगे बढ़कर बोले—'और एक बात तुमसे कहनी है बेटी, जब कि तुम्हारा सकोच किसी भी तरह दूर नहीं हो रहा है। तुम जानती हो सुरमा बेटी, बचपन में मैं अपने मुहल्ले का 'दादा' कहा जाता था। तुम्हारे बाप से मैं उम्र में शायद छोटा भी नहीं होऊँगा! तो फिर मुझे 'ताऊजी' कहकर क्यों नहीं पुकारती बेटी?'

अचला यह जानती थी कि ये वृद्ध महाशय उसे अत्यन्त प्यार करते हैं। प्यार की इस प्रकटता से उसकी आँखों में आँसू आ गये। इसीलिये चुपचाप उसने सिर्फ गर्दन हिलाकर अपनी रज़ामन्दी ज़ाहिर कर दी।

वृद्ध महाशय ने पूछा—'क्या कुछ और कहना है?'

अचला उसी तरह चुपचाप क्षणभर जमीन की तरफ देखती रही, फिर इस बार शायद अपनी सारी ताकत बटोरकर अस्फुट स्वर में बोल पड़ी—'मगर मेरे पिताजी ब्रह्मसमाजी थे।'

रामचरण बाबू अचानक चौंक पड़े। बोले—'वे सचमुच ब्रह्मसमाजी थे, या कुछ लोग कलकत्ते जाकर दो दिन के लिये शौक से जैसे ब्रह्मसमाजी बन जाते हैं, वैसे ही? वे ब्रह्मसमाजियों में बैठकर हिन्दुओं को इतना कसकर गालियाँ देते हैं कि वैसी गालियाँ शायद ब्रह्मसमाजियों के मुँह से कभी निकल भी न सकेंगी। इसके बाद जब वे ही घर लौटकर अपने समाज में सम्मिलित होने के बाद उन्हीं ब्रह्मसमाजियों को ऐसी-ऐसी गालियाँ सुनाते हैं कि उस तरह के मधुर बचन हिन्दुओं के चौदह पुरखे भी कभी उच्चारण नहीं कर सकते तो बेटी, तुम्हारे पिता उसी तरह के ब्रह्मसमाजी तो नहीं थे? अगर ऐसी बात हो तो मुझे जरा भी आपत्ति नहीं।'

अचला का चेहरा लज्जा से लाल हो उठा, उसने सिर्फ़ इतना ही कहा—'नहीं, वे सच्चे ब्रह्मसमाजी थे।'

उत्तर सुनकर वृद्ध जरा सहम गये। लेकिन कुछ क्षण बाद ही प्रफुल्ल मुख से बोले—'रहने दो अपने पिताजी को तुम ब्रह्मसमाजी, मगर उनकी कन्या तो अब उनकी कर्जखोर नहीं है जो उससे भय किया जाय। बल्कि जिनके साथ तुमने धर्म में साझीदारी ग्रहण की है. जब वे हिन्दू हैं, उनके गले में यज्ञोपवीत सुशोभित हो रहा है, जब सूत के उन कतिपय भारों का वे अब भी अपमान नहीं करते, तब बाप का कर्म तो तुम्हें छू भी नहीं सकता। मगर तुम कितनी भी बहाने बाजियाँ क्यों न करो सुरमा, इस बूढ़े ताऊ को आज और चकमा नहीं दे सकतीं। आज तुम्हें भात राँधकर खिलाना ही पड़ेगा। इसीलिये बाप की शिक्षा के प्रभाव से तुम उस दिन उपवास नहीं करना चाह रही थी। आज उसकी सारी कसर निकाल कर ही छोड़ूँगा।'—इतना कहकर उन्हें फिर जाते देखकर अचला उसी क्षण अपने विक्षुब्ध भाव का अतिक्रमण करके सुस्पष्ट स्वर में बोली—'अच्छा, ताऊजी, अगर मैं भी ब्राह्म-महिला होऊँ तो क्या आप मेरे हाथ का नहीं खायगे!'

वृद्ध बोले—'नहीं! मगर सो तो तुम हो नहीं, सो तो तुम हो ही नहीं सकतीं।'

अचला ने प्रश्न किया—'लेकिन अगर मैं वही होती तो क्या सिर्फ़ अपने कर्म की भिन्नता के कारण ही आपके लिये अस्पृश्य हो जाती?'

वृद्ध बोले—'अस्पृश्य क्यों होगी बेटी, अस्पृश्य नहीं। मगर तुम्हारे हाथ का खा नहीं सकता।'

इस सम्बन्ध में आज उसे अनेक बातों का जानना जरूरी था। इसीलिये वह चुप बैठी न रह सकी, बोली—'क्यों नहीं खा सकते, क्या घृणा से?

वृद्ध एकाएक कोई उत्तर न दे सके, सिर्फ़ एक टक इस युवती के मुँह की ओर देखते रहे।

अचला सारी लज्जा का परित्याग कर चुकी थी, वह बोली—'ताऊ जी, आप में कितनी बड़ी माया-दया है, जिसके कितने साक्षी इस भूतल पर हैं मैं जानती हूँ, लेकिन मुझसे बढ़कर साक्षी कोई दूसरा नहीं, तो फिर आप जैसे मनुष्य का मन इतना अनुदार कैसे हो सकता है, यही मेरी समझ में नहीं आता। आप कैसे मनुष्य से इस तरह घृणा कर सकते हैं?

वृद्ध अकस्मात् विकल होकर बोल उठे—'मैं घृणा करता हूँ! किससे बेटी? मुझे घृणा करते कब देखा बेटी?

अचला बोली—जिसके हाथ का छुआ हुआ आपके लिये अस्पृश्य है वही आपके घृणा का पात्र है—उसी से आप मन-ही-मन घृणा करते हैं! और घृणा जो करते भी हैं उसे हमेशा की आदत के कारण भूल गये हैं। अपने उस हिन्दुस्तानी नौकर की बात छोड़ दें, रसोइये के हाथ का भी बना हुआ भोजन आपके गले से नहीं उतरेगा, यह बात आपने अपने मुँह से ही बताई है। इससे देश की कितनी क्षति है, कितनी अवनति हो रही है, सो तो—'

वृद्ध चुपचाप सुन रहे थे, अचला की उत्तेजना को भी लक्ष्य कर रहे थे। उसकी बात अचानक खत्म हो जाने पर जरा हँसकर बोले—'बेटी, हम घृणा किसी भी मनुष्य से नहीं करते। जो शिकायत तुम कर रही हो, वह शिकायत साहेब लोग करते हैं, और उन्हीं से तुम्हारे पिताजी ने सीखा है—और उनसे सीखी हो तुम। अन्यथा मनुष्य भगवान का रूप है—यह ज्ञान सिर्फ उन्हीं लोगों का नहीं है, हम लोगों का भी था, और अब भी है।'

इसी समय नीचे से एक अस्पष्ट शोर-गुल सुनाई पड़ रहा था; वृद्ध उस तरफ एक क्षण कान सतर्क करके बोले—'सुरमा खाना ही जिनके लिये सबसे बड़ी वस्तु है आडम्बर ही जिनकी सभ्यता है, उनके

साथ हमारा मेल नहीं हो सकता। हम लोगों का खाना भात-दाल जै तुच्छ वस्तु है, बस उसी का जरा आज इन्तजाम करके रखना—मुँह ग्रास डालते वक्त और आलोचना की जायगी कि हम किससे कितः घृणा करते हैं और देश की अवनति उससे कितनी हो रही है—लेकि शोर-गुल बढ़ता जा रहा है—बस करो बेटी मैं चला।'—इतना कहक वे जरा जल्दी से नीचे उतर गये।

३४

करीब तीसरे पहर भोजन समाप्त करने के बाद राम बाबू तृप्ति औ आधिक्य की परिचायक एक ऊँची डकार लेकर जब आसन पर उठने लगे तो अचला बड़े कष्ट से जरा हँसकर बोली—'मगर ताऊजी जिस दिन आप जानेंगे कि आज आपकी जात चली गई है तो उ दिन नाराज न होइयेगा, यह मैं कहे देती हूँ।'

वृद्ध बड़े स्नेह से मधुर हँसी के साथ जरा गर्दन हिलाते हु बोले—'अच्छा बिटिया, वही होगा'—इतना कहकर मुँह धोने के लिये घर से बाहर चले गये। उनकी खड़ाऊँ के खट्‌खट् शब्द जबतक सुनाई पड़े तबतक अचला की सारी नजर मानो उसी आवाज का अनुसरण करती गई; उसके बाद कब वह शब्द विलीन हो गया, बाहरी दुनिया कब उसकी चेतना से बिलाकर उसे पत्थर की तरह बना दिया यह उसके पता भी न चला।

बहुत दिनों की पुरानी हिन्दुस्तानी नौकरानी बंगला भाषा तथा बंगालियों के आचार, व्यवहार, चाल-ढाल के बारे में भी बहुत कुछ जान चुकी थी, वह किसी काम से इधर आकर बहूजी (अचला) के बैठने के तरीके को देखकर आश्चर्य-चकित हो गई। उम्र में बड़ी होने के कारण, अधिकार जताती हुई अपनी सीखी हुई बंगला में उसे फटकार बताकर अबेर की तरफ अचला का ध्यान उसने दिलाया और

पूछा—'बहूजी, आज खाने-पीने की क्या कोई जरूरत नहीं है जो इस तरह चुपचाप बैठी हो ?'

अचला ने चौंककर आँखें उठा कर देखा—अब दिन बाकी नहीं रहा, जाड़े की सन्ध्या करीब-करीब आ पहुँची है। दीप्ति-विहीन एक निष्प्रभ शान्ति समस्त आकाश में व्याप गई है, लज्जित होकर वह उठ खड़ी हुई और हँसती हुई बोली—'मैं बिल्कुल शाम के बाद ही खाऊँगी लालू की माँ। आज कोई उतनी भूख-प्यास नहीं है।'

लालू की माँ विस्मित होकर बोली—'बड़े बाबू के खाने के बाद ही तुम खाओगी—यह तुमने पहले ही जो कहा था बहूजी ?'

'न—अब एकदम रात को खाऊँगी'—इतना कहकर अधिक बहस का मौका दिये बगैर ही अचला जल्दी से ऊपर चली गई।

जरा फुरसत पाते ही वह ऊपर के बरामदे में रेलिङ्ग के निकट कुर्सी खींचकर नदी की ओर चुपचाप देखती रहती। आज की रात भी वह उसी तरह बैठी हुई थी कि अचानक राम बाबू के चप्पल का शब्द सुनकर अचला ने फिर कर देखा—वृद्ध महाशय एकदम बरामदे के बीच में आ खड़े हुए हैं और कुछ कहने से पहले ही अपने हाथ का हुक्का एक कोने में रखकर कुर्सी पर बैठ गये हैं। जरा मन्द मुस्कान के साथ बोले—'उसी बात पर जरा विचार करने आया हूँ सुरमा, तुम्हारे ब्रह्मज्ञानी पिताजी की बात ठीक है, या इस बूढ़े ताऊ की बात सही है, तर्क के द्वारा किसी एक सिद्धान्त पर पहुँचे बगैर मैं आज नीचे नहीं जाने का।'

अचला समझ गई, यह वही जाति-भेद का प्रश्न है, शान्त स्वर में बोली—'मैं तर्क करना क्या जानूँ ताऊजी !'

राम बाबू सिर हिलाते हुए बोले—'अरी बस करो, तुम क्या नीचे आदमी की बेटी हो बिटिया ! फिर भी यह बात बिल्कुल मिथ्या थोड़ी ही है, इसीलिये तो बच गया, नहीं तो उस वक्त तो मैं हार ही गया था समझी !'

इस वक्त अचला के मन की हालत ऐसी नहीं थी कि वह किसी बात को लेकर आलोचना करे; वह इस तर्क की लड़ाई से अपने बचाव का एक रास्ता देखकर बोली—'अगर ऐसी ही बात है, तो फिर और तर्क करने की जरूरत क्या है ताऊजी ! आप ही की तो जीत हुई है !' जरा ठहरकर फिर बोली—'जो एक बार हार चुकी है, उसे फिर फिर दुबारा हराने में फायदा क्या है आपको ?'

राम बाबू तत्काल कोई उत्तर न दे सके। उनकी उम्र काफी हो चुकी है, दुनिया में उन्होंने बहुत-सी चीजें देखी हैं, इसलिये यह थका हुआ कण्ठ-स्वर भी उनसे छिपा न रहा—यह स्त्री सुखी नहीं है, इसके दिल में एक भयानक वेदना प्रज्वलित अग्नि की तरह दिन-रात जल रही है—इसकी झलक भी उसके थके हुए पीले चेहरे की तरफ देखने से स्पष्ट मालूम पड़ रही थी। क्षणभर मौन रहने के बाद अचानक जरा हँसने की चेष्टा करते हुए अत्यन्त स्नेह-सने स्वर में बोले—'नः—बहाना नहीं चलेगा बेटी ! बूढ़ा आदमी हूँ, बकना अच्छा लगता है—शाम के वक्त अकेले पड़े-पड़े घबड़ा रहा था, इसीलिये सोचा कि झूठ-मूठ कुछ बककर बिटिया रानी को जरा चिढ़ा आऊँ, मगर चालाकी पकड़ गई।'—इतना कहते-कहते उन्होंने हुक्का लेने के लिये झुककर हाथ बढ़ाया।

वे जाने के लिये ही हुक्का पकड़ रहे हैं, अचला यह समझ गई। और नीचे जाकर अकेले में इस बूढ़े का वक्त बहुत तकलीफ के साथ कटेगा—यह सोचकर उसका मन दुखी हो उठा। इसीलिये वह चौंककर कुर्सी से उठ गई और खुद हुक्के को उठाकर वृद्ध के हाथ में देती हुई बोली—'आप जितना तमाखू पीना चाहें यहीं बैठकर पियें, मगर अभी किसी भी तरह आपको यहाँ से उठने न दूँगी।'

वृद्ध हुक्का हाथ में लेते हुए हँसकर बोले—'अरे बाप रे, एकदम लगाम इतनी ढीली मत कर दो बेटी, आखिर में सम्हाल न सकोगी। मैं मुँह बन्दकर दम लगाने में किस तरह मशगूल हो जाता हूँ, सो तो

तुमने अभी देखा नहीं। बल्कि अच्छा तो यही होगा कि थोड़ा-बहुत बक लेने दो—'

'कहीं इस बूढ़े आदमी का दम न घुटने लगे, यही बात है न ताऊजी ? अच्छा, यही सही। मगर किस विषय पर बकना शुरू कीजियेगा, बताइये तो !'

राम बाबू एक दम लगाकर धुआँ ऊपर की ओर छोड़ते हुए बोले—'तब तो मुश्किल में डाल दिया तुमने बेटी। इस तरह के प्रश्न से बड़े-बड़े वक्ताओं के मुँह भी बन्द हो जाते हैं।'

'अच्छा ताऊजी, अगर आपको किसी दिन इस बात का पता चल जाय कि आज जबर्दस्ती जिसके हाथ का बना भोजन पाया है, उससे नीच, उससे घृणित इस पृथ्वी पर और कोई नहीं है, तब आप क्या करेंगे ? और उसके प्रायश्चित्त की विधि तक अगर शास्त्र में न मिले तब !'

वृद्ध बोले—'फिर तो टटा ही मिट जाय, बेटी, प्रायश्चित्त भी न करना पड़ेगा।'

'मगर मुझ पर उस वक्त आपको कितनी घृणा होगी ?'

'किस वक्त बिटिया ?'

'जिस वक्त आपको पता चलेगा कि मेरी कोई जात तक नहीं है।'

राम बाबू हुक्के को मुँह से अलग करके उसी धीमी रोशनी में क्षणभर उसके चेहरे की ओर देखकर धीरे-धीरे बोले—'तुम लोगों की यही बात मुझे बिल्कुल समझ में नहीं आती बेटी। और 'तुम लोगों की' ये शब्द मैं क्यों कह रहा हूँ सो जानती हो सुरमा बेटी, मैं अपने लड़के के मुँह से भी यही शिकायत सुनता हूँ। वह तो साफ कहता है—इस छूआ-छूत के अड़ंगे को लेकर ही सारा देश धीरे-धीरे सर्वनाश की ओर चला जा रहा है। कारण, इसकी जड़ घृणा है, और घृणा के बीच से कोई बड़ा फल प्राप्त नहीं किया जा सकता।'

अचला मन-ही-मन अत्यन्त विस्मित हो उठी। इस घर में भी इस प्रकार की आलोचनाएँ किसी प्रकार प्रवेश कर सकती हैं, इसकी उसे धारणा न थी। वह बोली—'तो क्या यह बात झूठ है ?'

राम बाबू ज़रा हँसकर बोले—'झूठ है, ऐसा जवाब तो दिया नहीं बेटी। किन्तु सच भी नहीं है। शास्त्र का विधि-निषेध मानकर चलता हूँ, बस इतना ही। जो इससे कुछ और आगे बढ़ते हैं—ये ही जैसे मेरे गुरुदेव—वे खुद अपने हाथ से बनाकर खाते हैं, अपनी कन्या तक को हाथ नहीं लगाने देते। तो इससे क्या यही निर्णय किया जाय कि वे अपनी एकमात्र सन्तान से घृणा करते हैं !'

अचला इसका जवाब न दे सकने के कारण मौन रह गई।

वृद्ध महाशय हुक्के से कुछ और कश लगाकर बोले—'बेटी, जवानी में मैंने कितने देश घूमे हैं। कितने बन-जंगल, पहाड़-पर्वत और न जाने कितनी तरह के लोग, कितनी तरह के आचार-व्यवहार, उन सब का नाम भी तुम न जानती होगी,—कहीं तो छूआछूत का विचार है, और कहीं उसका चिन्ह तक नहीं; इसीलिये तो बेटी, वे हमेशा से असभ्य ही रहे, उसी तरह नीच के नीच ही बने रहे।'—इतना कहने के बाद जले हुए हुक्के से फिर एक-दो बेकार कश खींच उसे जला हुआ जानकर वृद्ध महाशय ने उसे कोने में टिका दिया। अचला जिस तरह चुपचाप बैठी थी, उसी तरह बैठी रही।

राम बाबू खुद भी थोड़ी देर तक स्तब्धभाव से बैठे रहने के बाद सीधे होकर बैठे और बोले—'असल बात क्या है जानती हो सुरमा, तुम लोगों ने साहबों से सबक लिया है। वे लोग समृद्धिशाली हैं, राजा हैं, धनी हैं। उनके बीच अगर पाँव ऊपर करके हाथ के बल चलने की व्यवस्था होती, तो तुम लोग भी चलते—ठीक इसी तरह चलना सीखे बिना उन्नति की कोई आशा नहीं।'

इस तरह के तर्क और युक्तियाँ अचला कई बार बँगला के दैनिक अखबारों में पढ़ चुकी थी, इसीलिये किसी तरह का जवाब न देकर

सिर्फ़ जरा मुस्करायी। उसकी मुस्कराहट वृद्ध को दिखाई पड़ गई, लेकिन मानों उन्होंने देखा ही न हो ऐसा भाव दिखाते हुए फिर से कहना आरम्भ किया—'श्रीधाम, श्रीक्षेत्र में जब-जब गया, तो जाने-अनजाने कितने आदमियों के बीच जा पड़ता। वहाँ छूआ-छूत का कोई विचार नहीं, और न इस तरह की बात ही कभी मन में उठती है। किन्तु घृणा के बीच इसका जन्म होने से क्या मैं उतनी आसानी से उस काम को कर सकता था! यही तो मैं करीब-करीब किसी के हाथ का छुआ नहीं खाता, लेकिन इससे क्या रास्ते पर पड़े उन बड़े-बड़े दीन-दुखियों के प्रति मेरे मन में घृणा उत्पन्न होती है—'

अचला व्यग्र—व्याकुल स्वर से उन्हें रोकती हुई बोल उठी—'मैं क्या आपको जानती नहीं हूँ ताऊजी? इतनी दया इस संसार में और है किसके?'

दया नहीं बेटी, दया नहीं—प्रेम। उन्हीं लोगों से मुझे अधिक प्रेम है। मगर असल बात क्या है जानती हो बेटी, चाहे कोई जात हो या कोई मनुष्य हो धीरे-धीरे जब वह हीन दशा को प्राप्त हो जाता है, तब सबसे छोटी वस्तु पर ही सारा दोष लादकर वह आराम की साँस लेना चाहता है। वह सोचता है, इसी एक साधारण बाधा पर काबू पा लेने से वह रातों-रात बड़ा बन बैठेगा। हम लोगों का भी ठीक वैसा ही भाव है। किन्तु जो कठिन है, जो मूल जड़—'

इस बात को खत्म करने का उन्हें समय नहीं मिला। सीढ़ी पर जूते की आवाज सुनकर मुँह फिराने पर सुरेश को देखते ही एकाएक प्रश्न कर बैठे—'अच्छा सुरेश बाबू, आप तो हिन्दू हैं, आप तो हमारे जाति-भेद को मानते हैं?'

सुरेश सकपका गया—यह कैसा प्रश्न? जो दल-दल के ऊपर से चल रहा हो, और बिना जाँच किये ही अगर आगे को कदम बढ़ाये, तो वह किस पाताल में धँस जायगा इसका कोई निश्चय नहीं। यहाँ पर 'सत्य' ही सत्य है कि नहीं, इसी पर सावधानी से विचार करना होगा।

इसीलिये डरता हुआ ज़रा नजदीक आकर एक बार अचला के मुँह की तरफ देखकर उसने इसका तात्पर्य समझने की चेष्टा की, लेकिन मुँह देख न पाया। तब एक सूखी हँसी हँसकर वह द्विविधा-भरे स्वर में बोला—'हम लोग कौन हैं, सो तो आप अच्छी तरह जानते हैं राम बाबू।'

राम बाबू ने कहा—'अच्छी तरह जानता हूँ, यह तो मैं जानता ही था। लेकिन आपकी गृहिणी जो एकाएक ऊपर से नीचे तक उलट-पुलट कर देना चाहती हैं। ये कह रही हैं—'जाति-भेद से बढ़कर अन्याय इससे बढ़कर सर्वनाशक कोई वस्तु है ही नहीं।' म्लेच्छों के हाथ का खाने में भी इन्हें कोई आपत्ति नहीं और यह शिक्षा इन्हें आजन्म से ही अपने ब्रह्मसमाजी पिता से प्राप्त हुई है। इसके हाथ का खाने से आज मेरी जात चली गई कि नहीं और एक प्रायश्चित्त करना जरूरी है कि नहीं, यही बात इतनी देर से चल रही थी। आपकी राय क्या है?'

सुरेश अवाक् रह गया! अचला का स्वभाव उससे छिपा हुआ नहीं है और उसमें रात-दिन विद्रोह की अग्नि जो धधक रही थी यह बात भी उसके लिये नई नहीं थी! किन्तु उसी अग्नि की लपट आज अचानक किसलिये कहाँ तक पहुँच चुकी है, इसका अनुमान न कर सकने के कारण आशंका और उद्वेग से उसका चेहरा सूख गया; मगर क्षणभर बाद ही अपने को सँभालते हुए फिर ज़रा हँसने की कोशिश की, लेकिन इस बार की कोशिश ने सिर्फ हँसी को ढँककर उसके चेहरे को बिगाड़ दिया।

सुरेश बोला—'वह आपसे मखौल कर रही हैं।'

राम बाबू ने गम्भीर होकर सिर हिलाया और बोले—'उचित न होने पर भी इस तरह सोचने में मुझे कोई आपत्ति नहीं थी, लेकिन पति के कल्याण के लिये भी जब हिन्दू-घर की यह ललना अपने कर्तव्य-पालन से मुँह मोड़ना चाहती हैं—तुलसी-दान के दिन भी जो उपवास के

लिये किसी तरह भी राजी न हो सकीं—अच्छा, अगर इसे मखौल कहा जाय, तो इसे कठिन मखौल समझना चाहिये। अच्छा, सुरेश बाबू, विवाह तो आप लोगों का हिन्दू-रीति से ही हुआ होगा ?'

सुरेश ने कहा—'हाँ।'

वृद्ध महाशय मीठी हँसी हँसते हुए बोले—'सो मैं जानता हूँ।' अचला की तरफ देखकर बोले—'यद्यपि तुमसे अब मुझे और कुछ कहना नहीं है, लेकिन तुम्हारे पिताजी के ब्रह्मसमाजी होने का भी कोई दुख नहीं है। ऐसे बहुतेरे ब्रह्मसमाजियों को मैं जानता हूँ, जो समाज में जाकर तो आँखें मूँदकर ध्यान लगाते हैं और थोड़ा-बहुत अनाचार भी करते हैं, लेकिन लड़कियों की शादी के वक्त और कोई गड़बड़ नहीं करते। जाने दो, मेरी एक चिन्ता दूर हुई।'

मगर उनकी अपेक्षा भी बहुत अंश तक चिन्ता दूर हुई सुरेश की। वह उसी वक्त वृद्ध की हाँ में हाँ मिलाकर बोल उठा—'आप ठीक कह रहे हैं राम बाबू, आजकल इसी तरह के आदमियों की तादाद अधिक है। वे—'

अचानक दोनों व्यक्ति चौंक उठे। बीच में ही अचला तीखी आवाज में मानो गरज उठी—वह सुरेश के चेहरे पर अपनी दहकती हुई दृष्टि गड़ाकर बोली—'इतने अपराधों के बाद भी अपने अपराध बढ़ाने में तुम्हें शर्म नहीं आती ? फिर सो भी मेरे सामने हो ? तुम जानते हो—यह सब झूठ है ? तुम जानते हो—मेरे पिता ठग नहीं, वे मन, वचन और कर्म सब तरह से पक्के ब्रह्मसमाजी हैं। तुम जानते हो—वे' इतना कहते-कहते वह कुर्सी पर से उठ खड़ी हो गई।

सुरेश पहले तो दंग रह गया, लेकिन मुँह फेरकर वृद्ध के विस्मय-विस्फारित नेत्रों को और देखकर वह भी अकस्मात् उसी तरह जल उठा। वह बोला—'यह झूठ कैसे है ? तुम्हारे पिता क्या हिन्दू-घर में अपनी लड़की की शादी करने को राजी नहीं थे ? तुम्हीं सच्ची बात बताओ ?'

अचला ने कोई जवाब नहीं दिया। शायद क्षणभर चुप रहने के बाद वह अपने को सम्हाल चुकी थी, इसके बाद धीरे-धीरे बोली—'इस बात को आज मुझसे क्यों पूछ रहे हो? उसका कारण संसार में सबसे बढ़कर तुम स्वयं ही हो, क्या तुम नहीं जानते? तुम अच्छी तरह जानते हो कि मैं कौन हूँ, मेरे पिताजी कौन हैं, मगर इसी को लेकर तुम्हारे साथ बकवास करने की सिर्फ मेरी इच्छा ही नहीं हो रही, बल्कि शर्म मालूम पड़ रही है। तुम्हारी जो इच्छा हो, उन्हें बात बनाकर बताओ, लेकिन मैं सुनना नहीं चाहती। बोलो, अब मैं चली।'—इतना कहकर वह एक तरह से जल्दी ही बगल के कमरे में चली गई।

वह तो चली गई, लेकिन कुछ क्षण के लिये दोनों व्यक्ति निश्चल पत्थर की तरह बन गये।

वृद्ध ने शायद नितान्त अन्यमनस्क की तरह एक बार अपने हुक्के के लिये हाथ बढ़ाया, लेकिन उसी वक्त हाथ खींचकर जरा हिल-डुलकर ठीक से बैठ और एक बार खाँसकर गला साफ करके बोले—'आजकल आपकी तबीयत कैसी है सुरेश बाबू?'

सुरेश अन्यमनस्क की तरह बैठा हुआ था, चौंककर बोला—'जी, अच्छी है'—इतना कहने के बाद ही शायद उसे सच्ची बात याद आ गई, वह बोला—'सीने में इस तरफ़ जरा दर्द है—क्या जाने कल से कुछ और बढ़ तो नहीं गया—'

राम बाबू बोले—'इसीलिये देखिये सुरेश बाबू, इस जाड़े की रात में इतनी देर तक आपका बाहर घूमना क्या ठीक है?'

'असल में घूमने नहीं गया था राम बाबू! उसी मकान के लिये आज दो हजार रुपये बयाना दे आया हूँ।'

राम बाबू विस्मय प्रकाश करते हुए अन्त में बोले—'नदी के ऊपर का मकान तो अच्छा है। लेकिन अगर मुझसे पूछते, तो मैं आपको मना कर देता। उस रोज, बातचीत के सिलसिले में ही मालूम पड़ गया था कि सुरमा की यहाँ रहने की इच्छा कतई नहीं है।' फिर हँसकर

उन्होंने पूछा—'उनकी राय ली है कि नहीं, या सिर्फ अपनी ही इच्छा से खरीद बैठे ?'

सुरेश ने इस प्रश्न का कोई जवाब न देकर सिर्फ कहा—'अनिच्छा का कोई विशेष कारण नहीं देख रहा हूँ। इसके अलावा वास के लिये आवश्यक वस्तुओं का आर्डर भी कलकत्ते भेज चुका हूँ, बहुत उम्मीद है कि कल-परसों तक ही सारी चीजें पहुँच जायेंगी।'

राम बाबू कुछ क्षण तक स्तब्ध भाव से बैठे रहने के बाद सहसा क्या सोचकर अचला को पुकार बैठे—'सुरमा !'

अचला ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया, लेकिन कोठरी के भीतर से चुपचाप बाहर निकलकर धीरे-धीरे अपनी कुर्सी पर आकर बैठ गई। वृद्ध स्निग्ध स्वर में बोले—'बेटी, तुम्हारे पति महाशय हमारे देश में एक बहुत बड़ा मकान खरीद बैठे हैं। इस बूढ़े ताऊ को छोड़कर अब तुम किसी तरह भी न जा सकोगी बेटी।'

अचला चुप रह गई।

वृद्ध फिर कहने लगे—'सिर्फ मकान और सामान-असबाब का ही बन्दोबस्त नहीं कर लिया गया है, मुझे पता है, गाड़ी-घोड़ा भी आ रहा है। और इससे भी अधिक जानता हूँ—यह सब कुछ सिर्फ तुम्हारे लिये ही।'—इतना कहकर मुस्कराते हुए उन्होंने एक बार सुरेश की ओर और एक बार अचला की ओर नजर दौड़ाई, लेकिन उस गम्भीर उदास चेहरे से आनन्द का कोई चिन्हमात्र भी प्रकाशित न हुआ। इस धीमी रोशनी में हो सकता है—किसी दूसरे की नजर इस पर न पड़ती, लेकिन वृद्ध की तीक्ष्ण दृष्टि से यह बात छिपी न रह सकी। फिर भी उन्होंने पूछा—'लेकिन बेटी, तुम्हारी राय तो—'

अचला इस बार बोली—'मेरी राय की तो कोई जरूरत नहीं ताऊजी।'

वृद्ध झटपट बोल उठे—'सो क्या कह रही हो बेटी ! तुम्हीं तो सब कुछ हो। तुम्हारी इच्छा से ही तो—'

अचला उठकर खड़ी हो गई और बोली—'नहीं ताऊजी, नहीं, मेरी इच्छा से कुछ होता-हवाता नहीं। आप सारी बातें समझ नहीं सकेंगे, और मैं आपको समझा भी नहीं सकूँगी—लेकिन अगर मेरी जरूरत न हो, तो मैं अब जाऊँ—'

वृद्ध के मुँह से और कोई बात न निकली और बोलने की जरूरत भी न पड़ी। सहसा एक हिन्दुस्तानी नौकरानी के एक कड़ाही में जलता हुआ अंगारा लेकर उपस्थित होते ही सब की नजर उसी पर जा पड़ी। राम बाबू आश्चर्य चकित होकर पूछने ही जा रहे थे कि सुरेश अप्रतिभ होकर बोला—'मैंने बेहरे को लाने के लिये कहा था, उसने दूसरे पर टाल दिया है। मेरा यह दर्द जरा—'

अग्नि के प्रयोजन की विशद व्याख्या करने की अब जरूरत न पड़ी, मगर उसके लिये तो एक और आदमी चाहिये। राम बाबू ने अचला के मुँह की तरफ देखा, लेकिन वह तत्क्षण मुँह फिराकर थके हुए स्वर में बोली—'मुझे बड़े जोर की नींन्द आ रही है ताऊजी, मैं चली।'—इतना कहकर उत्तर की प्रतीक्षा किये बगैर ही वह चली गई और दूसरे ही क्षण उसके किवाड़ बन्द करने की आवाज पहुँची।

वृद्ध धीरे से कुर्सी पर से उठे और नौकरानी के हाथ से आग की कड़ाही अपने हाथ में लेते हुए बोले—'तो फिर चलिये सुरेश बाबू—'

'आप!'

'हाँ मैं ही। यह मेरे लिये नई चीज नहीं, यह काम इस जीवन में अनेक बार करने का मौका मिला है।'—इतना कहकर एक प्रकार से जबरदस्ती ही सुरेश को उसके कमरे में खींच ले गये और कड़ाही को कमरे की फर्श पर रख उसके सूखे और उदास चेहरे की ओर क्षणभर एकटक देखने के बाद उसके एक हाथ को अपने हाथ में दबाते हुए रुँधे हुए स्वर में बोल उठे—'नहीं सुरेश बाबू, नहीं, यह किसी भी तरह नहीं चल सकता—किसी भी तरह नहीं। मुझे पक्का विश्वास है कि कुछ-न-कुछ हुआ है जरूर—मैं एक बार आपका, लेकिन रहने

दीजिये इस बात को—यदि आवश्यकता हो, तो यह बूढ़ा फिर एक-बार—' इतना कहने के बाद वे अचानक मौन हो गये।

सुरेश अपनी जबान से एक भी बात न निकाल सका। मगर बच्चों की तरह पहले उसके होंठ बार-बार काँप उठे, उसके बाद आँखों के आँसू छिपाने के लिये उसने अपना मुँह फिरा लिया।

३५

एक कोच पर आँख मूँदे सुरेश लेटा हुआ था और पास ही एक कुर्सी पर वृद्ध राम बाबू उसकी छाती पर सेंक कर रहे थे, इसी समय दोनों की आँखें द्वार खुलने की आवाज़ की तरफ़ गईं और उन्होंने देखा—अचला आ पहुँची है! उसने बगैर किसी आडम्बर के कहा—'रात बहुत बीत चुकी है ताऊजी, आप सोने जायँ।'

'इसीलिये तो इन्तजार कर रहा था, बेटी'—इतना कहकर वृद्ध झटपट उठ खड़े हुये, और सुरेश को लक्ष्य करके बोले—'इतनी देर तक दोनों जने सिर्फ़ बेकार परेशान हो रहे थे! ये सब काम क्या हम लोगों के करने के हैं?' फिर अचला की ओर कुर्सी को ज़रा खिसकाते हुए बोले—'जिसका काम, उसी से सधता है बेटी, यहाँ आओ, बैठो—मैं जरा हाथ-पाँव सीधा करूँ।'—इतना कहकर वृद्ध महाशय ने थकने का भाव प्रकट करते हुये एक जबरदस्त अँगड़ाई ली और एक-दो बार चुटकी बजाकर हुक्का हाथ में ले कमरे से बाहर निकलते वक्त होशियारी के साथ दरवाज़ा बन्द करते हुये हँसकर बोले—'ऊँघते-ऊँघते हाथ-पाँव जला नहीं बैठा, यही गनीमत समझो, न सुरेश बाबू?'

सुरेश ने कुछ जवाब न दिया, सिर्फ़ अपने निमीलित नेत्रों के ऊपर दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया।

अचला चुपचाप उनकी छोड़ी हुई जगह अधिकार कर बैठी और सेक देने के लिये फ़्लानेल को गर्म करते-करते उसने धीरे से

पूछा—'फिर से दर्द क्यों होने लगा ? किस जगह दर्द मालूम हो रहा है ?'

सुरेश ने आँखें खोली नहीं, उत्तर भी नहीं दिया, सिर्फ़ हाथ ले जाकर छाती से बाईं तरफ़ इशारा करके दिखा दिया। कमरे में फिर सन्नाटा छा गया। बस सन्नाटे को देखकर ऐसा मालूम होने लगा कि इस मूक अभिनय का अन्तिम अंक इसी तरह नीरवता में ही समाप्त होगा। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। सहसा अचला के फ़्लानेल संश्लिष्ट हाथ को सुरेश ने अपनी छाती पर दबा लिया। अचला के चेहरे पर उद्वेग का कोई चिह्नमात्र भी दिखाई न पड़ा, मानो वह इसी बात की प्रत्याशा कर रही थी, उसने सिर्फ़ कहा—'छोड़ो, ज़रा और सेक दे दूँ।'

सुरेश ने हाथ छोड़ दिया मगर पलक मारते ही उठकर बैठ गया और अपने व्यग्र बाहुपाश में कुर्सी पर से अचला को खींचकर जकड़ लिया और ज़ोर से छाती से चिपकाकर चुम्बनों की भरमार से उसको एकबारगी ही सराबोर कर दिया। क्षणभर पहले ऐसा मालूम हो रहा था कि इस आवेग उच्छ्वासहीन नाटक की परिसमाप्ति शायद इसी निस्पन्द मौन-भाव के भीतर हो जायगी, लेकिन पलमात्र बीतते-न-बीतते ऐसा मालूम पड़ने लगा कि इस उन्मत्त निर्लज्जता की कोई सीमा नहीं है, अन्त नहीं है; सभी दशाओं में, सब काल में व्याप्त होकर यह उन्मत्ता हमेशा के लिये इसी तरह अनन्त और अक्षय बन जायगी—किसी दिन, और किसी युग में भी इसका विराम नहीं होगा, विच्छेद नहीं घटेगा।

अचला ने न तो कोई रुकावट ही डाली, और न ज़ोर ही किया; शायद इसके लिये भी वह तैयार ही बैठी थी, सिर्फ़ उसका शान्त चेहरा एकबारगी ही पत्थर की तरह शीतल और कठोर हो उठा। सुरेश अपने आपे में नहीं था—शायद सृष्टि के घोरतम अन्धकार में उसकी दोनों आँखें एकदम अन्धी बन गई थीं, नहीं तो इस मुख-चुम्बन की

लज्जा और अपमान का उसे अनुभव अवश्य होता। ऐसा अनुभव तो उसे नहीं हुआ, लेकिन जब थकावट के कारण उसका यह उन्माद स्वयं शिथिल हो गया, तब अचला धीरे से अपने-को छुड़ाकर अपनी जगह पर आकर बैठ गई।

क्षणभर और दोनों जने चुप बैठे रहे, तब सुरेश अचानक एक लम्बी साँस लेकर बोल उठा—'अचला, इस तरह हम लोगों के और कितने दिन कटेंगे ?' उत्तर की प्रतीक्षा किये बगैर ही बोलने लगा—'तुम्हारा कष्ट मैं जानता हूँ, लेकिन मेरे दुख की तरफ भी तो एक बार सोचकर देखो। मैं तो समझो खत्म हो गया।'

इस प्रश्न का जवाब दिये बगैर ही अचला ने पूछा—'तुमने क्या यहाँ मकान खरीदा है ?'

सुरेश अत्यन्त आग्रह के साथ बोल उठा—'सो तो तुम्हारे लिये ही अचला।'

अचला ने इसका भी कोई प्रत्युत्तर दिये बिना फिर प्रश्न किया—'माल-असबाब, गाड़ी-घोड़ा वगैरह के लिये भी आर्डर भेज दिया है ?'

सुरेश ने उसी भाव से उत्तर दिया—'लेकिन ये सारी चीजें तो तुम्हारे लिये ही होंगी।'

अचला मौन हो गई। इन चीजों से उसे क्या प्रयोजन, इन सारी चीजों को वह चाहती भी है या नहीं—उस आदमी से इस तरह का प्रश्न करने से बढ़कर अपने प्रति और कौन-सा व्यंग्य होगा ? इसीलिये वह इस सम्बन्ध में और कुछ न कहकर मौन हो गई। कुछ क्षण बाद उसने पूछा—'राम बाबू से तुमने क्या मेरे पिताजी का नाम बता दिया है ? घर का पता भी बता दिया है ?'

सुरेश ने कहा—'नहीं तो !'

'क्या और भी सेक देने की जरूरत है ?'

'नहीं।'

'तो फिर मैं अब जाती हूँ। मुझे बड़ी नींद आ रही है।'—इतना कहकर अचला कुर्सी पर से उठ खड़ी हुई और आग की कड़ाही को अलग हटाकर कमरे से बाहर होकर ज्योंही किवाड़ बन्द करने लगी कि सुरेश तड़-फड़कर उठ बैठा और बोला—'आज एक और बात बताये जाओ अचला। तुम क्या और कहाँ जाना चाहती हो? सचसच बताओ?'

अचला ने कहा—'सो कहाँ?'

सुरेश ने कहा—'जहाँ भी हो। जहाँ पर हम लोगों को कोई पहचान न सके, जान न सके—इस तरह के किसी देश में। वह देश चाहे जितनी—'

आग्रह और आवेश में आकर सुरेश का स्वर काँपने लगा, अचला यह समझ गई, लेकिन वह स्वयं अत्यन्त स्वाभाविक और सरल स्वर में धीरे-धीरे बोली—'इस देश में भी तो हमें कोई नहीं पहचानता। आज भी तो हमें कोई नहीं पहचानता।'

सुरेश उत्साह पाकर बोलता गया—'लेकिन धीरे-धीरे—'

अचला बाधा देती हुई बोली—'धीरे-धीरे जान जायेंगे? सम्भावना तो इसकी काफी है, लेकिन यह सम्भावना तो दूसरे देशों में भी है।'

सुरेश उल्लास से चञ्चल होकर कहने लगा—'तो फिर यहीं के लिये पक्का रहा। यहीं के लिये तुम्हारी राय है, बताओ अचला? एक बार साफ-साफ बता दो—' कहते-कहते मानो उसको किसी ने ठेल दिया। लेकिन वह फर्श पर से ही अचला के व्यग्र पद-क्षेप को देखता हुआ सहसा दंग रह गया कि दरवाजा बन्द करके अचला अन्तर्हित हो गई है।

इधर कई दिनों से आकाश में बादलों का उमड़ना-घुमड़ना शुरू होकर एक आँधी-पानी की सूचना दे रहा था। सुरेश के नये घर के लिये जरूरत से ज्यादा माल-असबाब कलकत्ते से आकर जमा होकर पड़ा था; उन सब चीजों को सजा-धजाकर यत्नपूर्वक रखवाने को किसी

को गरज ही न थी। बड़े घोड़ों का एक जोड़ा और एक अत्यन्त बहु-मूल्य गाड़ी तक परसों से ही आकर किसी एक अस्तबल में सईस-कोचवान के जिम्मे में पड़ी थी, किसी ने खबर तक न ली। इसी तरह जैसे-तैसे दिन कटते जा रहे थे। इसी समय एक दिन दोपहर के वक्त वृद्ध राम बाबू एक हाथ में हुक्का और दूसरे में एक नीले रंग की चिट्ठी लिये हुए उपस्थित हुए। अचला रेलिंग के बगल में बेंत के सोफे पर जरा लेटी हुई एक बँगला मासिक-पत्र के विज्ञापन देख रही थी, ताऊजी को देखते ही उठ बैठी। राम बाबू चिट्ठी को आगे बढ़ाते हुए बोले— यह लो सुरमा, तुम्हारी राक्षसी की चिट्ठी। वह इतने दिनों तक तुम्हें कोई पत्र न लिख सकी, इसलिये मेरी चिट्ठी में ही उसने असंख्य क्षमा प्रार्थना की है, और उसी तरह असंख्य प्रणाम भी किये हैं। तुम उसे माफ कर दो।'—वे इतना कहकर मुस्कराते हुए एक कुर्सी खींचकर बैठ गये और नदी की तरफ देखते हुए एक तान से हुक्के की कश खींच-खींचकर धुएँ से अँधेरा कर बैठे।

अचला ने चिट्ठी को शुरू से आखिर तक दो-दो बार पढ़कर मुँह उठाकर देखा और बोली—'तो फिर ये सब-के-सब परसों सबेरे की गाड़ी से ही आ पहुँचेंगे। बुआजी कौन हैं ताऊजी? और राजपुत्र-बधू, राजपुत्र और गार्जियन ट्यूटर—'

राम बाबू हँसकर बोले—'राक्षसी बिटिया मजाक करने का एक मौका पाकर कभी चूक सकती है! बुआजी हैं मेरी छोटी विधवा बहन और राजपुत्र-बधू हैं उनकी कन्या—भाँड़ारपुर के भवानी चौधरी की पत्नी—वह चाहे जो कुछ कहे राज-रजवाड़े के समान ही वह घराना है। राजपुत्र है उसका दस साल का लड़का—और अन्तिम व्यक्ति कौन हैं, सो तो आँख से देखे बगैर उनके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। होंगे कोई अधिक तनखाह पानेवाले नौकर। बड़े आदमी के लड़के के साथ घूमने चले हैं, इसको-उसको-जिसको प्रकाश्य-अप्रकाश्य रूप में मिलाकर बालिग-नाबालिग सबका मन रखते हैं—शायद इसी तरह के

कोई होंगे। लेकिन उस बात के लिये तो सोच नहीं रहा हूँ सुरमा, वे आयें, खायें-पियें, पश्चिम की जल-वायु में उनके गले की जलन, छाती की दहकन दो दिन के लिये अगर शान्त हो जाय तो खुशी की ही बात है, मगर फिकर तो इस बात की है कि मकान मेरा है छोटा, राज-राजवाड़े की बात सोचकर उनके योग्य कोई तैयारी भी नहीं की है; उनके लायक घर-द्वार का बन्दोबस्त भी नहीं हुआ है। हो सकता है, उनके साथ जरूरत से तीन गुना ज्यादा नौकर-चाकर भी आयेंगे। इसीलिये मैं सोच रहा हूँ—तुम्हारे मकान को अगर—'

अचला व्यग्र होकर बोली—'लेकिन उसका तो अब समय नहीं रहा ताऊजी। इसके अलावा अकेले इतनी दूर ठहरने में क्या उन लोगों को सुविधा होगी?'

राम बाबू बोले—'समय है, बशर्ते कि अभी से उसमें लगा जाय। और जगह तैयार हो जाने पर किसको कहाँ सुविधा होगी, इस पर बड़ी आसानी से मशविरा किया जा सकता है। सुरेश बाबू तो सुनते ही किराये के टमटम पर चले गये हैं—तुम्हारी गाड़ी भी तैयार खड़ी होगी, इसलिये अगर तुम भी जरा जल्दी तैयार हो सको बिटिया, तो मैं भी इसी बीच जूता-जोड़ा बदलकर एक दुपट्टा कँधे पर रख लूँ। तुम्हारे घर-गृहस्थी का बोझ और व्यवस्था सचमुच मेरे बूते से बाहर की चीज है!'

अचला क्षणभर मौन रहने के बाद उठकर खड़ी हो गई, और बोली—'अच्छा, मैं जरा कपड़े बदल आऊँ'—कहकर धीरे-धीरे चली गई।

राम बाबू का प्रस्ताव न तो असंगत ही था, और न अस्पष्ट ही था। सम्बन्धी राजकुमार तथा राजमाता के निमित्त इस आश्रय का परित्याग करके इस बार जो उसको दूसरी जगह जाना पड़ेगा, अचला यह बात आसानी से समझ गई; लेकिन आसानी से समझ जाने पर भी उसका भार हल्का नहीं हुआ। मन-ही-मन वह जितनी दूर तक सोचती गई,

उतनी ही दूर वह मानो लोहे के जबर्दस्त रौलर के अन्दर पिसती गई।

इतने दिनों के बीच एक दिन के लिये भी कोई भी उसको मकान से बाहर जाने के लिये राजी न कर सका। किन्तु आज पन्द्रह मिनट के बाद पहले-पहल जब वह अपनी अभ्यस्त साज-सज्जा से सुसज्जित होकर सिर्फ इसीलिये सीढ़ी से नीचे उतरकर आई, तो उसकी आँखों में चतुर्दिक सारी चीज़ें नई एवं आश्चर्यजनक प्रतीत हो उठीं, यहाँ तक कि अपने-आपको भी एक दूसरे ही रूप में अनुभव करने लगी। फाटक के बाहर विशाल बग्गी खड़ी थी; नये वस्त्र से सुसज्जित कोचवान ने उसे मालकिन समझकर ऊपर से ही सलाम किया; सईस दरवाज़ा खोलकर अदब के साथ हटकर खड़ा हो गया, और उसीके साथ-साथ वृद्ध राम बाबू जब सामने की सीट पर बैठ गये, तब उसे सारा का सारा एक अद्भुत स्वप्न की तरह प्रतीत होने लगा। उसकी आच्छन्न दृष्टि ने गाड़ी के जिस हिस्से की ओर दृष्टिपात किया, वहीं मालूम पड़ा—यह सिर्फ कीमती ही नहीं, यह सिर्फ अमीरों की शान-शौकत का बाहरी दिखावा ही नहीं बल्कि इसके प्रत्येक बिन्दु-बिन्दु में मानो किसी का असीम प्रेम अंकित हो।

कठोर पथरीली सड़क पर चार जोड़े टापों की प्रतिध्वनि में मुखरित होती हुई घोड़ा-गाड़ी चल पड़ी, किन्तु अचला के कानों में वह प्रतिध्वनि अस्पष्ट होकर ही प्रविष्ट हुई। उसकी समस्त आन्तरिक एवं बाह्य इन्द्रियाँ शायद अन्त तक इसी तरह अभिभूत अवस्था में रहतीं, लेकिन सहसा राम बाबू के कंठ-स्वर से वह चकित हो उठी। वे सामने की ओर दृष्टि कर बोले—'बिटिया, वह देखो, तुम्हारा घर दीख रहा है। आदमी-जन नौकर-चाकर सब के सब नियुक्त कर लिये गये हैं, मामूली तौर पर शायद अब तक सजाने-सँवारने का काम भी बहुत हद तक पूरा हो गया होगा,—सिर्फ तुम्हारे सोने के कमरे में बिटिया मैंने किसी को कुछ न करने को कह दिया है। मैंने कह दिया था कि घर में और चाहे

जिस जगह जो खुशी आवे कीजिये, मैं कुछ न कहूँगा, सिर्फ बिटिया के कमरे में हाथ लगाकर मेरी बच्ची के काम को न बढ़ाइयेगा।'— इतना कहकर वृद्ध जरा सलज्ज हँसमुख चेहरे को देखने की आशा से आँख उठाते ही एकाएक चुप रह गये।

अचला यह उसी क्षण समझ गई, कि वे इस प्रकार क्यों ठमक गये हैं। इसीलिये जब तक गाड़ी नये बंगले के दरवाजे पर नहीं पहुँच गई, तब तक वह अपने सूखे हुए मलिन चेहरे को बाहर की ओर फिराकर इस वृद्ध की विस्मित दृष्टि से छिपाये रही।

गाड़ी की आवाज सुनकर सुरेश बाहर आया, दास दासी सबके सब अपना-अपना काम छोड़ छुक-छिपकर डरते हुए अपनी नई मालकिन को देखने लगे, लेकिन उस चेहरे की ओर देखकर किसी को भी किसी तरह का उत्साह न मिला।

राम बाबू के साथ-साथ अचला चुपचाप नीचे उतर गई, सुरेश की तरफ उसने एकबार आँख उठाकर भी न देखा; इसके बाद तीनों जने चुपचाप धीरे-धीरे इस नये गृह में प्रविष्ट हुए। उसके भीतर-बाहर, ऊपर-नीचे कहीं भी आनन्द का एक मात्र भी आभास है, यह क्षणभर के लिये किसी भी तरफ देखने से किसी की भी दृष्टि में न पड़ी।

३६

मगर इसमें कितनी बड़ी भूल थी उस पर भी प्रकाश पड़ने में देर न लगी। घरके सजाने-बजाने की तन्मयता और इन समस्त कीमती तथा जरूरत से ज्यादा सामग्रियों की ढेर में से एक चिन्ता सबके दिल को बारबार चोट पहुँचाने लगी, कि जिसके पास पैसे हैं वह खर्च करता है, यह एक पुरानी कहावत है, लेकिन यह तो सिर्फ वैसी ही बात नहीं है। यह मानो एक आदमी को आराम और आनन्द पहुँचाने के लिये दूसरे आदमी की व्याकुलता का अन्त नहीं है। काम के अधिकता के

बीच, सामान-असबाब सम्हालने के बीच, कई तरह की मामूली बातचीत हुई, अनेक बार चार आँखें भी हुईं, किन्तु इन सबों के बीच एक अनुच्चारित वाक्य, एक छिपा हुआ इशारा रह-रहकर सिर्फ इसी तरफ अंगुलि-निर्देश करने लगा।

घर की सफाई का काम अभी खत्म नहीं हुआ था। इसलिये उसको कुछ हद तक रहने के लायक बनाने में ही सारा दिन लग गया। अत्यन्त क्लान्त और श्रान्त होकर तीनों जने जब घर लौटने के लिये गाड़ी पर सवार हुए, तब पहर रात बीत चुकी थी। थोड़ी-सी हवा के चलने से आकाश भी कुछ-कुछ साफ हो चला था, सिर्फ बीच-बीच में धूसर रंग के बादलों के टुकड़े एक दिगन्त से आकर नदी पार होते हुए दूसरे दिगन्त की ओर जा रहे थे और उन्हीं के बीच में से कभी शुभ्र, कभी मलान, ज्योत्स्ना की धारा जैसे सप्तमी के वक्र चन्द्र से निःसृत होकर सब दिशाओं में बन-जंगलों और वृक्ष-समूह पर झर-झरकर पड़ रही थी। प्रकृति के इस सौन्दर्य को जी भर कर देखने के लिये वृद्ध राम बाबू खिड़की से बाहर आँखें फाड़-फाड़कर निरख रहे थे; किन्तु जो वृद्ध नहीं, प्रकृति के समस्त रस, समस्त माधुर्य्य उपभोग करने के योग्य ही जिनकी उम्र है, वे ही दोनों गाड़ी के गद्दीदार सीटों पर एक तरफ कोने में सिर रखकर आँखें बन्द किये बैठे थे।

बहुत दिन पहले की एक स्मृति अचला के हृदय में एकबारगी ही धूमिल पड़ गयी थी, बहुत दिन बाद आज फिर वही स्मृति मानस-पटल पर आविर्भूत होने लगी—जब कि सुरेश के कलकत्ते वाले घर से वे दोनों इसी तरह एक शाम को गाड़ी पर सवार होकर लौट रहे थे, जिस दिन उसकी सम्पत्ति और सम्भोग की विपुल सामग्री उसके अतृप्त मन को महिम के निकट से बहुत दूर खींच ले गई थी, जिस दिन इस सुरेश के ही हाथ आत्मसमर्पण करना बिल्कुल असंगत या असम्भव नहीं मालूम पड़ रहा था—बहुत दिनों के बाद क्योंकर आज सहसा वही बात याद हो आई, यह सोचते-सोचते अपने भीतरी निगूढ़ चित्र को

स्पष्टरूप में देखकर उसका सारा शरीर मानो लज्जा की आँधी में हिलने-डुलने लगा।

लज्जा ! लज्जा ! लज्जा ! यह गाड़ी, वह मकान और बिलास की वह सारी सामग्री, यह सब कुछ उसीके लिये है—एक दिन यह सब कुछ उसके पति के प्रेमोपहार के रूप में ही लोगों ने जाना है; मगर एक दिन वह भी आयेगा जब सब जानेंगे कि इस सारी सामग्री पर उसका रञ्चमात्र भी अधिकार न था—इसका आदि-अन्त ही मिथ्या है ! उस दिन वह इस लज्जा को रखेगी कहाँ ? लेकिन आज के लिये यह बात बिल्कुल मिथ्या भी नहीं है, कि ये सारी सामग्रियाँ एकमात्र उसीकी पूजा के लिये बड़े यत्न से इकट्ठी की गई हैं और इसका आदि-अन्त ही स्नेह से, प्रेम से, और आदर से सराबोर है। यही जो जोड़ी-गाड़ी दिशा-विदशा को कँपाती हुई उसे वहन किये बड़े वेग से जा रही है, उसका सुकोमल स्पर्शजन्य सुख, उसका निरन्तर अबाध गतिजन्य आनन्द यह सबका सब आज उसी का है ! ये जो आज असंख्य दास-दासियाँ बड़े आग्रह-पूर्वक उसी का मुँह जोहती हुक्म के इन्तजार में खड़ी हैं।

देखते ही देखते उसके हृदय के मध्य से लोभ और त्याग, लज्जा और गौरव की धारा ठीक मानो गङ्गा-यमुना की तरह अगल-बगल होकर बहने लगी और क्षणभर के लिये इन दो में से किसी भी एक को वह अपना न सकी। मगर फिर भी घर पहुँचने पर जब वृद्ध राम बाबू अपने सान्ध्य-कृत्य-सम्पादन के लिये चले गये तब वह अचानक थकावट और सिर-दर्द का बहाना करके बिल्कुल असमय में ही बड़ी जल्दी अपने कमरे का किवाड़ बन्द करके बिस्तर पर लेट गई, उस वक्त एकमात्र लज्जा और अपमान ने ही मानो उसे निगल जाना चाहा। पिता की लज्जा, पतिकी लज्जा, सम्बन्धी-बन्धु-बान्धवों की लज्जा—ये सारी लज्जाएँ समवेत होकर आँखों के सामने अभ्रभेदी होकर अन्य समस्त दुःखों को आच्छादित कर लीं। एकमात्र यही बात

मन में उठने लगी—इस धोखाधड़ी का एक दिन जब पर्दाफाश होगा, तब उसे मुँह छिपाने की जगह कहाँ मिलेगी ?

और जिस समाज और संस्कार के बीच वह बचपन को लाँघकर इतनी बड़ी हुई है, उस समाज और संस्कार में मृगचर्म की शय्या, वृक्ष के नीचे निवास को कामना की वस्तु कहते किसी के मुख से उसने कभी नहीं सुनी। उस समाज में उसने हरेक रहन-सहन, आचार-व्यवहार आहार-विहार में विलासिता के प्रति वितृष्णा नहीं बल्कि तृष्णा को ही उत्तरोत्तर प्रचण्ड देखा है। जिस समाज में हिन्दू-धर्म के किसी भी आदर्श के साथ उसका मेल नहीं खा सकता—परलोक की आशा में इहलोक की सारी सुख-सामग्री से अपने को वञ्चित करने की निष्ठुर निष्ठा को वह किसी भी दिन देख न पायी थी; उसने देखा था सिर्फ दूसरों के अनुकरण पर संगठित अपने घर के समाज को, जिसका प्रत्येक व्यक्ति, नर और नारी—सांसारिक सुखों की आकण्ठ पिपासा में दिन प्रतिदिन केवल सूखता जा रहा है।

इसीलिये इस एकान्त शय्या पर भी आँखें मूँदे ऐश्वर्य-सामग्री को वह बिल्कुल तुच्छ समझकर उड़ा न सकी और 'नहीं चाहिये, जरूरत नहीं है', यह बात भी किसी तरह उसके दिल ने न माना। उसके आजन्म की शिक्षा और संस्कार इसमें से किसी को भी तुच्छ समझने के पक्ष में नहीं, फिर भी ग्लानि से उसका सारा हृदय काला हो उठा था। इसीलिये जितने धन-दौलत, जितनी सामग्रियाँ—इस शरीर को सब तरह से सुखी रखने के विविध आयोजन—आज बिन माँगे उसके पैरों के नीचे आकर उपस्थित हो गये हैं, उसका जबर्दस्त मोह अविश्रान्तरूप से उसको एक ओर खींचने और दूसरी ओर ढकेलने लगा।

फिर भी जिस तरह इस दुःस्वप्न के बीच भी मुक्ति की एक अस्फुट चेतना सञ्चरित होने लगती है उसी तरह यह चेतना भी एकबारगी ही तिरोहित नहीं हो गई, कि जो आज भाग्य के फेर से असत्य-प्रवञ्चना है, उसी के एक दिन सत्य हो उठने के मार्ग में कोई रुकावट न थी।

यह सुरेश ही उसका पति हो सकता था, और फिर भविष्य में यह बिल्कुल ही असम्भव हो जायगा---इस तरह की बात भी कोई जोर देकर नहीं कह सकता।

उनके अनुरूप सभी समाजों में विधवा का पुनर्विवाह होता है, हिन्दू-नारियों की तरह केवल एकमात्र व्यक्ति के निकट ही पत्नीत्व के बन्धन को इहलोक और परलोक तक वहन करने के अलङ्घ्य अनुशासन को वे लोग मानते नहीं; इसीलिये जीवन और मरण प्रत्येक दशा में सिर्फ एक ही व्यक्ति में अपने मन को केन्द्रित करने की प्रत्याशा भी उससे नहीं की जा सकती। उसका वह मन एक पति के जीवितकाल में ही एक दूसरे को पति मानने के अपराध के भार से चाहे कितना भी पीड़ित क्यों न हो; लज्जा और अपमान की ज्वाला से कितना भी क्यों न जलता हो, धर्म और परलोक की लाठी उसे धराशायी करने का भय न दिखा सकी।

बन्द दरवाजे को खटखटाकर राम बाबू पुकारते हुए बोले—'हाथ-मुँह धोये बगैर ही सो गई बिटिया, क्या तबियत ज्यादा खराब है ?'

अचला का चिन्ता-सूत्र छिन्न हो गया। अचानक अनुभव हुआ कि यह उसके पिता का स्वर है। गुस्सा होकर असमय में ही सो जाने पर ठीक इसी तरह वे भी दरवाजे के बाहर खड़े होकर उद्विग्न स्वर में पुकारा करते।

इस चिन्ता-सूत्र को वह किसी भी तरह टूटने देना नहीं चाहती थी, लेकिन इस स्नेह की पुकार की उपेक्षा न कर सकी, पलमात्र में उसकी आँखों में आँसू उमड़ पड़े। झटपट आँसू पोंछती हुई रुँधे हुए गले को साफ करके दरवाजा खोलकर सामने आ खड़ी हुई।

ये वृद्ध महाशय इतने दिनों की घनिष्ठता के होने पर भी बराबर जरा दूर ही रहते थे; लेकिन इस घर में इन लोगों का आज अन्तिम दिन समझकर ही शायद क्षण भर में ही उस घेरे को लाँघ गये। एक हाथ को अचला के कंधे पर रखते हुए, दूसरे हाथ से उन्होंने उसके

ठुड्ढी को छूकर क्षणभर बाद ही मुस्कराते हुए बोले—'इस बूढ़े ताऊ के साथ ऐसी शरारत बेटी ! कुछ नहीं हुआ, चलो'—इतना कहकर हाथ पकड़कर बरामदे में लाकर उसे एक कुर्सी पर बिठा दिया।

निकट ही दूसरी कुर्सी पर सुरेश बैठा था, उसने मुँह उठाकर एकबार देखा और फिर सिर नीचे झुका लिया। रात को निश्चिन्तभाव से बैठकर सारे दिन के काम-काज पर विचार करने की बात थी, वह उसी लिये सिर्फ अकेले बैठकर राम बाबू के लौटने का इन्तजार कर रहा था। उसी की तरफ देखकर वृद्ध जरा हँसते हुए बोले—'सुरेश बाबू आपकी गृह-लक्ष्मी तो किसी एक बिलायती बाप की लड़की है—दिन-लग्न पोथी-पत्रा कुछ नहीं मानती। फिर आप मानिये या न मानिये इसमें कुछ हर्ज नहीं—लेकिन मेरे इस साठ साल का कुसंस्कार तो पीछा छोड़ने का नहीं। कल पहर दिन के भीतर ही एक शुभ लग्न है—'

सुरेश ने इस इशारे को एकाएक न समझ सकने के कारण जरा आश्चर्य के साथ पूछा—'किस बात का शुभ लग्न।'

राम बाबू बिल्कुल सीधा जवाब नहीं दे सके। जरा हिचकिचाते हुए बोले—'इसके बाद फिर इस हफ्ते के बीच पञ्चाङ्ग में कोई शुभ दिन ढूँढ़े नहीं मिला—इसीलिये कह रहा था—'

इस बार बात तो सुरेश की समझ में आ गई, मगर हाँ-ना किसी तरह का जवाब न दे सकने के कारण डरता हुआ छिपी नजरों से एक बार मुँह उठाकर अचला की तरफ देखने के बाद वह फिर निगाह नीची न कर सका। उसने देखा कि वह दोनों आँखें उसी पर गड़ाकर चुपचाप बैठी है।

अचला शान्त और मधुर स्वर में बोली—'कल सबेरे भी तो हम लोग उस मकान में जा सकते हैं ?'

विस्मय से अभिभूत सुरेश के मुँह से इस सीधे से प्रश्न का कोई सीधा उत्तर न निकला। उसने अनिश्चित स्वर में सिर्फ इतना ही कहना चाहा, कि वह घर अब भी पूरे तौर पर रहने के लायक

नहीं है। उसकी फर्श अब भी गीली है, नयी दीवारें अब भी कच्ची हैं—ऐसे घर में रहने से अचला को शायद कोई बीमारी-विमारी, नहीं तो उसकी—'

मगर आपत्ति की तालिका खत्म नहीं होने पायी। अचला मानो जरा हँसती हुई बोली—'कोई हर्ज नहीं जिस दुर्दिन में सियार-कुत्ते तक अपनी जगह नहीं छोड़ना चाहते, उस दिन अगर तुम मुझे अनजान जगह में पेड़ तले खींचकर ला सके, तो जरा गीला फर्श और जरा कच्ची दीवाल के भय से तुम्हें अब मेरे लिये फिक्र करने की कोई जरूरत नहीं। उस दिन जिसकी मौत नहीं हुई वह आज भी जिन्दी रहेगी।'

राम बाबू की तरफ मुड़कर बोली—'आप जरा भी फिक्र न करें ताऊजी। हम कल सबेरे ही जा सकते हैं। आपका ऋण मैं जन्म-जन्मान्तर में भी चुका न सकूँगी ताऊजी, हम कल ही बिदा होंगे।' इतना कहते-कहते वह रो पड़ी और भागकर अपने कमरे में जाकर दरवाजा बन्द कर दिया।

वृद्ध राम बाबू ठीक मानो बज्राहत की तरह निश्चल होकर बैठे रहे। उनकी विह्वल व्याकुल दृष्टि एक बार सुरेश के झुके हुए चेहरे की तरफ और एक बार उस बन्द दरवाजे की तरफ देखकर सिर्फ यही निष्फल प्रश्न करने लगी—'यह क्या हुआ? क्यों हुआ? ऐसा होना कैसे सम्भव हुआ?' किन्तु अन्तर्यामी के सिवा इस मर्मान्तिक क्षोभ का उत्तर कौन दे सकता था।

३७

दूसरे दिन सबेरे से ही आकाश बादलों से घिरा हुआ था। उसी मलिन आकाश के नीचे सारा संसार ही एक तरह से उदास और मलिन मालूम पड़ रहा था। सजी गाड़ी दरवाजे पर तैयार खड़ी

थी, कुछ ट्रंक, बिछौना आदि सामान उसके छत पर लदे हुए थे; पञ्चाङ्ग के शुभ मुहूर्त्त में अचला घर में से नीचे उतरकर आयी और गाड़ी पर सवार होने से पहले राम बाबू के चरण-रज लेने के लिये ज्यों ही झुकी, कि वे जबर्दस्ती हँसने की कोशिश करते हुए बोले—'बिटिया, बूढ़े आदमी की बेटी बनने में अनेक झंझट हैं। यह मत समझना कि जरा-सा चरण-रज लेकर मील दो मील दूर भाग जाने से तुम्हें छुट्टी मिल जायगी।'

अचला सजल नेत्रों को उठाकर धीरे से बोली—'मैं तो यह नहीं चाहती, ताऊजी।'

इस करुण वाणी को सुनकर वृद्ध के नेत्र भी सजल हो उठे। अचानक उनके मन में यह बात उठने लगी—यह अपरिचित बाला परिचय की परिधि से बाहर बहुत दूर मानो हटी जा रही है। स्नेहार्द्र स्वर में बोले—'सो क्या मैं नहीं जानता हूँ बिटिया। पति के साथ अपने घर को जा रही हो, इस शुभ अवसर पर आँसू गिराने की जरूरत ही क्या है! फिर भी तो मैं रोक नहीं सका।'—इतना कहने के बाद हाथ से एक बूँद आँसू पोंछते हुए फिर से हंस कर बोले—'तुम पास में थी रात-दिन दिक्क करता था, अब और वैसा उपद्रव तो नहीं कर सकता, लेकिन यह भी तुम देख लेना कि इसका किसी दिन सारी कसर निकल लूँगा।

सुरेश पीछे खड़ा था, उसने आज पहले-पहल वास्तविक भक्ति-भाव से वृद्ध के चरण-रज लिये। उत्तर में उन्होंने चुपके से कहा—'मैं जानता हूँ सुरेश बाबू, कि आप मेरे यहाँ सुखी नहीं थे। मैं शरीर और मन से आशीर्वाद देता हूँ, कि अपने घर में इस बार इस कष्ट से आपको छुटकारा मिल जाय।'

सुरेश ने कुछ नहीं कहा, सिर्फ एक बार और झुककर प्रणाम करके गाड़ी पर जा बैठा।

राम बाबू ने एक बार और आशीर्वाद देकर ऊँचे स्वर में बताया—'मैंने भी एक एक्का लाने को कह दिया है। अगर हो सकेगा तो दिन रहते ही आकर हाजिर हो जाऊँगा, मगर उस वक्त रूठने से काम नहीं चलेगा।'—इस तरह परिहास के बदले सिर्फ एक लम्बी साँस ले चुप हो गये।

गाड़ी के चले जाने पर राम बाबू मन-ही-मन सोचने लगे—'यह अच्छा ही हुआ जो समय रहते ये लोग चले गये।' यहाँ सिर्फ स्थान की ही कमी थी सो बात नहीं, अपनी विधवा बहन के स्वभाव से वे अच्छी तरह परिचित थे। वे जानते थे कि दूसरे के रहस्य का पता लगाने में उसे कितना मजा आता है। वह आते ही सुरमा को कठिन परीक्षा में डाल देगी, और उसका परिणाम चाहे जो भी हो, वह सुखदायक न होगा। इसी तरुणी के सम्बन्ध में कुछ न जान कर भी उन्हें इतना विश्वास हो गया था, कि वह अवश्य भद्र महिला है। किसी भी सुविधा के लिये वह किसी भी तरह झूठ नहीं बोल सकती—वह जो ब्राह्म-पिता की कन्या है, खुद भी छुआ-छूत, देवी-देवता नहीं मानती—इसे किसी भी तरह छिपायेगी नहीं। उस वक्त जो इस घर में बखेड़ा होगा, उसका ख्याल करके सीना दहल जाता है। मगर यह तो हुई उनकी अपनी सुख-सुविधा की बात। एक और बात थी जिसे वे अपने तईं भी स्पष्ट करना नहीं चाहते थे। उनके कोई कन्या न थी, मगर प्रथम सन्तान कन्या के रूप में ही उत्पन्न हुई थी। आज अगर वह जीती होती तो अचला की जननी हो सकती थी, इसलिये उम्र या चेहरे में कोई समानता न होते हुए भी इस सम्बन्ध में उनकी तृष्णा प्रबल थी उसका उसी दिन पता लग गया था जिस दिन उसी अपरिचित तरुणी को डाक्टर की खोज में रास्ते में रोते-बिलखते उन्होंने देखा था। उस दिन उनके मन में यह भाव आन्दोलित हो उठा, कि बहुत दिनों से खोयी हुई अपनी सन्तान मानो अचानक आज उन्हें प्राप्त हो गयी हो; और उस समय से वह ममता

दिन प्रतिदिन बढ़ती ही गयी और इसका वास्तविक अनुभव भी उन्हें हो रहा था, लेकिन किसी एक गम्भीर रहस्य ने इस तरुणी को मानो आवृत्ति कर रखा था जिसका उन्हें पता न था। उन्होंने सोचा, रहने दो—जो आँखों की ओट में है, उसे ओट में ही रहने दो, चेष्टा करके उसे बाहर खींच लाने की कोई जरूरत नहीं।

एक दिन राक्षसी ने इस तरफ ज़रा-सा सङ्केतमात्र किया था, कि शायद इसके भीतर एक पारिवारिक कलह मौजूद है—शायद सुरेश बाबू घरवालों से झगड़कर ही स्त्री को लेकर चले आये हैं। अचानक उस दिन अचला ने अपने को ब्राह्मगृहिला के रूप में प्रगट किया था, और इससे पहले ही सुरेश के गले में जनेऊ का गुच्छा उन्होंने देखा था, उस दिन वृद्ध महाशय चौंक उठे थे, उनके दिल को चोट भी लगी, मगर मन-ही-मन इस गुप्त रहस्य का एक कारण मानो उन्होंने ढूँढ़ निकाला था। उस दिन जरूर उन्होंने सोचा था—सुरेश ने ब्राह्मसमाजी के घर शादी करके ही यह विपत्ति मोल ली है, इसमें कोई सन्देह नहीं। धीरे-धीरे इस विश्वास ने उनके हृदय में जड़ जमा ली थी।

ये वृद्ध महाशय सच्चे हिन्दू थे, इसीलिये हिन्दू-धर्म की निष्ठा ही उन्होंने पाई थी, निष्ठुरता नहीं। ब्राह्मण-सन्तान सुरेश के इस दुर्गति में न पड़ने से ही वे खुश होते, लेकिन यह जो प्रेम का विवाह, यह जो स्वजन-परिजनों से विछोह, यह जो लुका-छिपी—इसके सौन्दर्य और माधुर्य से भीतर ही भीतर वे अत्यन्त मुग्ध हो जाते। इसको बगैर जाने इस पर विश्वास करने में उनका मन रस में सराबोर हो जाता। इसीलिये जभी इस विद्रोही प्रणयी युगल का प्रणय-अभिमान उनके आगे मनोमालिन्य के रूप में उपस्थित होता, तभी अत्यन्त व्यथा के साथ उनके मन में यही भाव आन्दोलित हो उठता, कि पराये घर में अत्यन्त सकीर्ण एव संकुचित परिधि के भीतर जो मिलन बाधा पा रहा है, वही सम्भवतः अपने घर के स्वाधीन एवं प्रशस्त वातावरण ने

असंख्य संसारी झंझटों के बीच भी शान्ति और सामञ्जस्य के साथ कार्य में परिणत होगा।

उनके नहाने-धोने का समय हो गया था। कंधे पर अँगौछा रखकर नदी की ओर जाते हुए मन-ही-मन हँसकर बार-बार बोलने लगे—'बिटिया जाते वक्त इस बूढ़े पर बहुत रूठकर गई हो। तुमने सोचा होगा—अपने आदमियों के खातिर ताऊजी ने हमें घर में रहने न दिया! लेकिन दो-चार दिनों के बाद जाकर जब देखूँगा कि तुम खुशी से फूली नहीं समाती, तब उस दिन इसका बदला लूँगा। उस दिन पूछूँगा—इस बूढ़े के सिर की सौगन्ध खाकर कहो बिटिया, पहले का गुस्सा अब कितना बाकी रहा? देखूँगा, बिटिया क्या जवाब देती है!'

इतना सोचते-सोचते निर्मल हास्य की छटा से उनका समस्त मुखमण्डल उद्भासित हो उठा। वे कल्पना करने लगे कि सुरमा मुस्कराकर काम का बहाना करके चली गई है, किन्तु दूसरे ही क्षण थाली में सन्देश लिये हुई वापस आई है और अत्यन्त गम्भीर मुद्रा में कहती है—'ताऊजी, अगर आप मेरे हाथ की बनी इस मिठाई को नहीं खाते, तो सचमुच ही बड़ा जबर्दस्त झगड़ा उठ खड़ा होगा।'

स्नान के बाद जल में खड़े होकर गङ्गास्तव पाठ करते-करते बीच-बीच में भी उस बालिका की हँसी छिपाने की उस चेष्टा की 'साग से माछ ढकने' के साथ तुलना करके बुड्ढे को बड़ी हँसी आने लगी और हृदय में जो क्षोभ गत रात से ही लगातार बढ़ता गया था, वह आह्निक कृत्य करके लौटते, वक्त रास्ते में कल्पना की स्निग्ध वर्षा से सिक्त हो शीतल हो गया।

तार आया है, कल सबेरे ही सभी पहुँचेंगे। साथ में नाती राजकुमार और भांजी राजबधू के सम्पर्क से सम्भवतः कुछ अधिक आदमी आयेंगे। आज उनके घर में काम कम न था। ऊपर से आकाश का लक्षण भी ठीक नहीं दिखाई दे रहा था। कहीं वर्षा न होने लगे, जाने में रुकावट हो—इस भय से राम बाबू सन्ध्या होने से

पहले ही एक्का भाड़ा करके इनाम की आशा देते हुए एक्केवाले से जरा जोर से हाँकने का अनुरोध करने लगे। लेकिन रास्ते में ही नम हवा चलने लगी और जब इस मकान में आ पहुँचे, तब कुछ-कुछ वर्षा शुरू हो गई थी।

अचला बाहर आकर बोली—'इस दुःसमय में आज फिर क्यों आये ताऊजी! जरा और देर होने पर तो आप भींग ही जाते।'

उसके चेहरे और कण्ठ-स्वर में भावी आनन्द का कोई चिह्न तक न देखकर बूढ़े का दिल बैठ गया। इसके लिये वे बिल्कुल तैयार न थे—मानो उनकी कल्पना की माला को एक ही झटके में किसी ने बिखेर दी हो। फिर भी मुँह पर उत्साह का चिन्ह लाकर बोले—'अरी बस करो, ओहो! तब तो बचना मुश्किल था। पानी में भींग कर अपने को सम्हा। सकता हूँ, लेकिन त्यक्त पुत्र होकर हमेशा कौन रह सकता है, माँ?'

इस दुर्बोध बालिका को बूढ़ा किसी दिन भी ठीक तरह न पहचान सका। खासकर कल रात के व्यवहार से तो वे विस्मय से अवाक रह गये थे। मगर उसके आज के आचरण से तो मानो एकाएक सुध-बुध खो बैठे। ऐसा सोचना स्वप्न में भी असम्भव था कि वह कभी किसी कारण से भी ऐसा व्यवहार कर सकेगी। बात तो सिर्फ इतनी ही थी, मगर अचला ठीक पागल की तरह एकाएक दौड़ती हुई आकर उनकी छाती पर औंधी होकर पड़ गई और फूट-फूटकर रो पड़ी। रोती हुई बोली—'ताऊजी, क्यों आप मुझे इतना प्यार करते हैं—मैं तो शर्म के मारे गड़ी जा रही हूँ!'

वृद्ध बहुत देर तक कुछ बोल न सके, सिर्फ एक हाथ से उसको छाती पर चिपकाये दूसरा हाथ उसके सिर पर फेरने लगे। उनका स्नेहार्द्र-चित्त समाज-विरुद्ध उसी विवाह की बात, स्वजन-परिजन, माँ-बाप के साथ विद्रोह-विच्छेद की बात, विवाद करके घर छोड़ने की बात—इन्हीं समस्त पुरातन, परिचित एवं बार-बार इन्हीं पुरानी बातों

का ख्याल आने लगा पर इसके अलावा कोई दूसरी बात का गुमान भी उनको न हुआ। इसी प्रकार ये मौन वृद्ध और फूट-फूटकर रोती हुई वह तरुणी दोनों-जने बहुत देर तक ज्यों के त्यों बैठे रहे। इसके बाद चुपके से बोलने लगे—'इसमें शर्म क्या है बेटी! तुम मेरी पुत्री हो, तुम मेरी वही सती-लक्ष्मी हो बिटिया, जो बहुत दिन पहले सिर्फ दो दिन के लिये मेरी गोद में आकर फिर चली गई थी—माया से छुटकारा न पाकर पुनः पिताजी की गोद में लौट आई हो—मैं तो तुम्हें देखते ही पहचान गया था सुरमा!—इतना कहकर उसे पास की एक कुर्सी पर बिठाते हुए अनेक तरह से यही बात समझाने लगे कि इसमें कोई लज्जा नहीं, कोई शर्म नहीं। युग-युग से, हमेशा से ऐसा होता आया है। जो सती हैं, जो स्वयं आद्याशक्ति हैं, वे भी एक बार पति के साथ माँ-बाप, स्वजन-परिजन सबसे झगड़कर चली गई थीं। फिर सब कुछ होगा, सब कुछ लौट आयेगा, आज जो विमुख हैं, फिर प्रसन्न होंगे, फिर से वे अपने पुत्र और पुत्र-बधू को सम्मानपूर्वक लौटा ले जायेंगे। देख लेना बेटी, मेरा यह आशीर्वाद कभी व्यर्थ नहीं जायगा।'

वृद्ध इस तरह न जाने क्या-क्या बकते जा रहे थे। उनके कथन का जो तात्पर्य था उसे स्पष्ट करने की जरूरत नहीं, लेकिन उसके भार से श्रोता का झुका हुआ सिर धीरे-धीरे और भी नीचा होता जा रहा था। जोर की वर्षा हो रही थी। इसी समय देखा गया कि सुरेश भींगता हुआ कीचड़ से लथपथ होकर तेजी से घर में घुस रहा है। उस पर नजर पड़ते ही अचला ने झटपट आँखें पोंछ लीं और उठकर खड़ी हो हाथ बढ़ाकर वर्षा के पानी से आँसू के सारे चिह्न उसने धो डाले और लौटकर अपनी जगह आ बैठी। राम बाबू ने समझा कि चाहे जिस लिये भी हो, सुरमा अपनी आँखों के आँसू का इतिहास अपने पति से छिपा रखना चाहती है।

सुरेश ऊपर आते ही राम बाबू को देखकर विस्मित हो गया और कुछ कहना ही चाहता था कि वे विकल होकर बोल उठे—'बात-चीत

बाद में होगी सुरेश बाबू, मैं भागा नहीं जा रहा हूँ। आप कपड़े बदल आयें।'

सुरेश ने हँसते हुए कहा—'यह तो कुछ नहीं है।'—इतना कहकर एक कुर्सी खींचकर बैठना ही चाहता था कि अचला मुँह उठाकर बोली—'ताऊजी का कहना मानने में आखिर हर्ज क्या है? अभी महीना भी पूरा नहीं हुआ, इतनी बड़ी बीमारी से तुम उठे हो—बार-बार मुझे और कितना सताना चाहते हो?'

उसकी वाणी और चितवन में इतना बड़ा व्यवधान था, कि दोनों ही जने विस्मित हो गये, किन्तु इस विस्मय की धारा उल्टी होकर बहने लगी। सुरेश बगैर कुछ कहे चुपचाप आदेश मानकर चला गया और राम बाबू बाहर की तरफ देखने लगे।

बाहर वर्षा का विराम नहीं; रात ज्यों-ज्यों बीतने लगी, त्यों-त्यों वृष्टि का प्रकोप भी बढ़ता गया। बहुत दिनों के शोषण से धरती सूख सी गयी थी। मन में यह भाव उठने लगा, कि उसकी सारी दीनता को, उसके सारे अभाव को आज की रात ही दूर करने के लिये विधाता मानो कमर-कसकर तैयार हो गये हों।

राम बाबू की परेशानी देख अचला धीरे से बोली—अब लौटकर जाने में बड़ी तकलीफ होगी ताऊजी, आज रात न जाने से क्या चलेगा नहीं?' वे हँसे और मानसिक चंचलता को दबाते हुए बोले—'तकलीफ की बात छोड़ो, ऐसे दुःसमय में इस नयी जगह में तुम लोगों को छोड़कर मैं न जाता। लेकिन कल सबेरे ही वे लोग आ रहे हैं, आज रात को ही लौटे बगैर कैसे चलेगा, सुरमा। लेकिन मालूम होता है, ऐसा ही नहीं बरसता रहेगा, घण्टे भर में ही धीमा पड़ जायगा। मैं तब तक इन्तजार करता हूँ।'

इसी प्रसंग में कल जो लोग आनेवाले हैं उनकी बात से शुरू करके संसार, समाज, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, इहलोक-परलोक धीरे-धीरे न जाने कितनी बातों की चर्चा छिड़ गई। दोनों जने इस तरह मग्न हो

गये कि कितना समय बीता, रात कितनी हुई, इसका किसी को ध्यान न रहा। बाहर गर्जन और वर्षण उत्तरोत्तर कितना घना, और अन्धकार कितना दुर्भेद्य हो उठा है—इस पर भी किसी ने दृष्टिपात न किया। इस वृद्ध के अन्दर जितना ज्ञान, जितनी आत्म-दृष्टि, जितनी भक्ति आज तक सञ्चित थी, उसे अपने परम प्रेमपात्री के निकट बेधड़क बिखेर-बिखेरकर उन्होंने इस दो व्यक्तियों की एकान्त सभा को माधुर्य-मंडित कर दिया। अचला को सिर्फ इतना चैतन्य रहा, कि वह इस तरह एक व्यक्ति के हृदय की सच्ची अनुभूति की खबर सुन रही है, जो कि स्वयं निष्पाप है, जिसके स्नेह, प्रेम और श्रद्धा को उसने अकेले ही प्राप्त किया है

अचानक पैर की आहट से दोनों जने चौंक उठे और पीछे की तरफ उन्होंने देखा कि नौकर खड़ा है। उसने कहा—'माँजी, रात बहुत बीत गई है, करीब बारह का वक्त हो गया—आपका भोजन क्या यहीं ले आऊँ ?'

अचला ने चौंककर कहा—'बारह बज गये ? और बाबू ?'

'वे अभी-अभी भोजन करके सोने गये हैं।'

वह जब से गया तब से आया ही नहीं इसका ख्याल अब पड़ा। अचला ने मुँह आगे करके देखा—सोने के कमरे के पर्दे में से रोशनी दीख रही है। राम बाबू क्षुब्ध और लज्जित होकर बार-बार कहने लगे—'मुझसे बड़ी गलती हो गई बेटी, बड़ी गलती हो गई। तुम्हें इस तरह फँसाये रखा, कि उनका भोजन ठीक से हुआ या नहीं—तुम अपनी आँखों से देख भी न सकीं। इस वक्त जाओ बेटी, भोजन करते—'

अचला ने शायद इन सारी बातों पर कान ही न दिया। नौकर से उसने पूछा—'कोचवान ने ठीक वक्त पर गाड़ी क्यों नहीं हाज़िर की ?'

नौकर ने कहा, 'घोड़े नये हैं, इस आँधी-पानी में इतने अँधेरे में बाहर ले जाने का साहस नहीं हुआ।'

'तो फिर कोई दूसरी गाड़ी क्यों नहीं लाई गई ?'

नौकर चुप रह गया। मगर इसका अर्थ अपराध को स्वीकार करना नहीं था, बल्कि प्रतिवाद करना था कि इस तरह का हुक्म तो उसे दिया नहीं गया।

राम बाबू उत्कण्ठा के बदले लज्जित होकर बार-बार कहने लगे, 'गाड़ी की कोई जरूरत नहीं, न जाने से भी कोई हर्ज नहीं, सुबह तड़के उठकर स्टेशन पहुँच जाने से भी काम चल जायगा। मैं रात को कुछ खाता-पीता नहीं, मुझे इसका झंझट भी नहीं—सिर्फ, तुम कुछ खाकर सो जाओ बेटी, बात करते-करते बहुत रात हो गई—बड़ी गलती हो गई। इतना कहते-कहते उन्होंने एक तरह से जबर्दस्ती ही उसे खाने को नीचे भेज दिया और पन्द्रह मिनट बाद जब वह ऊपर आई तो व्यग्र और उत्सुक होकर कहने लगे, 'अब एक मिनट की भी देर न करो बेटी, तुम सोने जाओ। मैं इसी बैठकखाने के कोच पर बड़ी अच्छी तरह सो जाऊँगा, मुझे कोई तकलीफ, कोई असुविधा नहीं होगी—जाओ, तुम सो जाओ।'

वृद्ध के इस अत्यन्त आग्रहपूर्ण आवेदन और निवेदन तथा अपनी मानसिक उत्तेजना से अचला अभिभूत हो गई। जिस मिथ्या सम्मान, प्रीति और श्रद्धा को उसने अपने इस नित्य शुभाकांक्षी पितृव्य सदृश वृद्ध के निकट अब तक सिर्फ प्रतारणा के द्वारा ही प्राप्त किया है, उसका लोभ ही इस अत्यन्त दुःसमय में उसका कण्ठ-रोध करके जबर्दस्ती सुरेश के उसी निर्जन शयन-मन्दिर की ओर उसे ठेलने लगा। उसे स्मरण हो आया—ऐसे ही आँधी-पानी में दुःसमय की रात्रि ने ही एक दिन उसे पति से अलग किया था, आज फिर उसी तरह एक दुःसमय का दुर्लंघ्य अभिशाप हमेशा के लिये उसको असीम अन्धकार में डुबोने को तैयार है। यह उसे स्पष्टतः दिखाई देने लगा कि कल अपराह्न

अपमान और लज्जा के अत्यन्त गहरे पंक में वह कण्ठ तक डूब जायगी, मगर फिर भी आज भी मिथ्या ने ही जयमाला पहनकर किसी भी तरह उसके सामने सत्य का प्रकाश न होने दिया। आज जीवन के इस चरक मुहूर्त में उसके क्षोभ और मोह ने ही हमेशा के लिये विजय प्राप्त की। उसने न कोई बाधा डाली, न कुछ कहा, एक बार पीछे मुड़कर भी न देखा—चुपचाप धीरे-धीरे सुरेश के शयन-कक्ष में जा उपस्थित हुई।

बाहर उन्मत्त प्रकृति उसी तरह उन्मत्त होकर नाचने लगी, प्रगाढ़ अन्धकार में उसी तरह हँस-हँसकर बिजली चमकने लगी, रात भर इसी प्रकार होता रहा, रञ्चमात्र भी परिवर्तन न हुआ।

इस नई जगह में रामबाबू को अच्छी तरह नींद न आई, खासकर फिकर के मारे बड़े तड़के ही उनकी नींद टूट गई। बाहर आकर उन्होंने देखा, वर्षा तो रुक गई है, लेकिन अँधेरा अभी दूर नहीं हुआ। नौकर-चाकर कोई सोकर उठे या नहीं, यह देखने के लिये बरामदे में एक तरफ जाकर सहसा चौंक उठे। देखा कोई टेबिल पर माथा टेके कुर्सी पर बैठी हुई है। नजदीक आकर विस्मय के साथ पूछ बैठे, 'सुरमा, तुम यहाँ ? इतने तड़के क्यों उठी बेटी ?'

सुरमा ने सिर्फ एकबार मुँह उठाकर देखा फिर उसी तरह टेबिल पर माथा टेक दिया। उसका चेहरा मुर्दे की तरह सफेद हो गया था और दोनों आँखों के नीचे गाढ़ी कालिमा छा गई थी। काले पत्थर से होकर जिस तरह झरने की धारा बहती है, ठीक उसी तरह दोनों नेत्रों के किनारे से आँसुओं की धारा बह रही थी!

वृद्ध सिर्फ एक अस्फुट शब्द करके एकटक उस अर्द्ध-मृत नारी-शरीर की तरफ चुपचाप देखते रहे, कोई शब्द उनके मुँह से बाहर न निकल सका।

३८

केदारबाबू ने सबेरे के वक्त थोड़ी 'मुड़ी' के साथ चाय पीकर ज़रा आराम की साँस ली। जूठे बरतनों को उठाने के लिये मृणाल ज्योंही कमरे में घुसी, कि वे बोले—'बेटी, तुम्हारी इस गरम मुड़ी और पत्थर की कूँड़ी की चाय में न जाने कौन-सा अमृत है, कि एक महीना बीत गया, मगर मैं यहाँ से टल न सका।'

अचला के रिश्ते से मृणाल ने उन्हें 'पिताजी' कहकर पुकारना शुरू किया था। उसने कहा, 'क्यों तुम भागने के लिये इतने विकल हो रहे हो पिताजी, तुम्हारी यह.....मैं क्या सेवा करना नहीं जानती?'

'तुम्हारी यह लड़की—' यही बात असावधानी में मृणाल कहने जा रही थी, लेकिन उसे बीच में ही दबाती हुई अन्य प्रकार से उसने अपना वक्तव्य व्यक्त किया। इसीलिये शायद इस इशारे को केदारबाबू ने समझकर भी समझना न चाहा। मगर सहसा उनका कण्ठस्वर करुण हो उठा, वे बोले—'क्यों अब भागने को विकल होऊँगा बेटी! तुम्हारी बनाई हुई चाय, तुम्हारे हाथ की रसोई, तुम्हारा यह मिट्टी का घर, इन्हें छोड़कर स्वर्ग में भी जाने की मेरी इच्छा नहीं होती। तुम्हारे उस छोटे-से जँगले के किनारे बैठकर कई दिनों से मैं यही सोच रहा हूँ मृणाल कि ईश्वर की कृपा से अगर दो साल और जिन्दा रहा, तो कलकत्ते में रहकर जिन्दगी भर मैंने जितनी क्षति अपनी की है, उस सबको पूरा कर लूँगा। और उसी मूलधन को लिये हुए एक दिन अपने मालिक के आगे खड़ा हो सकूँगा।'

कितनी बड़ी वेदना से उन्होंने यह बात कही, और किस तरह मर्मान्तिक लज्जा से कलकत्ते के आजन्म-परिचित मुहल्ले और निवास गृह को त्यागकर, हमेशा से आश्रित समाज से सम्बन्ध तोड़कर इसी जंगल के बीच पर्णकुटी में अवशिष्ट दिन काटने की अभिलाषा व्यक्त

की, सो मृणाल से छिपी न रही, और इसीलिये कोई जवाब न देकर चाय की कूड़ी हाथ में लिये धीरे-धीरे वहाँ से चली गई।

यहाँ जरा पिछली घटना का ब्यान करना आवश्यक है। केदार बाबू को यहाँ आये, करीब महीना भर हुआ, और तब से अब तक लौट नहीं सके। महिम की बीमारी के समय सुरेश के कलकत्ते वाले मकान पर इस विधवा बालिका से उनका पहले-पहल परिचय हुआ था, लेकिन यहाँ उसके अपने घर पर जो परिचय उन्हें प्राप्त हुआ, उससे उनका सारा शरीर और मन सोने की जंजीर से बँध गया। इसी बन्धन से वृद्ध अपने को किसी भी तरह मुक्त न कर सके गोकि उनके कितने ही जरूरी काम करने को बाकी पड़े हुए हैं।

महिम से उनकी मुलाकात नहीं हुई। उनके आने की खबर पाते ही वह व्याकुल होकर वहाँ से चला गया था। जाते वक्त मृणाल ने भी उसे रोकने की कोई ज्यादा कोशिश नहीं की, क्योंकि बचपन से ही अपने भैया के संयम और सहिष्णुता, बुद्धि और विवेचना के प्रति उसकी अगाध श्रद्धा थी। वह निश्चयरूप से समझ गई कि अचला से अभी मुलाकात करना उचित न समझकर ही महिम यहाँ से भागा जा रहा है। उसने सोचा था कि उसकी चिट्ठी पाकर केदार बाबू कन्या-दामाद में मेल-मिलाप कराने के लिये ही इतनी जल्दी उसे साथ लेकर आ रहे हैं, लेकिन वे सिर्फ अकेले ही आये।

आज तक उसका कोई स्पष्टीकरण नहीं हुआ, सिर्फ संशय के बोझ से उत्तरोत्तर भाराक्रान्त होकर एक के बाद दूसरा दिन चुपचाप बीतता जा रहा था। सिर्फ ऊपर की तरफ देखने से जरा मालूम पड़ जाता है कि आकाश में बादलों के दुर्भेद्य आवरण किसी न किसी दिन फट भी सकते हैं, लेकिन उसके पृष्ठभाग में अन्धकार ही अन्धकार सञ्चित है, चाँदनी नहीं।

सुरेश की बुआजी ने अपने लापता भतीजे के लिये व्याकुल होकर मृणाल को चिट्ठी भेजी है, वह चिट्ठी केदार बाबू के हाथ में पड़

गई है। महिम ने लिखा है कि वह किसी एक बड़े ज़मींदार के यहाँ गृह-शिक्षक के काम पर नियुक्त हो गया है। यह खबर जिस पत्र में दी हुई है, उसे भी वे बार-बार पढ़ गये किन्तु कहीं किसी भी पक्ष की ओर से उनकी कन्या का कोई उल्लेख नहीं। फिर भी इन दोनों पत्रों की प्रत्येक पंक्ति, प्रत्येक अक्षर से इस अभागे पिता के कानों में सिर्फ़ एक ही बात बार-बार ध्वनित हो रही है किन्तु फिर भी सत्य के रूप में स्वीकार करने की शक्ति उनमें नहीं है।

अचला सिर्फ़ उनकी एकमात्र सन्तान ही नहीं थी बल्कि बचपन में ही जब उसकी माँ मर गई, तब से उन्होंने ही उसको माँ का भी स्थान ग्रहण करके छाती से लगा कर इस कन्या का पाल-पोसकर बड़ा किया था। उसी कन्या के भारी अहित की आशङ्का से उनका शरीर दिन प्रति-दिन सूखकर लकड़ी हो रहा था और कच्चे सोने की भाँति का गोरा रंग काला पड़ता जा रहा था, और जिस रास्ते से वह अहित आ रहा था, वह रास्ता ही पिता के लिये संसार में सबसे अधिक अवरुद्ध था।

उस दिहात के दो-चार वृद्ध पड़ोसी बीच-बीच में उनके साथ वार्ता-लाप करने आया करते, लेकिन वे स्वयं कभी किसी के घर शर्म के मारे न जाते। मृणाल के अनुरोध करने पर हँसकर कहते, 'इसकी ज़रूरत ही क्या है! मेरे जैसे म्लेच्छ का किसी के घर न जाना ही अच्छा है।'

मृणाल कहती, 'तो फिर वे ही लोग क्यों आयेंगे?' वृद्ध इस बात का कोई जवाब न देकर सिर पर छाता तान कर बाहर मैदान की ओर चले जाते। वहाँ किसानों से खुद वार्तालाप करना शुरू कर देते। उनकी सुख-दुख की बातें, घर-गृहस्थी की बातें, न्याय-अन्याय, पाप-पुण्य की बात करते यहाँ तक कि आलोचना-प्रत्यालोचना में दिन काफी चढ़ जाता, तब कहीं घर लौटते। सबेरे चाय पीने के बाद यही उनका प्रतिदिन का कार्यक्रम था।

वैदायश से ही वे कलकत्ते में रह रहे थे। शहर के बाहर जो असंख्य देहाती गाँव हैं, उनसे उनका सम्बन्ध अनेक पीढ़ी पहले

ही टूट चुका था। अन्य धर्म ग्रहण करने से अपने कुटुम्बी भी फूट गये थे। इसलिये अधिकांश शहरियों की तरह कुछ न जानते हुये इन लोगों के बारे में उन्होंने भी तरह-तरह की अद्भुत धारणाएँ बना रखी हों तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं! जो अशिक्षित असंख्य कृषी दूर गाँवों में ही निवासकर सारा जीवन बिता देते हैं, शहर का मुँह देखना उनके भाग्य में शायद ही बदा होता है, उन्हें वे एक तरह से पशु के रूप में समझते थे और उस समाज को भी जंगली-समाज के रूप में ही समझते थे, मगर आज जब कि दुर्भाग्य ने अपने तीखे जहरीले दाँत उनके हृदय में गड़ाकर उनके समस्त चित्त को अपने समाज से विमुख कर दिया है, तब ज्यों-ज्यों इन निरक्षर देहाती दरिद्र किसानों के साथ उनका परिचय घनिष्ठ होता गया, त्यों-त्यों उनके हृदय में इनके प्रति प्रेम और श्रद्धा बढ़ने लगी, और साथ-साथ अपने समाज, उसके आचार-विचार, उसकी शिक्षा और संस्कृति, उसके धर्म और सभ्यता, उसके विधि-विधान—सबके विरुद्ध विद्वेष और वितृष्णा से उनका अन्तःकरण परिपूर्ण हो उठा।

उन्हें स्पष्टतः दिखाई देने लगा कि ये लोग निरक्षर होते हुए भी अशिक्षित नहीं हैं। अनेक युगों की प्राचीन सभ्यता आज भी इनके समाज के हाड़-मांस के साथ मिली हुई है। नीति की छोटी-मोटी बातें ये लोग जानते हैं। किसी भी धर्म के विरुद्ध इन्हें विद्वेष नहीं, क्योंकि संसार के सब धर्मों का मूल एक ही है और तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं को मानते हुए भी एक ईश्वर को स्वीकार किया जा सकता है—यह ज्ञान भी इन लोगों में किसी की अपेक्षा कम नहीं है। हिन्दुओं का भगवान और मुसलमानों का खुदा एक ही वस्तु है—यह बात भी इनको मालूम है।

उनका मन लज्जित होकर बार-बार कह उठता, 'ये लोग हमसे क्योंकर छोटे हैं? कौनसी बात मैं इनसे अधिक जानता हूँ? इनका समाज, इनका सम्पर्क त्याग कर हम क्योंकर दूर चले गये? और वह

दूरी इतनी बड़ी है कि इन अपने ही लोगों के निकट हम एकबारगी ही म्लेच्छ बन बैठे हैं।'

इस विचार-धारा में गोते लगाते जब वे घर लौटे तब दस का वक्त हो गया था। मृणाल सामने आकर बोली 'कल तुम्हारी तबियत ठीक नहीं थी पिताजी, आज फिर पोखरे में स्नान करने मत जाना! तुम्हारे लिये मैंने पानी गर्म करके रख दिया है।'

'एकदम गर्म करके रख ही दिया!' इतना कहकर केदार बाबू उसके मुँह की तरफ ताकते रह गये।

नहाने-धोने के बाद मृणाल पूजा करने बैठी थी, उनके आने की आहट पाकर अभी-अभी उठकर आई। भींगे हुए केश पीठ पर लहरा रहे थे, रेशमी वस्त्र धारण किये थी, मुख प्रसन्न दिखाई पड़ रहा था, निर्मल पवित्रता मानो उसके सर्वाङ्ग को घेर कर विराज रही थी—उसकी तरफ देखकर केदार बाबू ने कहा, 'इतनी तकलीफ क्यों की बेटी, इसकी तो कोई जरूरत नहीं थी।' कुछ देर रुककर बोले, 'मैं तो कलकतिया आदमी हूँ, नल के जल में ही स्नान करने की हमेशा से मेरी आदत है। लेकिन तुम मेरी इतनी खातिर कर रही हो मृणाल कि तुम्हारा यह जीर्ण-शीर्ण पोखरा भी मेरी खातिरी किये बगैर नहीं रहता। उसके जल से कभी मेरी तबियत खराब नहीं हुई। मैं पोखरे में ही नहाऊँगा, बेटी।

मृणाल सिर हिलाती हुई बोली—'नहीं पिताजी, सो तो हो नहीं सकता। कल तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं थी, मैं अच्छी तरह जानती हूँ। मैं गरम पानी ले आऊँ, तब तक तुम तेल मलो।'—इतना कहकर वह ज्योंही जाने लगी कि केदारबाबू एकाएक बोल उठे—'सो तो लाओगी ही, लेकिन आज मुझे यह बताओ मृणाल कि पराये की इस तरह सेवा करने की विद्या इतनी छोटी-सी उम्र में तुमने किससे और कैसे सीखी! इस तरह की सेवा तो मैंने और कहीं नहीं देखी बेटी!'

मृणाल का मुँह लज्जा से लाल हो उठा, मगर फिर भी हँसती हुई बोली, 'लेकिन क्या तुम मेरे लिये गैर हो पिताजी?'

केदार बाबू बोले, 'नहीं, गैर नहीं; मैं तुम्हारा बच्चा हूँ। मगर इस तरह भागने से काम नहीं चलेगा, इसका जवाब आज तुमको देना ही पड़ेगा।'

मृणाल ने लौटकर उसी तरह सलज्ज मुस्कराहट के साथ उत्तर दिया, 'यह इतना कठिन काम थोड़े ही है जो परिश्रम करके सीखना पड़ेगा? यह तो हम जन्मते ही सीख लेती हैं। लेकिन तुम्हारा पानी जो ठण्डा होता जा रहा है पिता जी—'

'होने दो' कह कर केदार बाबू गम्भीर होकर बोले, 'ठीक मैं इसी बात पर कुछ दिनों से विचार कर रहा हूँ मृणाल! मनुष्य सीखने के बाद ही तैर सकता है, लेकिन जो पक्षी जलचर है वह जन्मते ही तैरने लगता है। उसका सीखना भले ही कोई देख न पाये, लेकिन काम से जी चुराकर फल तो प्राप्त नहीं किया जा सकता बेटी? ईश्वरीय नियम तो ऐसा है नहीं। कहीं न कहीं, किसी न किसी तरह सीखने की तकलीफ तो उसे उठानी ही पड़ेगी! इसीलिये उस जलचर की तरह जिस घोंसले में रहकर तुमने जो इतनी बड़ी विद्या जन्मते ही सीखी है, तुम्हारे उसी विराट विपुल समाजरूपी घोंसले की बात ही मैं दिन-रात सोचा करता हूँ। मैं सोच रहा हूँ कि—'

'लेकिन तुम्हारा पानी जो बिल्कुल—'

'पानी की बात छोड़ो बिटिया। पोखरा तो सूखा नहीं जा रहा है। मैं यही सोच रहा हूँ कि तुम्हारा यह बूढ़ा बच्चा शिशु की तरह अपनी माँ से गुपचुप कितनी ही बातें सीखे ले रहा है, जिसका उसे पता नहीं! आज भी देवी-देवता, मन्त्र-तन्त्र आदि में रंच-मात्र भी विश्वास नहीं होता, लेकिन फिर भी जब माँ को देखता हूँ कि स्नान करने के बाद वह मटमैले रेशमी वस्त्र को धारण करके संध्या पूजा करने जा रही है, तब इच्छा होती है कि मैं भी फिर से यज्ञोपवीत पहनकर उसी तरह ताम्र-पात्र सामने रख कर पूजा करने बैठ जाऊँ।'

मृणाल बोली, 'पिताजी, तुम अपने धर्म, अपने समाज को छोड़कर दूसरों का आचार पालन क्यों करोगे ? उसे भी तो कोई दोष नहीं दे सकता।'

केदार बाबू बोले, 'कोई दे सकता है या नहीं यह दूसरी बात है, लेकिन मैं उसकी निन्दा करने नहीं जा रहा हूँ ! वह चाहे भला हो या बुरा, इस उम्र में उसका त्याग करने की मुझमें शक्ति भी नहीं, धर्म-परिवर्तन का उत्साह भी नहीं। इसी मार्ग को पकड़कर जीवन के अन्त तक चलना पड़ेगा। मगर तुमको जब देखता हूँ—जब देखता हूँ कि इतनी-सी छोटी उम्र में इतना बड़ा आत्म-विसर्जन, जो स्वर्ग सिधार चुके हैं, उनके प्रति ऐसी निष्ठा, उनकी माँ को ही माँ समझकर—अच्छा, रहने दो, अब कुछ न कहूँगा—लेकिन मैं भी जिस समाज के बीच जन्म लेकर बूढ़ा हो गया हूँ बेटी, उसकी भी तो बगैर तुलना किये नहीं रह सकता। समाज-रहित जो धर्म है, उसके प्रति किसी भी तरह श्रद्धा नहीं रख सकता, मृणाल।'

मृणाल मन-ही-मन दुखित हो गई। उसके व्यक्तिगत जीवन के दुर्भाग्य को लेकर जो वे इस तरह अपनी सामाजिक शिक्षा-दीक्षा पर दोषारोपण करेंगे, यह उसको अत्यन्त अन्याय प्रतीत हुआ। वह बोली, 'पिताजी ठीक इसी तरह जब हमारे समाज को भी आप देखेंगे, तो उसमें भी आपको अनेक दोष, अनेक त्रुटियाँ दिखाई पड़ेंगी। आप देखेंगे कि हम भी अपने व्यक्तिगत दोषों को भी अपने समाज के माथे ही मढ़ने के लिये व्याकुल रहते हैं। हम भी.....

मगर बात के खत्म होने से पहले ही केदार बाबू बाधा देते हुए बोल उठे, 'लेकिन मैं तो व्याकुल नहीं रहता हूँ बेटी। तुम्हारे समाज में चाहे जितने भी दोष, जितनी भी त्रुटियाँ हो लेकिन तुम भी तो उसी समाज की हो ! इस वस्तु को तो मैं सिर पटककर भी नहीं पा सकूँगा।'

मृणाल का मुँह पुनः लज्जा से लाल हो उठा। वह बोली 'इस प्रकार अगर तुम बार-बार मुझे शर्मिन्दा करोगे पिताजी, तो मैं ऐसी भागूँगी कि मुझे ढूँढ़ने पर भी न पाओगे, यह मैं पहले से बताये देती हूँ।'

वृद्ध उस वक्त तो कुछ बोले नहीं, सिर्फ उदास चेहरे से चुपचाप उसके मुँह की तरफ देखते रहे। उसके बाद धीरे-धीरे बोले, 'मैं भी आज तुमसे कहे देता हूँ बेटी, यह काम मैं तुम्हें किसी भी तरह नहीं करने दूँगा। तुम मेरी आँखों की पुतली हो, तुम मेरी माँ हो, तुम मेरा एकमात्र आश्रय हो। इस अनाथ अकर्मण्य बूढ़े के भार से तुम्हें छुटकारा पाने का दिन जब आयेगा, जो कि अब अधिक दूर नहीं है, लेकिन मैं वह दिन देख नहीं सकूँगा, फिर भी मैं अच्छी तरह जानता हूँ।' कहते-कहते उनकी आँखों में आँसू भर आये।

कुर्त्ते की बाँह से आँखें पोंछते हुए बोले, 'मेरा एक काम अब भी बाकी रह गया है, वह काम है महिम के साथ मुलाकात करना। क्यों वह भागा-भागा फिर रहा है, एक बार स्पष्टरूप से उससे पूछना चाहता हूँ। ऐसा भी तो हो सकता है कि वह जिन्दा न हो!'

'क्यों पिताजी, तुमको भी यही डर है?'

'डर?' वृद्ध के मुँह से एक लम्बी साँस निकल पड़ी; वे बोले, 'सन्तान की मृत्यु ही क्या पिता के लिये सबसे बड़ी विपत्ति नहीं है बेटी?'

३६

अपनी इकलौती पुत्री की मृत्यु से भी बढ़कर जो दुर्गति पिताकी आँखों के आगे आ खड़ी हुई है, उसके आभास मात्र से ही मृणाल कुंठित और लज्जित होकर जब चुपचाप वहाँ से चली गई, उस वक्त इस साध्वी विधवा तरुणी की लज्जा मानो ठीक एक हथौड़े की तरह केदार बाबू के सीने पर चोट कर गई। बहुत देर तक वे अकेले ही चुपचाप अपनी

सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते रहे, उसके बाद एक लम्बी साँस लेकर धीरे से तेल की कटोरी उन्होंने उठा ली।

आज सबेरे से तो आकाश बिल्कुल साफ था, मगर दोपहर के कुछ बाद से ही बादल मंडराने लगे। केदार बाबू अभी-अभी शय्या त्यागकर उठे हैं और पश्चिम तरफ की खिड़की खोलकर बाहर की तरफ देख रहे थे। सामने एक अमरूद का पेड़ फूल से लद गया था और उस पर असंख्य मधुमक्खियों के आनन्द-गुञ्जन का कोई अन्त नहीं था। निकट ही लम्बी रस्सी से बँधी हुई मृणाल की अपने हाथ से पाली हुई चिक्कन परिपुष्ट गाय सों-सों करती हुई घास चर रही है और उसके पीठ के ऊपर से पगदंडी का बहुत-सा हिस्सा दिखाई पड़ रहा था।

'पिताजी, तुम्हारे लिये चाय ले आऊँ ?'

'केदार बाबू मुड़कर देखते हुए बोले 'अभी ही लाओगी बेटी' ?

'वाह, अब दिन ही कितना बाकी है !'

वे जरा हँसते हुए तकिये के नीचे से घड़ी निकालकर बोले, 'मगर अभी तीन भी तो नहीं बजे बेटी !'

मृणाल बोली 'तीन न बजे हों, इससे क्या ! प्रातःकाल तो तुमने कुछ खाया ही नहीं।'

केदारबाबू मन-ही-मन समझ गये कि आपत्ति करना व्यर्थ है। इसीलिये बोले, 'अच्छा ले आओ।'

मृणाल क्षणभर स्थिर रहने के बाद बोली—'अच्छा पिताजी, तुम जो अक्सर कहा करते थे कि भुना हुआ चिउड़ा तुम्हें बहुत अच्छा लगता है ?'

'यह बात तो झूठी नहीं है बेटी।'

'तो फिर थोड़ा सा ले आऊँ !'

'सो भी लाओगी ? अच्छा ले आओ' कहते हुए उसके मुँह की तरफ देखकर जोर करके जरा हँसे। मृणाल के चले जाने पर फिर उसी

खिड़की के बाहर दृष्टिपात करते ही उन्होंने देखा कि सब कुछ धुँधला पड़ गया है; दूसरे ही क्षण गर्म आँसुओं की पाँच-छ बूँदें टपटप करके उनकी गोद में गिर पड़ीं। जल्दी से कुर्ते की बाँह से आँसू का दाग मिटाते हुए चेहरे को शान्त और सहज दिखाने के विचार से चटपट एमर्सन की किताब खोल कर आँखों के सामने रख ली।

पुस्तक के पन्ने में चाहे जो कुछ भी हो, उनके हृदय पर यही भाव अंकित होने लगा कि 'सृष्टि कैसी आश्चर्यजनक तथा अज्ञेय है! जीवन के दिन जब कि अँगुलियों पर गिनने लायक रह गये हैं, तभी क्या इस दीर्घजीवन की समस्त अभिज्ञताओं, सकल आयोजनों को रद्द करके फिर नये सिरे से ज्ञानोपार्जन की जरूरत आ पड़ी! मैं अच्छी तरह देख रहा हूँ कि मेरे मानव-जीवन का सारा अतीत ही एक प्रकार से व्यर्थ हो गया है। और यह बात भी समझने से बाकी नहीं कि इस कमी को पूरी करने के लिये यह एक महीना ही पर्याप्त रहा।'

दरवाजे पर पैरों की आहट सुनकर उन्होंने मुँह उठाकर देखा कि मृणाल पत्थर की कूड़ी में चाय और रेकाबी में भुना हुआ चिउड़ा लिये हुए अन्दर आई है। दोनों हाथ बढ़ाकर उन चीजों को लेते हुए बोले, 'आज मेरा खाना ठीक से नहीं हुआ, यह अब मालूम पड़ रहा है। मगर देखो बिटिया—'

'नहीं पिताजी, अगर तुम बातें करना शुरू कर दोगे तो सब ठंडा हो जायगा।'

केदारबाबू ने चुपचाप चाय की कूड़ी मुँह में लगा ली और खत्म होने पर कूड़ी को नीचे रखते हुए एक साँस लेकर बोले, 'मैं यही कामना कर रहा हूँ मृणाल कि दूसरे जन्म में मेरी पुत्री होकर तुम जन्म लो। छाती से चिपका कर पोस-पालकर बड़ी करने की विद्या मैंने अच्छी तरह सीख ली है बेटी, मेरी बड़ी अभिलाषा है कि दूसरे जन्म में इस विद्या से जीवन भर काम लूँ!'

अन्त में उनका कंठ-स्वर काँपने लगा, किन्तु मृणाल इस तरह की आलोचना से ही बहुत डरा करती थी। इसीलिये उनके अपरिस्फुट आवेग के प्रति बिना ध्यान दिये ही मुस्कुराती हुई वह बोली—'ठीक तो है पिताजी, तुम्हारे बहुत से बाल-बच्चों में मैं भी एक हो जाऊँगी।'

वृद्ध उसी क्षण ज़ोर से सिर हिलाते हुए बोले—'नहीं, नहीं, बहुत से नहीं बेटी, बहुत-से नहीं। सिर्फ तुम एक—मेरी एकमात्र कन्या। अकेली तुम्हीं मेरे समस्त हृदय पर अधिकार करोगी। इस बार जो कुछ मैं तुमसे सीखे जा रहा हूँ उन सबको एक-एक करके अपनी कन्या को सिखाकर फिर ठीक इसी तरह बुढ़ापे में उन सबको लौटाकर दूसरे जन्म के पथ पर अग्रसर होऊँगा।'—इतना कह नज़र बचाकर उन्होंने आँसू पोंछ लिये।

मृणाल दुखित स्वर में बोली—'तुम सिर्फ मुझको लज्जा दे रहे हो पिताजी। मैं क्या जानती हूँ, कहो तो?'

'यही जो आज मैंने भरपेट खाया नहीं। सो मैं खुद नहीं जानता था, पर तुम जानती थी।'

'यह क्या बड़ा जानना है। जिसके आँखें हैं, वही इसे देख सकती है।'

'मगर वे आँखें तो सबके नहीं हैं मृणाल'!—इतना कहकर ज़रा ठहरकर बोले—'लेकिन अत्यधिक आश्चर्य तो मुझे इस बात पर हो रहा है बेटी, कि भगवान कहाँ से किस तरह मनुष्य को वास्तविक निज जनों से मिला देते हैं, सो कोई जानता नहीं। इसमें न कोई आडम्बर है, न सम्बन्ध की कोई बला है, और न कोई समय का हिसाब ही है। पलमात्र में कहाँ कौनसी घटना घट जाती है—केवल जब पूरे हृदय से हम उसे प्राप्त कर लेते हैं, तभी मालूम होता है कि इतने दिनों तक इतनी बड़ी कमी को बर्दाश्त कैसे करता रहा?'

मृणाल धीरे से बोली—'सो ठीक बात है पिताजी, नहीं तो तुम्हारी जो एक लड़की इस जंगल में पड़ी हुई थी, इतने दिनों तक उसकी खोज खबर तो तुमने ली नहीं।'

केदार बाबू बोले—'खोज खबर लेने की मेरी सामर्थ्य क्या है बेटी जब तक कि उनकी तरफ से हुक्म नहीं मिल जाता। फिर जब हुक्म मिल गया, तब कहीं कोई बाधा नहीं, न मालूम कौन ठेलठाल कर मुझे बसीट लाया। आज सभी देख रहे हैं कि यह तो सिर्फ महीने भर का परिचय है। किन्तु मैं जानता हूँ, यह मेरे भाड़े का हिसाब तो है नहीं, कि पोथी-पत्रा के साथ गिन्तो करके इसको मिलाया जायगा! यहाँ तो मालूम पड़ रहा है कि न जाने कितने युग-युगान्तर से तुम्हारी स्नेहमयी छाया में बैठा हुआ हूँ—इसमें दिन, महीना, साल का हिसाब कैसा है!

इतना कहकर वे जरा फिर ठहर गये। मृणाल स्वयं कुछ कहना चाहती थी, लेकिन सहसा उनके चेहरे की तरफ देखकर दंग रह गई। वह सोचने लगी कि इस वृद्ध के हृदय में इतने दिनों से दुख की चिता जो चुपचाप जल रही थी, सो मानो किसी तरह बुझने पर है और इसी का अंतिम अभास उनके चेहरे पर प्रदीप्त हो उठा है, उसी मंद आलोक में कहीं का कोई सुगंभीर स्नेह मानो असीम करुणा से मिश्रित होकर फूट पड़ा है।

कुछ क्षण तक किसी ने कुछ नहीं कहा—मृणाल की निगाह उसी तरह जमीन की ओर स्थिर रही। इस नीरवता को केदार बाबू ने ही भंग किया। वे बोले—'मृणाल मैंने एक धर्म को त्यागकर दूसरे धर्म को स्वीकार किया है, दूसरे के प्रति चाहे कोई जवाबदेही भले ही न हो मगर अपने सामने एक जवाबदेही आ पड़ी है। इतने दिनों तक तो उसे किसी तरह टाले रहा, लेकिन अब टाल नहीं सकता। धर्म के सम्बंध में समझ पाया हूँ, अब इस बात को मैं समझ रहा हूँ।

लहमे भर के लिये मृणाल के आँख उठाकर देखते ही केदार बाबू बोल उठे—'डरो मत बेटी, डरो मत, मैं बारबार तुम्हारा नाम

लेकर तुम्हें और लज्जित नहीं करूँगा, मगर इतने दिन बाद इस सत्य को समझ पाया हूँ, कि लड़ाई-झगड़ा वाद-विवाद के द्वारा और चाहे जिस वस्तु को प्राप्त कर लिया जाय किन्तु धर्म जैसी वस्तु को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

मृणाल उनके आन्तरिक अभिप्राय को समझकर धीरे-धीरे बोली—'यह बात सच्ची हो सकती है पिताजी, लेकिन जिस धर्म को मैं अच्छी चीज़ समझ पाई हूँ उसको प्राप्त करने में लड़ाई-झगड़ा वाद-विवाद की कोई ज़रूरत मुझे नहीं मालूम होती।'

केदार बाबू बोले—'मुझे भी कभी ज़रूरत महसूस हुई हो सो बात नहीं, लेकिन ज़रूरत पड़ ही जाती है मृणाल! किसी भी वस्तु को हम प्रेम से परित्याग तो करते नहीं। जिसका त्याग कर देता हूँ उसके लिये मन जो उदास हो जाता है वह भाव तो कभी दूर हो नहीं सकता इसीलिये तो आज बहुत बड़ी कैफियत देनी पड़ रही है बेटी। मगर तुम लोगों ने जन्मते ही जो अपने आप बड़ी आसानी से प्राप्त कर लिया है, वह अच्छा हो या बुरा, उसको पकड़कर चल रही हो। इस विभिन्नता पर जरा गौर करके देखो तो!'

मृणाल चुप रह गई, प्रतिवाद करने का उत्तर सहसा उसे ढूँढ़े नहीं मिला। केदार बाबू स्वयं भी क्षणभर स्तब्ध रहने के बाद बोले—'बेटी! आज अनेक दिनों की भूली हुई बात भी धीरे धीरे मानस पट पर अङ्कित हो उठी हैं, मगर इतने दिनों तक ये बातें कहाँ छिपी हुई थीं!

मृणाल ने आँख उठाकर पूछा—'कौनसी बातें पिताजी?' केदार बाबू ने कहा—'मेरी ही बातें बिटिया। भगवान ने बड़े होने लायक बुद्धि भी नहीं दी और न बड़ा कभी बन ही सका। मैंने एक सामान्य मनुष्यों में रहकर ही जिन्दगी बिताई है, किन्तु हममें जो बड़े हैं, जो समाज के शिरोमणि हैं, जो समाज के आचार्य हो गये हैं, उनके उपदेश को ही सदा से भक्ति और श्रद्धा के साथ मानता आया हूँ।

उन्हीं लोगों के वे ही सब विस्मृत उपदेश आज मुझे स्मरण हो आये हैं। तुमने कहा था मृणाल, अन्य धर्म को अपनाकर अच्छी वस्तु ग्रहण करने में राग-द्वेष होगा ही क्यों, उसके रहने की जरूरत ही क्या है! मैं भी तो इतने दिनों तक यही समझता रहा हूँ बेटी, इसी का प्रचार भी करता रहा हूँ। लेकिन आज देख रहा हूँ, जरूरत अवश्य थी। आज देख रहा हूँ कि हिन्दुओं में जो लोग हम पर यह अभियोग लगाते हैं कि देश-विदेशों में उनका सिर जितना हम नीचा कर सके हैं, उतना इसाई-पादरी भी नहीं कर सके—इस शिकायत को आज झूठा कहकर यों ही उड़ा नहीं सकता बेटी! वास्तव में विदेशी विधर्मियों के हाथ में हम जैसे विभीषण और तो कोई नहीं।'

मृणाल अत्यन्त चञ्चल हो उठी, किन्तु वृद्ध ने उस तरफ बिल्कुल ध्यान न दिया। वे बोलते ही गये—'मृणाल, अगर राग-द्वेष नहीं रहता, तो हमारे बीच जो सब विषय में आदर्श माने जाते हैं, यहाँ तक कि, मनुष्य जाति में जिन्हें आदर्श कहा जाता है, उन्हीं के मुख से धर्म-मन्दिर में, धर्म की वेदी पर खड़े होकर 'राम' की बदले 'रेमो', 'हरि' के बदले 'होरे', 'नारायण' के बदले 'नाराने' निकलते ही क्यों? सब को सुनाकर उच्च स्वर से यह घोषणा ही क्यों करते, कि अभागे अगर औघट में डूबने से बचना चाहते हों, तो हमारे इस पक्के घाट पर आ जायँ। बेटी, धर्मोपदेश की इस जबर्दस्त चुनौती से हमारे समाज के सभी व्यक्तियों का खून उस वक्त भक्ति से मानो गर्म हो उठता, श्रद्धा से उसी प्रकार सूख भी जाता—आलोचना से उत्पन्न परमानन्द की मात्रा में रञ्चमात्र भी कमी नहीं आती, मगर आज जीवन की इस अन्तिम छोर पर पहुँचकर मानो साफ साफ देख रहा हूँ, कि उसके बीच उपदेश चाहे जो कुछ भी हो, किन्तु उसमें धर्म का लेशमात्र भी संसर्ग न था।'

मृणाल व्यथित स्वर में बोली—'पिताजी, इन सब बातों को तुम मुझे क्यों सुना रहे हो? वे सब मेरे पूजनीय हैं, मेरे प्रणम्य हैं!'

इतना कहकर उसने दोनों हाथ आड़कर अपने माथे से लगा लिये। इस भक्तिमती तरुणी के झुके हुए चेहरे की ओर देखकर वृद्ध मानो विभोर हो गये और क्षणभर बाद ही बाहर से नौकरानी की पुकार सुनकर मृणाल के उठकर चले जाने पर भी वे उसी तरह एक भाव से ही स्थिर होकर बैठे रहे।

सास क्यों बुला रही थीं, इसे सुनकर थोड़ी देर बाद मृणाल के वापस आते ही केदार बाबू अचानक दोनों हाथ फैलाकर उच्छ्वसित आवेग से बोल उठे, 'मृणाल, इसी तरह दूसरों के दोष और त्रुटि की आलोचना करने में ही क्या मेरा सारा जीवन नष्ट हो जायगा? इससे क्या कभी छुटकारा नहीं मिलेगा बेटी?'

मृणाल बोली—'तुम्हारी मसहरी का एक कोना फट गया है पिताजी। इट कर न बैठो जरा, उसे सी दूँ।' यह कहकर वह ताख पर से सिलाई की डिबिया निकाल लाई। वृद्ध महाशय बिस्तरे से उठकर एक मूढ़े पर जा बैठे और इस कर्म निरत मौन तरुणी के आनत मुख की ओर एक टक देखने लगे। वह बगैर किसी तरफ ख्याल किये अपना काम करती रही, किन्तु उस तरफ देख-देखकर केदार बाबू के उभय नेत्र बिना किसी कारण ही बार-बार अश्रु प्लावित होने लगे और व अपनी धोती के पल्ले से बार-बार आँसू पोछने लगे।

सिलाई खत्म करके मृणाल ने डिबिया यथास्थान रख कर फिर पूछा—'रात को तुम क्या खाओगे पिताजी?'

प्रश्न सुनकर केदार बाबू अचानक एक लम्बी साँस ले अपने अश्रु-करुण ओठों पर जरा हास्य की छटा प्रकाशित करते हुए बोले, 'उस वक्त के खाने की बात सोचने के लिये इस वक्त व्याकुल होने की जरूरत नहीं बेटी, इसकी फिक्र उसी वक्त की जा सकती है। लेकिन तुम एक बार स्थिर होकर बैठो तो!' जरा ठहरकर बोले, 'इस अपराध का आज ही खातमा है। मेरे मुँह से अब कभी किसी के बारे में शिकायत न सुन पाओगी मृणाल।' जरा ठहरकर फिर बोलने लगे—

'मगर मुझपर नाराज मत होना बेटी, मैंने ठीक इसीलिये इस प्रसंग को नहीं छेड़ा है।'

उनके करुण कण्ठस्वर से चौंककर मृणाल बोली—'इस तरह की बात तुम क्यों मुँह से निकाल रहे हो पिताजी; मैं क्या किसी दिन तुम पर नाराज हुई हूँ?'

केदार बाबू उसी क्षण जोर से सिर हिलाते हुये बार-बार कहने लगे, 'कभी नहीं बेटी, कभी नहीं। तुम मेरी माँ हो न, इसीलिये तो इस बूढ़े बच्चे के सब अत्याचार-उपद्रवों को प्रेमपूर्वक हँसती-हँसती बर्दाश्त कर लेती हो। किन्तु इतने दिनों बाद आज हृदय का रक्त देकर जिस सत्य को मैंने प्राप्त किया है, सिर्फ उसीको तुम्हारे आगे प्रगट करना चाहता हूँ। दूसरों की शिकायत नहीं करना चाहता। आज मुझे निश्चित रूप से पता चल गया है कि एक दिन जिस तरह हम लोगों ने दलबन्दी द्वारा मतलब सिद्ध करने के लिये धर्म-वस्तु को पकड़ना चाहा था, उस तरह उसे नहीं पकड़ा जा सकता। अपने आप को पकड़ाये बगैर उसे तो पकड़ा ही नहीं जा सकता। परम दुख की मूर्ति धरकर जिस वक्त मनुष्य की चरम वेदना पर पाँव रखकर वह अकेला आ खड़ा होता है, उस वक्त ठसे पहचान ही लेना चाहिये। जरा सी भूल-भ्रान्ति का भार भी वह बर्दाश्त नहीं करता, मुँह फेर कर चला जाता है। किन्तु इतने बड़े दुर्भाग्य की कामना मैं अपने बड़े-से-बड़े शत्रु के लिये भी नहीं करता मृणाल!'

जिस प्रसंग से मृणाल हमेशा बचने की कोशिश करती, यह उसी का इशारा है—यह महसूस करते ही उसकी लज्जा और पीड़ा की सीमा न रही, मगर आज किसी बहाने भागने की कोशिश किये बगैर वह वहाँ निरुत्तर बैठी रही।

लगातार बाधा पाकर केदार बाबू की दृष्टि भी इस तरफ तीव्र हो उठी थी, लेकिन आज वे भी बगैर ख्याल किये बोलने लगे, 'बेटी, एक बात बार-बार कहकर भी मुझे सन्तोष नहीं होता कि तुमको छोड़

कर इस विशाल संसार में मेरा अपना कोई कभी न था ही न है; इसलिये प्रतीत होता है कि अन्तिम जीवन का सारा बोझ, सारी भलाई-बुराई न जाने कैसे तुम पर ही आकर केन्द्रित हो गई है। जो समस्त विधि व्यवस्था के मालिक हैं, यह उन्हीं की व्यवस्था है। मैं इसे निश्चित रूप से समझकर ही सब प्रकार की लज्जा और कुण्ठा से वियुक्त हो गया हूँ। गले पर आ पड़ने के संकोच से पहले-पहल मैं बहुत कुण्ठित हो गया था, लेकिन आज मेरे मन से उसकी सारी बलायें दूर हो गई हैं।'

मृणाल मुख उठाकर जरा हँसी। केदार बाबू जरा संकोच से फिर बोले, 'फिर भी न जाने क्यों कुण्ठित हो रहा हूँ मृणाल, क्यों मुँह से बात नहीं निकलना चाहती।'

'तो फिर रहने दो न पिताजी—आज इस तरह की बातें न बोली जायं तो क्या हर्ज है?'

केदारबाबू गर्दन हिलाते हुए बोले, 'नहीं, नहीं, अब ठहर नहीं सकता, अब ठहरने से काम नहीं चलेगा, मुझे यकीन है कि वह सुरेश के साथ ही—'

इस तरह का सन्देह मृणाल के मन में भी अनेक बार उठा था, इसीलिये वह सिर्फ सिर झुकाकर बैठी रही, कुछ बोली नहीं। कुछ क्षण इसी तरह चुपचाप बीत जाने पर केदारबाबू जबर्दस्त कोशिश से अपने-आपको दबाते हुए बोल उठे—'एक बार महिम के यहाँ जाना चाहता हूँ मृणाल, सिर्फ एक बार उसके मुँह से यह बात सुनना चाहता हूँ—सिर्फ इसीके लिये मेरा हृदय मानो प्रतिपल धू-धूकर जला जा रहा है। किन्तु अकेले जाकर उसके आगे मैं किस तरह खड़ा हो सकूँगा?'

मृणाल ने उसी क्षण मुँह उठाकर अपने सकरुण नेत्रों को दुर्भाग्य-ग्रस्त वृद्ध के लज्जित एवं भीत चेहरे की ओर स्थिर करके कहा—'तुम अकेले क्यों जाओगे पिताजी! अगर जाना ही है तो हम दोनों एक साथ चलेंगे।'

'सचमुच, चलोगी बेटी ?'

'जरूर चलूँगी पिताजी। इसके अलावा मैं अकेला तुम्हें छोड़ ही कैसे सकती हूँ ? तुम चाहे जहाँ भी जाओ, मैं बगैर साथ गये नहीं छोड़ूंगी, यह कहे देती हूँ। मुझे कोई अपने साथ नहीं ले जाना चाहता पिताजी, मैं कहीं जरा घूमने भी नहीं पाती।'

प्रत्युत्तर में वृद्ध कुछ न बोले, सिर्फ दोनों हथेलियों से मुँह को दबाकर अपने दोनों जघे पर औंधे-मुँह पड़ गये और दूसरे ही क्षण दिखाई पड़ा कि उनका जीर्ण-शीर्ण शरीर सिर से पैर तक आन्तरिक वेदना से थर-थर काँप रहा है।

मृणाल चुपचाप उनके सिराने बैठी रही, कोई सान्त्वना या ढाढ़स की बात तक न बोली। अपनी एकमात्र कन्या की अत्यन्त घृणित दुर्गति से पिता की छाती फटी जा रही थी लेकिन उन्हें सान्त्वना देने के लिये उसके पास था ही क्या ?

इसी तरह बहुत देर बाद वृद्ध अपने को सम्हालकर उठ बैठे और पुकारा—'बेटी !'

उनके मुँह की तरफ देखकर मृणाल की छाती फट गई, मगर प्राणपण से उमड़ते हुए आँसुओं को रोककर उसने उत्तर दिया, 'क्या है पिताजी ?'

'संसार में व्यथा की मात्रा इतनी विशाल हो सकती है, यह तो मैंने कभी सोचा नहीं मृणाल ! इससे मुक्ति पाने का क्या कोई रास्ता नहीं ? क्या इसका पता किसी को नहीं ?'

'किन्तु पिताजी, लोग मृत्यु का शोक भी तो बर्दाश्त कर लेते हैं !'

केदारबाबू बोले, 'मेरे लिये वह मर गई, यही तुम कहना चाहती हो बेटी ? एक हिसाब से बात भी यही है। अनेक बार मेरे मन में भी यही भाव उठा है। लेकिन मृत्यु का शोक जितना विशाल होता है, उसकी शान्ति, उसकी मधुरता भी उतनी ही विशाल होती है। मगर उस

सान्त्वना का उपाय ही कहाँ रहा मृणाल ? इसकी दुःसह ग्लानि, असह्य लज्जा मेरे हृदय में इस तरह जमकर बैठ गई है कि उसे खिसकाकर कहीं रखने की तिल भर भी जगह नहीं।' यह कहकर आँख बन्दकर हाथ को नीचे करते हुए फिर धीरे-धीरे कहने लगे, 'बेटी, जो सन्तान को मृत्यु देते हैं उन्हें हम इसलिये क्षमा कर देते हैं कि उनके कार्य-कारण से हम परिचित नहीं ! हम—'

मृणाल अचानक रोकती हुई बोल उठी, 'पिताजी, फिर क्या हम भी ऐसा ही कर सकते हैं ? चाहे जो कुछ भी हो, जिसके कार्य-कारण का हमें पता नहीं, उसको अगर हम माफ न भी कर सकें तो अन्त में मन-ही मन विचार करके उसे अपराधी तो न ठहरावें पिताजी !'

वृद्ध जैसे चौंक पड़े, और मृणाल के चेहरे पर अपनी तीखी निगाह स्थिर करके पत्थर की तरह निस्पन्द होकर बैठे रह गये।

मृणाल सलज्ज मुख से धीरे-धीरे कहने लगी, 'इसके अलावा मैं स्वयं भैया के मुँह से ही सुन चुकी हूँ पिताजी, कि संसार में ऐसे अपराध बहुत थोड़े हैं, जिन्हें इच्छा करने पर क्षमा न किया जा सके।'

केदार बाबू उत्तेजित होकर सीधे होकर बोले—'क्या ऐसा अपराध भी कोई कभी माफ कर सकता है, मृणाल ?'

मृणाल चुप बैठी रही। वे उसी तरह तीव्र स्वर में बोलने लगे, 'कभी नहीं, कभी नहीं। बाप होकर मैं उसके इस पाप को किसी भी तरह क्षमा नहीं कर सकता। न तो यह क्षमा के योग्य है और न क्षमा करना उचित ही है, यही मेरा निश्चय विचार है।'

मृणाल धीरे-धीरे बोली, 'योग्य अयोग्य तो विचार की बात है पिताजी। उसे क्षमा नहीं कहा जा सकता। इसके अतिरिक्त क्षमा का फल क्या सिर्फ अपराधी को ही मिलता है, क्षमा करने वाला कुछ नहीं पाता ?'

वृद्ध एकाएक स्तब्ध हो गये। बालिका की इस शान्त-स्निग्ध वाणी ने क्षण भर में ही उन्हें चकित कर दिया। कुछ क्षण तक हक्का-बक्का-सा रहने के बाद वे अकस्मात् बोल उठे, 'इस तरह तो मैंने कभी नहीं सोचा मृणाल। तुमसे आज फिर मुझे एक नूतन तत्त्व प्राप्त हुआ है। ठीक तो कह रही हो! जो ग्रहण करता है, लाभ के खाते में क्या उसी को सोलह आने वसूली देकर दाता के खाने में केवल शून्य ही दिया जा सकता है? इसे किसी भी प्रकार सत्य नहीं कहा जा सकता! ठीक-ठीक किसका अपराध कितना बड़ा है, उसका विचार जिसको खुशी हो करे, मैं क्षमा करूंगा सिर्फ अपनी तरफ देखकर! यही न है तुम्हारा उपदेश बेटी?'

'यह सब कहकर मेरा अपराध क्यों बढ़ा रहे हो पिताजी?'

'तुम्हारा अपराध! संसार में क्या इसके लिये भी स्थान है बेटी?'

मृणाल अचानक उठती हुई बोली, 'शायद सासजी मुझे फिर बुला रही हैं। मैं अभी आई पिताजी।' इतना कहती हुई वह जल्द कमरे से बाहर हो गई।

४०

मृणाल उठकर चली गई, किन्तु केदार बाबू ने उस तरफ मानो देखा ही नहीं। केवल अपनी ही बात की धुन में मग्न होकर मन-ही-मन कहने लगे, मैं बच गया! मैं बच गया बेटी, तुमने मुझे बचा लिया। दुर्गति के दुर्गम विपिन में जब दोनों आँखों पर पट्टी बँधी है, मौत के सिवा जब मेरे लिये दूसरा रास्ता ही न रहा, तब सामने ही जो मोक्ष का इतना बड़ा राजपथ मेरे लिये खुला है, इसकी खबर तुम्हारे सिवा और दे कौन सकता था! क्षमा की बात तो मैं कभी सोच भी नहीं सकता था। अगर कभी मन में वह भाव उठा भी है, तो उसी वक्त

उसे दोनों हाथों से ठेलकर बड़े दर्प और गर्व के साथ मैंने यही कहा है—नहीं कदापि नहीं ! कन्या होकर जिसने इतना बड़ा अपराध किया है, पिता होकर इतना बड़ा दान मैं किसी भी तरह उसे नहीं दे सकता !—किन्तु अरे अन्धे, मूढ़, कृपण ! पिता होकर जिस वस्तु को तू नहीं दे सकता, दूसरा कोई उसे क्योंकर देने लगा ? और वह तुझसे ले ही कितना जायगी ! तेरी सारी क्षमा तेरे अपने ही घर लौट आयेगी । तू अपनी मृणाल-माँ के इस तत्त्व को एक बार आँखें खोलकर देख तो ले ।'—इतना कहकर वे ठीक मानो देखने के लिये ही आँखें फाड़-फाड़कर मेघाच्छन्न आकाश की ओर देख कर ज़ोर से कहने लगे—'मैंने क्षमा कर दिया, मैंने क्षमा कर दिया ! सुरेश, मैंने तुम्हें क्षमा किया ! अचला, तुम्हें भी क्षमा किया ! पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग जो कोई जहाँ भी हो आज मैं सब को क्षमा करता हूँ ! आज से किसी के विरुद्ध मुझे न कोई क्षोभ है, न कोई शिकायत । आज मैं जीव-मुक्त हूँ, आज मैं स्वाधीन हूँ, आज मैं परमानन्दमय हूँ !'—कहते-कहते अनिर्वचनीय करुणा से उनके दोनों नेत्र बन्द हो गये, और दोनों हाथ समेटकर धीरे-धीरे गोद में रखते ही उनकी मुदी हुई आँखों से पितृ-स्नेह मानो अजस्र अश्रु-धारा में परिणत होकर झर-झरकर गिरने लगा और काँपते हुए दोनों होठ अस्फुट स्वर में कहने लगे, 'बेटी ! बेटी ! तू कहाँ है, एक बार सिर्फ़ लौटकर आ जा ! मैं तुझे पृथ्वी पर लाया हूँ, मैंने तुझे छाती से लगाकर पाल-पोसकर बड़ा किया है । तू अपने सारे अपराध, समस्त अपमान लाञ्छना को लिये हुए ही एक बार और अपने पिता की गोद में लौट आ अचला, मैं हृदय से तेरे सारे घाव, सारी ज्वालाएं मिटाकर फिर उसी तरह पाल-पोसकर मनुष्य बनाऊँगा । मैं जन-समूह में नहीं जाऊँगा, घर से बाहर नहीं निकलूँगा, सिर्फ़ तू और मैं —'

'पिताजी !'

वृद्ध ने मुँह फेर मृणाल के मुँह की तरफ देखा, शायद, एक बार अपने को सम्हालने की कोशिश भी की; लेकिन दूसरे ही क्षण भूमि पर लुढ़क कर बच्चे की तरह आर्त-कण्ठ से रो पड़े, 'बेटी, बेटी, मेरी छाती फटी जा रही है ! सभी उसे कितना दुख दे रहे हैं, कितनी पीड़ा पहुँचा रहे हैं ! मुझसे अब और नहीं सहा जाता !'

मृणाल कुछ भी न बोली, सिर्फ़ नजदीक आकर भूमि पर पड़े हुये हुए उनके मस्तक को चुपचाप अपनी गोद में रखकर हाथ से सम्हालने लगी। उसकी अपनी आँखों से भी आँसू गिरने लगे।

प्रथम फाल्गुनका यह मेघाच्छन्न दिवस शायद इसी तरह समाप्त हो जाता, लेकिन अचानक केदारबाबू आँखें खोलकर उठ बैठे और बोले, 'मृणाल, महिम को चिट्ठी लिखने पर क्या जवाब नहीं मिलेगा ?'

'क्यों नहीं मिलेगा पिताजी ? मैं तो समझती हूँ कि कल-परसों तक ही उनका उत्तर आ जायगा।'

'क्या तुमने उसे कोई चिट्ठी लिखी है ?'

मृणाल ने गर्दन हिलाकर बताया—'हाँ।'

चिट्ठी में क्या लिखा गया है, यह बात वृद्ध संकोचवश पूछ न सके। बाहर की तरफ नजर दौड़ाते हुए बोले—'अब भी कुछ दिन बाकी है, मैं जरा टहल आऊँ।'—इतना कहकर उन्होंने कन्धे पर दुशाला डाला और हाथ में छड़ी ले ली, किन्तु दो एक पग आगे बढ़ते ही सहसा रुककर बोले, 'मगर देखो बेटी—'

'क्या पिताजी ?'

'मुझे भय है—नहीं ठीक भय नहीं—लेकिन मैं सोच रहा हूँ कि—'

'क्या सोच रहे हो पिताजी ?'

'जानती हो बेटी, मैं सोच रहा हूँ—अच्छा, तुम्हें क्या मालूम पड़ता है मृणाल। अगर हम जाना चाहें, तो महिम आपत्ति तो नहीं करेगा ?'

यह डर और चिन्ता दोनों ही मृणाल को काफी थी और मन-ही-मन इसका जवाब भी एक तरह से ठीक करके रखे हुए थी, इसीलिये उसी क्षण बोली—'अभी से उसकी खोज करने की हमें क्या जरूरत है पिताजी ? उनका पता जानते ही हम चले जायेंगे। इसके बाद भैया जब मुझे भगा सकेंगे, तब दुनिया में जानने लायक बहुत-सी बातें आप-ही-आप जानी जा सकेंगी पिताजी। किसी से कुछ पूछने की जरूरत न पड़ेगी।'

केदार बाबू क्षणभर स्थिर रहने के बाद बोले, तो क्या तुम सचमुच मेरे साथ चलोगी ?

मृणाल बोली—'सचमुच, चलूँगी। लेकिन मैं तो तुम्हारे साथ जाऊँगी नहीं पिताजी, बल्कि तुम्हीं मेरे साथ चलोगे।'

प्रत्युत्तर में वृद्ध फिर कुछ कहना चाहते थे, लेकिन सिर्फ क्षणभर उसके चेहरे की ओर देखा और मुँह फेरकर बाहर निकल गये।

× × ×

ठीक इसी तरह फाल्गुन की एक संध्या में बंगाल के बाहर और भी दो नर-नारियों की आँखों के आँसू उस दिन इसी तरह रोके नहीं रुक रहे थे। सुरेश ने सील-मुहर किया हुआ एक बड़ा लिफाफा अचला के हाथ में देते हुए कहा—'इतने दिनों से अब देता हूँ, अब देता हूँ करते-करते इस कागज को तुम्हारे हाथ में देने का मुझे साहस नहीं हो रहा था, लेकिन आज मैं बगैर दिये नहीं रह सकता।'

अचला लिफाफे को हाथ में लेती हुई दुविधा के स्वर में बोली—'इसका मतलब ?'

सुरेश ज़रा हँसता हुआ बोला, 'संसार में जिसके लिये मुझे साहस न हो, क्या कोई ऐसी भी भयंकर आश्चर्य की बात हो सकती है ? तुम यही बात सोच रही हो न ? इसका मतलब अगर कुछ है तो एक-न-एक दिन जाहिर होगा ही। लेकिन अनेक

अपमानों, अनेक दुखों का बोझ भी तो इस संसार में तुमने मुझसे बगैर अर्थ पूछे ही उठा लिया है, उसी तरह इसको भी समझकर ग्रहण कर लो अचला।'

अचला ने शान्त स्वर में पूछा—'इसके अन्दर क्या है ?'

सुरेश हाथ जोड़कर बोला—'अभी तक तुमसे जो कुछ भी पाया हूँ, वह डाकुओं की तरह जबरदस्ती पाया हूँ। मगर आज सिर्फ एक चीज़ की भीख माँग रहा हूँ, वह यह कि इसके बारे में कुछ न पूछो।'

अचला चुप रह गई, इसके बाद क्या कहे उसकी समझ में नहीं आया।

बाहर पर्दे के दूसरी तरफ से नौकर ने आवाज़ दी—'बाबूजी, इक्कावाला कह रहा है कि अब और देर करने से पहुँचते-पहुँचते रात हो जायगी। रास्ते में आँधी-पानी भी आ सकता है।'

अचला चौंककर बोली—'आज फिर तुम कहाँ जाओगे ऐसे समय में ?'

सुरेश मुस्कराकर संशोधन करता हुआ बोला—'अर्थात् ऐसे कुसमय में जा रहा हूँ उसी मझौली गाँव में। प्लेग के डाक्टर कहीं मिल नहीं रहे हैं, और गाँव के गाँव श्मशान बन गये हैं। इस बार पाँच-सात दिन ठहरना पड़ेगा—और जानता ही कौन है, शायद एकबारगी ही कूच करना पड़े।' यह कहकर वह फिर ज़रा हँसा।

अचला स्थिर होकर उसके मुँह की तरफ देखती रही। वह स्वयं भी कुछ जान गई थी कि सात-आठ कोस दूर सचमुच इस साल प्लेग से बहुत से गाँव श्मशान बनते जा रहे हैं—यह खबर उसने सुनी थी। शहर से अत्यन्त दूर इस भीषण महामारी में गरीबों को दवा-दारू के लिये चिकित्सकों का अभाव होगा यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं। सुरेश लुका-छिपा काफी पैसे लगाकर दवा और पथ्य भेज रहा है, इसकी भी खबर उसे मिल गई थी; और स्वयं भी वह तड़के ही उठकर कहीं न कहीं चला जाता है, लौटते समय कभी शाम हो जाती,

कभी रात हो जाती—परसों तो आ भी नहीं सका, लेकिन वह आज घर छोड़कर, उसको छोड़कर एकबारगी ही कुछ दिनों के लिये मृत्यु-पुरी में जाकर वास करने का संकल्प करेगा, इसकी कल्पना भी वह नहीं कर सकती थी। इसीलिये इस बात को सुनकर वह चुपचाप उसके मुँह को तरफ देखती रही। —यह महापापिष्ठ, जो भगवान को नहीं मानता, पाप पुन्य भी नहीं मानता—अपने एकमात्र मित्र की निरपराध पत्नी का इतना बड़ा सर्वनाश जिसने बेधड़क कर डाला, किसी तरह का सङ्कोच न किया—उसके मुँह की तरफ वह जभी देखती, तभी उसका मन वितृष्णा से विषमय हो उठता, लेकिन आज इस क्षण उसी के मुँह की तरफ देखकर उसका हृदय विष से नहीं, बल्कि विस्मय से परिपूर्ण हो उठा। उस व्यक्ति के अधर-प्रान्तपर अब भी हास्य की एक रेखा विद्यमान थी—वह थी अत्यन्त क्षीण, लेकिन उसी हास्य के अन्दर अचला को मानो विश्व का समस्त वैराग्य दिखाई पड़ा। उसके चेहरे पर उद्वेग नहीं, उत्तेजना नहीं, यही जो मृत्यु के बीच यात्रा कर रहा है—फिर भी मुखपर शंका का चिह्नमात्र भी नहीं दीखता। तो फिर इस घोर नास्तिक स्वार्थपरायण के लिये भी क्या उसके अपने प्राण आज इतने सस्ते हो उठे हैं। संसार में भोग-विलास के अतिरिक्त जो और कुछ समझता ही नहीं—भोग-विलास की सारी सामग्री के बीच मग्न रहकर भी जीवित रहना क्या उसके लिये इतना अकिञ्चितकर, इतनी उपेक्षा की वस्तु हो गई है, जो इतनी आसानी से उन सारी चीज़ों को त्यागने के लिये पलमात्र मे ही तैयार हो गया है। हो सकता है लौट न भी सकूं—यह चाहे और जो कुछ भी हो, हँसी नहीं है। लेकिन यह बात क्या इतनी आसानी से बोलने की है!'

अकस्मात् भीतर के धक्के से मानो अचला चञ्चल हो उठी, हाथ का कागज दिखाती हुई पूछ बैठी—'तो यह क्या तुम्हारा वसीयतनामा है!'

सुरेश ने भी पूछा—'अभी-अभी जो भीख तुमने दी है अचला, क्या फिर उसे लौटा लेना चाहती हो!'

अचला जरा चुप रहने के बाद बोली—'अच्छा मैं नहीं जानना चाहती। लेकिन मैं तुम्हें जाने नहीं दूँगी।'

'क्यों ?'

प्रत्युत्तर में अचला उसी लिफाफे को फिर से हिला-डुलाकर जरा सकुचाती हुई बोली, 'तुमने मेरा जो कुछ भी क्यों न किया हो, मैं अपने लिये तुम्हें मरने नहीं दूँगी।'

सुरेश ने जवाब नहीं दिया। अचला अपनी बात से जरा लज्जित होकर बात को जरा हल्की-सी बनाने के विचार से फिर बोली—'तुम कहोगे, तुम्हारे लिये किस दुख से मरने जाऊँगा, मैं जा रहा हूँ गरीबों के लिये प्राणोत्सर्ग करने। लेकिन, फिर भी मैं जाने नहीं दूँगी।'

यह बात सुनते ही सुरेश को सहसा महिम की याद आ गई और हृदय के अन्दर से एक गम्भीर निश्वास निकलकर उस स्तब्ध कमरे में फैल गई। कारण, जीवन का मोह उसके लिये कितना तुच्छ है, कितनी आसानी से वह उसे त्यागने के लिये तैयार हो सकता है, इसका एकमात्र साक्षी आज भी उपस्थित है। वह है केवल एक महिम। आज की यह यात्रा अगर उसकी महायात्रा हो गई, तो एक वही संगी-विहीन मौन मानव केवल मन-ही-मन समझेगा कि सुरेश ने लोभ से नहीं, क्षोभ से नहीं, घृणा से नहीं, इहलोक या परलोक किसी भी वस्तु की आशा से प्राण नहीं दिये हैं, वह मरा है सिर्फ इसलिये कि उसकी मौत की घड़ी आ गई थी।

उसकी आँखों में आँसू आने वाले ही थे कि अपने को उसने सम्हाल लिया। बल्कि मुँह उठाकर जरा हँसने की कोशिश करते हुए बोला—'मैं किसी के लिये भी मरना नहीं चाहता अचला! निरर्थक चुप बैठे रहना अब और अच्छा नहीं लगता, इसीलिये जा रहा हूँ जरा घूम-फिर आऊँ। मरूँगा क्यों अचला! मैं मरूँगा नहीं?

'तो फिर यह वसीयतनामा किस लिये?'

'मगर यह वसीयतनामा ही है यह तो साबित हुआ नहीं।'

'न हो, लेकिन क्या मुझे अकेली छोड़कर तुम चले जाओगे?'

'चला ही जाऊँगा, फिर लौट कर नहीं आऊँगा, इसका भी तो निश्चय नहीं हुआ।'

'हुआ क्यों नहीं! इस विदेश में मुझे निराश्रय करके तुम—' इतना कहते ही अचला रो पड़ी।

सुरेश उठते-उठते बैठ गया। जीवन में आज प्रथम बार एक अदम्य आवेग को संयत करके क्षणभर स्थिर भाव से बैठे रहने के बाद शान्त स्वर में उसने कहा, 'अचला, मैं तो तुम्हारा साथी हूँ नहीं। आज भी तुम अकेली हो, और अगर वह दिन सचमुच ही आये, तो उस दिन भी इससे अधिक निराश्रय तुम्हें नहीं होना पड़ेगा।'

अचला की आँखों से आँसू गिर रहे थे, उन्हीं दो अश्रुपूर्ण नेत्रों को उठाकर सुरेश के मुँह की तरफ उसने स्थिर किया, लेकिन उसके होंठ थर-थर काँपने लगे। इसके बाद दाँतों से होंठ दबाकर उस कम्पन को दूर करने की कोशिश करते ही अचानक वह चीखकर रो पड़ी—'मुझसे और तुम क्या चाहते हो, मेरे पास और है ही क्या?' इतना कहते-कहते मुँह में आँचल ठूँसकर बाहर भाग गई।

नौकर ने वापस आकर कहा—'इक्कावाला—'

'अच्छा-अच्छा, उसे जरा सब्र करने को कहो।'

थोड़ी ही देर में सईस ने आकर जताया कि गाड़ी बहुत देर से तैयार खड़ी है।

'गाड़ी क्यों?'

सईस ने जो बताया उससे पता चला कि बहूजी ने पुराने मकान में घूमने जाने के लिये गाड़ी तैयार करने को कहा था, लेकिन अब नौकरानी बता रही है कि कमरे का दरवाजा बन्द है और बार-बार पुकारने पर भी कोई जवाब नहीं मिल रहा है। घोड़ा खोल दिया जाय या नहीं—यही वह जानना चाहता था।

'अच्छा, सब्र करो।'

उस कमरे के अन्दर का किवाड़ खुला ही हुआ था, उसी का पर्दा हटाकर सुरेश चुपचाप अपने सोने के कमरे में चला गया और उसी तरह चुपचाप बगल की ही एक कुर्सी पर बैठ गया। यह कमरा उन दोनों का है, यहाँ उसने अनधिकार-प्रवेश नहीं किया। लेकिन वह जो प्रशस्त, शुभ्र-सुन्दर शय्या पर औंधी मुँह पड़ी हुई सुन्दरी रो रही है, उनमें से किसी ने भी आज उसके मन को आकर्षित नहीं किया बल्कि पीड़ित करके पीछे की ही ओर ठेल दिया। अचला को उसके आने का पता नहीं था, वह रोती ही रही और उसी रोती हुई रमणी की ओर निर्निमेष दृष्टि से सुरेश चुपचाप सोचने लगा। कुछ दिन से ही अपनी भूल का उसे पता लग गया था, किन्तु उस औंधी पड़ी देह-लता ने, उसकी वेदना ने, उसकी सम्मिलित मधुरता ने मानो क्षण भर में ही उसकी आँखों पर से पर्दे को हटा दिया। उसके मन में यह भाव उठा कि प्रातःकालीन सूर्य-किरणों में पत्तों पर जो ओस की बूँदें झिल-मिल करती हैं, उनके स्वर्गीय सौन्दर्य का जो लोभी हाथ से पकड़ कर उपभोग करना चाहते हैं, ठीक उसी तरह की भूल मैंने की है। वह नास्तिक है, वह आत्मा को नहीं मानता, जिस झरने से अनन्त सौन्दर्य निरन्तर झर रहा है, वह असीम ही उसके लिये मिथ्या है, इसीलिये स्थूल के तरफ ही सारी दृष्टि एकाग्र करके उसने निश्चित रूप से समझ रखा था कि उस सुन्दर देह पर दखल जमाकर ही उसका पाना अपने-आप सम्पूर्ण हो उठेगा; मगर आज उस भ्रांति की गगन-चुम्बी अट्टालिका क्षणमात्र में चूर-चूर हो गई। प्राप्ति के उस अदृश्य भूतल से अलग करके पाना कितना बड़ा बोझ है, यह कितनी बड़ी भ्रान्ति है, इस तथ्य ने आज उसके मर्मस्थल पर चोट की। ओस की बूँद को मुट्ठी में लेने पर किस तरह वह पानी की एक बूँद की तरह देखते ही देखते सूख जाती है, अचला की तरफ देख-देखकर वह केवल इसी सत्य की उपलब्धि करने लगा। हाय रे! पत्ते का एक किनारा ही जिसके लिये

ईश्वर का दिया हुआ स्थान है, ऐश्वर्य की इस मरुभूमि में लाकर उसे वह बचा ही कैसे सकता है !

अनजाने में ही उसकी आँखों में आँसू उमड़ पड़े, आँखें पोंछकर उसने पुकारा—'अचला !'

अचला चौंक उठी, लेकिन चुपचाप ज्यों की त्यों पड़ी रही। सुरेश बोला, 'तुम्हारी गाड़ी तैयार खड़ी है, क्या तुम आज राम बाबू के घर जाओगी ?'

फिर भी कोई जवाब न पाकर बोला—'अगर इच्छा न हो तो आज घोड़े खुलवा दिये जायँ। मैं भी शायद आज बाहर न जा सकूँगा। इक्का लौटा देने को कह दूँ !' इतना कहकर वह बैठकखाने में चला गया।

यहाँ दस-पन्द्रह मिनट तक क्या सोचता रहा सो उसे स्वयं भी पता न था; अचानक साड़ी के झिलमिल शब्द से सचेत होकर देखा तो सामने अचला खड़ी है। वह आँखों की लाली को जहाँ तक हो सका पानी से धो-धाकर धनी-गृहिणी के से कपड़ों में बिलकुल सज-धजकर वहाँ आ पहुँची थी। वह बोली, 'उनके यहाँ आज एक बार अवश्य जाना चाहिये।'

यह सज-धज उसके लिये नहीं, बल्कि उन तथाकथित धनी मेहमानों के लिये थी—इस बात को सुरेश समझ गया, फिर भी मणि-मुक्ता-जटित रत्नालङ्कार-भूषित इस सुन्दरी नारी को देखकर क्षणभर के लिये वह मुग्ध हो गया। विस्मित स्वर में बोल उठा—'क्यों, अवश्य जाना चाहिये !'

'राजसी बुखार लिये ही कलकत्ते से वापस आई है ! पता चला है, ताऊजी स्वयं भी कल से बुखार में पड़े हुए हैं।'

'यहाँ आने के बाद से क्या तुम किसी दिन उनके घर नहीं गईं !'

'नहीं।'

'उनके यहाँ से भी कोई नहीं आया !'

अचला गर्दन हिलाती हुई बोली—'नहीं।'

'राम बाबू स्वय भी नहीं आये?'

'नहीं।'

इस मकान में आने के बाद से सुरेश प्लेग को लेकर इतना तन्मय हो गया था कि घर-गृहस्थी, रिश्ता-नाता इन सारी छोटी-छोटी बातों की ओर ध्यान तक न था। इसीलिये यह बात सुनकर वास्तव में विभिन्न होकर उसने कहा—'आश्चर्य है! तो फिर जाओ।'

अचला बोली 'आश्चर्य उन लोगों के लिये उतना नहीं है जितना हमारे लिये। एक को बुखार आ रहा है, और दूसरे व्यक्ति बीमार होने से पहले तक आत्मीयता को निबाहने के लिये विकल रहते थे। हमारा जाना ही उचित था।'

'अच्छा, तो जाओ। जरा जल्द ही लौटना।'

अचला क्षणभर चुप रहने के बाद बोली—'तुम भी साथ चलो।'

'मैं क्यों चलूँ!'

अचला क्रुद्ध होकर बोली—'अपनी बीमारी की बात अगर न याद आती हो तो न आये, आखिर डाक्टर के रूप में ही चलो।'

'अच्छा, चलो—' कहकर सुरेश उठ खड़ा हुआ और कपड़े बदलने के लिये बगल वाले कमरे में चला गया।

बेचारा इक्कावाला कोई हुक्म न पाकर उस वक्त तक इन्तजार ही कर रहा था। नीचे उतरकर उस पर नजर पड़ते ही अचला ने सहसा क्रुद्ध होकर नौकर से इसकी कैफियत तलब की और उसका भाड़ा उसी वक्त चुकाकर उसे चले जाने का हुक्म दिया। इक्केवाले ने सुरेश के मुँह की तरफ देख कर डरते-डरते पूछा—'कल—

अचला ने ही उसका जवाब दिया—'नहीं। बाबू का जाना नहीं होगा, इक्के की कोई जरूरत नहीं।'

गाड़ी पर सवार होकर सुरेश सामने की सीट पर ज्योंही बैठने जारहा था, त्योंही अचला ने सहसा उसके कुर्ते का छोर पकड़कर खींचते हुए बगल

में बैठने का इशारा किया। गाड़ी चलने लगी, कोई कुछ बोला नहीं, अगल-बगल बैठे हुए दोनों जने दोनों तरफ की खुली हुई खिड़की से बाहर की ओर देखते रहे।

बगीचे का फाटक पार करके गाड़ी जब रास्ते पर आ पहुँची तब सुरेश ने धीरे से आवाज दी—'अचला !'

'क्यों !'

'जानती हो आज-कल मैं क्या सोच रहा हूँ ?

'नहीं।'

'इतने दिनों तक जो सोचता आया हूँ, ठीक उसका उल्टा। पहले सोचता था किस तरह तुम्हें पाऊँ, अब दिन-रात यही सोचता हूँ कि किस तरह तुम्हें छुटकारा दूँ, तुम्हारा भार अब मानो मुझसे बर्दाश्त नहीं हो सकता।'

इस अचिन्तित एवं अत्यन्त निष्ठुर आघात की गुरुता से क्षण भर के लिये अचला का सारा शरीर और मन एक बारगी ही निष्प्राण-सा हो गया। सचमुच विश्वास कर सकी हो, सो भी नहीं, फिर भी निश्चेष्ट की तरह बैठी हुई अस्फुट स्वर में बोली—'मैं जानती थी। लेकिन यह तो—'

सुरेश ने कहा—'हाँ, मेरी ही भूल है—तुम लोग जिसे पाप का फल कहती हो। मगर फिर भी बात सच्ची है। मन के बिना यह देह, इसका बोझ इस तरह असह्य भारी हो उठेगा, यह तो स्वप्न में भी मैंने नहीं सोचा था।'

अचला ने आँखें उठाकर कहा—'तुम क्या मुझे छोड़कर चले जाओगे ?'

सुरेश ने रञ्चमात्र भी दुविधा किये बगैर जवाब दिया—'अच्छा, यही समझ लो।'

इस निःसंकोच उत्तर को सुनकर अचला बिल्कुल चुप हो गई। उसकी धड़कती हुई छाती से निकलकर सिर्फ यही शब्द चारों तरफ

गुञ्जित होने लगा—'यह वही सुरेश है ! यह वही सुरेश है ! आज उसी के निकट वह जबर्दस्त बोझ बन गई है, आज वही उसे त्यागना चाहता है ! यह बात मुँह से निकालने में उसे रत्ती भर भी संकोच नहीं हुआ !'

और अत्यन्त आश्चर्य की बात तो यह है कि यही व्यक्ति उसके असीम दुखोंकी जड़ है ! कल तक इसकी हवा तक लगने से उसका समस्त शरीर विष से भर जाता था !

मेघाच्छन्न संध्या-आकाश के नीचे जनशून्य राजपथ को प्रतिध्वनित करती हुई बड़े वेग से गाड़ी चली जा रही थी। उसी पर बैठे हुए दो नर-नारी बिलकुल मौन थे। सुरेश क्या सोच रहा था, सो तो वही जाने, लेकिन उसके उच्चारित वाक्य की कल्पनातीत निष्ठुरता को लाँघकर भी आज एक नवीन भय से अचला का सारा मन परिपूर्ण हो उठा। सुरेश नहीं है, अब वह अकेली है। इस अकेलेपन में कितनी विशालता, कितनी विकलता है, यह उसके मन में बिजली की तरह दौड़ गई। भाग्य की विडम्बना से जिस नौका पर सवार होकर वह संसार-समुद्र में बह रही है, वह अनिवार्य मृत्यु के बीच तिल-तिल करके डूबती जा रही है, यह उससे अधिक कोई नहीं जानता, फिर भी उसी सुपरिचित भयंकर आश्रय को छोड़कर आज वह दिशा-विहीन समुद्र में बहती जा रही है, इसकी कल्पना करते ही उसके हाथ-पैर ढीले पड़ गये। अब उसके कोई नहीं है, उसको प्यार करने के लिये, उससे घृणा करने के लिये, उसकी रक्षा करने के लिये, उसकी हत्या करने के लिये कहीं भी कोई नहीं; संसार में वह बिल्कुल अकेली है ! यही बात सोचते-सोचते उसका दम घुटने लगा।

सहसा अपना अशक्त एवं अवश दाहिना हाथ सुरेश की गोद में पड़ते ही उसने चौंककर देखा। अचला बड़ी मुश्किल से अपनी आवाज को शान्त बनाती हुई बोली, 'क्या तुम मुझे अब प्यार नहीं करते ?'

सुरेश ने उसके हाथ को अपने हाथ में यत्नपूर्वक लेकर कहा—'इस प्रश्न का जवाब बिल्कुल निःसन्दिग्ध होकर नहीं दे सकता अचला, मालूम यही होता है चाहे जो कुछ भी हो, यह बात सच्ची है कि प्रेम की व्यथा सहन करने की शक्ति अब मुझमें नहीं रही।'

अचला फिर कुछ देर मौन रहने के बाद अत्यन्त मृदु एवं करुण स्वर में बोली, 'तुम मुझे और किसी जगह ले चलो—'

'जहाँ कोई बंगाली न हो!'

'हाँ! जहाँ मुझे प्रतिक्षण लज्जा सताती न रहे—'

'वहाँ क्या तुम मुझको प्यार कर सकोगी अचला! यह क्या सच है!'—कहते-कहते आकस्मिक आवेग से उसके सिर को खींचकर होठों को चूम लिया।

अपमान से आज भी अचला का मुँह लाल हो उठा, दोनों होंठ बिच्छू से डंक खाने की तरह जल उठे किन्तु फिर भी वह गर्दन हिलाती हुई चुपके से बोली,—'हाँ! किसी समय तुमको मैं प्यार करती थी। नहीं, नहीं—छिः—कोई अगर देख ले तो।'—कहकर अपने को छुड़ा, सीधी होकर बैठ गई। मगर हाथ उसका सुरेश की मुट्ठी में ही रह गया, उसी को अत्यन्त प्रेम से जरा दबाकर उसने एक गहरी और लम्बी साँस ली।

गाड़ी बड़े रास्ते को छोड़कर रामबाबू के बंगले के बगीचे के अन्दर दाखिल हुई और वही बेलर-युगल-वाहित विपुल-भार अश्वयान सारे मकान को कँपाता हुआ देखते-देखते बरसातों के नीचे आकर खड़ा हो गया।

भड़कीली नई पोशाक पहने सईसों ने गाड़ी का दरवाजा खोल दिया और सुरेश ने स्वयं उतरकर अचला का हाथ पकड़कर उसे भी उतारा। अचला की आँखें ऊपर के बरामदे की तरफ थीं। वहाँ पर अन्यान्य स्त्रियों के साथ राजसी भी शय्या त्यागकर भागी हुई खड़ी थी।

बहुत दिनों के बाद चार आँखें होते ही दोनों सहेलियों के मुख पर हसी की छटा खिल गई। रामबाबू नीचे ही थे, वे शरीर पर से रजाई को हटाते हुए बड़े आनन्द और स्नेह से पुकार कर बोले—'आओ, आओ, मेरी बिटिया आओ।'

इस अपरिचित कंठ-स्वर के व्यग्र-व्याकुल आह्वान को सुनकर उसकी हँसती हुई आँखें क्षणमात्र में ऊपर से नीचे उतर कर वृद्ध पर जा पड़ीं; मगर आज उन्हीं के बगल में खड़ा था महिम—उसी की तरफ देखता हुआ मानो पत्थर बन गया है! चार आँखें हुईं, किन्तु पलकें गिरी नहीं। अचला के अंग-अंग में मणि-मुक्ताएँ उसी तरह चमकने लगीं, हीरे-जवाहरों की चमक में रञ्चमात्र की कमी नहीं हुई, लेकिन उन्हीं के मध्य खिला हुआ कमल मानो क्षणभर में मुरझाकर मर गया।

किन्तु ढलतीहुई सन्ध्या के क्षीण आलोक में बूढ़ को समझने में भूल हुई। अपरिचित पुरुष के सामने अचानक पड़कर ही वह लज्जा से उदास और भयभीत हो गई है, यह कल्पना करके वे बड़ी विकलता से अचला के झुके हुए ललाट पर दोनों हाथ रख कर बोले, 'रहने दो बिटिया, अब तुम्हें पैर छूने की जरूरत नहीं, तुम ऊपर जाओ—'

अचला कुछ बोल न सकी, लड़खड़ाती हुई ऊपर की ओर चली गई।

रामबाबू बोले—'सुरेश बाबू, ये—'

सुरेश ने कहा—'आश्चर्य! हम तो एक ही क्लास के—बचपन से ही हम दो जने—' कहकर सहसा हँसने की चेष्टा में चेहरे को विकृत कर बोला—'क्यों महिम, अचानक तुम—'

मगर बात खत्म न हो सकी। महिम मुँह फेरकर द्रुत-गति से कमरे के अन्दर चला गया।

हतबुद्धि वृद्ध ने सुरेश के मुँह की तरफ देखा और सुरेश ने भी प्रत्युत्तर में फिर एकबार हँसने की कोशिश की, लेकिन पूरी तरह

हँस न सका । ऊपर चढ़ने की काठ की सीढ़ी पर से अचानक धड़ाम से गिरने की आवाज सुनकर दोनों जने स्तब्ध हो गये। शोर-गुल मच गया; रामबाबू ने दौड़ते हुए जाकर देखा—अचला औंधी पड़ी है। वह सिर्फ दो-तीन ही सीढ़ी चढ़ी थी, उसके बाद मूर्छित होकर गिर गई।

४१

लौटते वक्त रास्ते में गाड़ी के एक कोने में सिर रखकर नेत्र बन्द किये अचला यही सोच रही थी कि आज की यह मूर्च्छा अगर न टूटती तो अच्छा होता। आत्म-हत्या करने की वीभत्सताको को वह मन में स्थान भी नहीं दे सकती, किन्तु वह इसी तरह की किसी शान्त स्वाभाविक मृत्यु की कामना कर रही थी। 'अचानक बेहोश होकर सो जाये और उसके बाद फिर आँखें ही न खुलें ! मृत्यु को इतनी आसानी से पाने का क्या कोई रास्ता नहीं ? क्या इसका किसी को पता नहीं ?'

सुरेश ने उसका स्पर्श करते हुए कहा,—'तुम कहीं और जाना चाहती थीं सो क्या जाओगी !'

'चलो।'

'इसके बाद कल तो और किसी को मुँह दिखाया नहीं जा सकता !'

'लेकिन वे तो किसी से कोई बात बतायेंगे नहीं !'

सुरेश के मुँह से एक लम्बी साँस निकल पड़ी, क्षणभर मौन रहने के बाद धीरे-धीरे बोला, 'नहीं। महिम को मैं जानता हूँ, वह घृणा से हमारा नाम तक जबान पर न लाना चाहेगा।'

यह बात सुरेश ने तो बड़ी आसानी से कह दी लेकिन इसको सुनकर अचला का अंग-अंग सिहर उठा। इसके बाद गाड़ी घर पर जब तक नहीं आ पहुँची, तबतक दोनों चुप बैठे रहे। सुरेश ने बड़े

यत्न और सावधानी से उसे नीचे उतार कर कहा, 'तुम जरा सोने की कोशिश करो अचला, मुझे बहुत-से जरूरी कागज-पत्र लिखने हैं।' यह कह कर वह अपने पढ़ने के कमरे में चला गया।

शय्या पर पड़ी-पड़ी अचला सोच रही थी कि अभी तो उसकी इक्कीस साल की उम्र है, इसी बीच कौन-सा ऐसा बड़ा अपराध उसने कर डाला जिसके लिये इतनी बड़ी दुर्गति उसके भाग्य में हुई। यह चिन्ता नई नहीं, जबतब इसी को लेकर वह अपने-आप से प्रश्न करने लगती और बचपन से अब तक की सारी घटनाओं को एक-एक करके याद करने की कोशिश करती। आज अकस्मात् मृणाल के एक दिन के तर्क की बातें याद आ गईं और उसी सिलसिले में उन सारी आलोचनाओं को एक-एक करके मन-ही-मन दुहराने लगी। उसका विवाहित जीवन एक तरह से पति के साथ विरोध में ही बीता है। सिर्फ अन्तिम कुछ दिनों में पति को उनकी रुग्ण-शय्या पर हृदय से अपना पाई थी। उनकी जान पर जब खतरे की कोई आशंका न रही, मन जब निश्चिन्त और निर्भय हो गया, उस समय के उसी स्निग्ध, सहज एवं निर्मल आनन्द के बीच दूसरे के दुर्भाग्य और वेदना से उसका हृदय जब अत्यन्त पीड़ित होने लगा, तब एक दिन मृणाल के गले से लिपटकर उसने रुँधे हुए स्वर में कहा था—'जीजी, अगर तुम हमारे समाज में, हमारे धर्म में होती, तो तुम्हारा सारा जीवन मैं यों ही व्यर्थ न होने देती।'

मृणाल ने भी हँसकर पूछा था, 'क्या करती भाभी, फिर मेरी शादी करा देती?'

अचला ने कहा था—'क्यों नहीं? मगर ठहरो जीजी, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, अब और शास्त्रों की दुहाई मत दो। इस सम्बन्ध में इतना मल्ल-युद्ध हो चुका है कि उसे सुनकर भी मुझे डर लगता है।

मृणाल ने भी उसी तरह मुस्कराते हुए कहा था, 'डरने की तो बात ही है। कारण, उनकी घींगा-घींगी कब किस तरफ आ पड़ेगी, यह

नहीं कहा जा सकता । मगर एक बात तुम नहीं सोचत भाभी, कि जो लड़ते हैं वे लड़ने को अपना पेशा समझते हैं, उनका सिद्धान्त है जिसकी लाठी उसकी भैंस। हमारी बात तो कोई पूछता तक नहीं।

अचला ने प्रश्न किया था, 'मगर पूछने पर होता क्या ?'

मृणाल ने कहा था, 'यह तो ठीक पता नहीं है बहन। हो सकता है, तुम्हारी ही तरह सोचना सीखती। हो सकता है तुम्हारे प्रस्ताव पर ही राजी हो जाती, इतने दिनों में शायद कोई दुल्हा भी मिल जाता।' इतना कहकर वह हंस पड़ी थी।

इस हँसी का उत्तर अचला ने अत्यन्त क्षुब्ध होकर दिया था—'हमारे समाज के बारे में बात चलते ही तुम अवज्ञा के साथ बोल उठती हो यह मैं जानती हूँ। मगर हमारी बात अभी छोड़ो, जो इस विषय को लेकर लड़ते-झगड़ते हैं, क्या वे सबके सब पेशेवर ही हैं ? क्या कोई वास्तविक दर्द महसूस करके नहीं लड़ता ?'

मृणाल दाँत-तले जीभ दबाकर बोली थी, 'इस तरह की बात मन में लाने से भी पाप होता है भाभी। मगर बात यह है कि कल सबेरे ही तो मैं चली जा रही हूँ, फिर कब भेंट होगी सो पता नहीं, लेकिन जाने से पहले क्या एक मजाक भी नहीं कर सकती ?'—कहते-कहते उसकी आँखों में आँसू छल-छला आये। सम्हलकर बादमें वह गम्भीर होती हुई बोली थी—'लेकिन तुम तो मेरी सारी बात समझ नहीं सकोगी बहन। तुम लोगों के लिये विवाह सिर्फ एक सामाजिक विधानमात्र है। इसलिये उसके सम्बन्ध में भला-बुरा विचार कर सकती हो, तर्क और उक्ति के अनुसार मत में परिवर्तन भी किया जा सकता है। लेकिन हम लोगों के लिये विवाह धर्म है। पति को हम बचपन से ही इसी रूप में ग्रहण करती हैं। यह सब प्रकार के विचार-वितर्कों से परेकी वस्तु है बहन !'

अचला ने विस्मित होकर प्रश्न किया था, 'अच्छा, अगर यह मान भी लिया जाय तो धर्म क्या मनुष्य को बदल नहीं सकता, जीजी ?'

मृणाल ने कहा था, 'धर्म मतामत बदल सकता है, मगर असल चीज को कौन बदल सकता बहन ? इसीलिये इतने लड़ाई-झगड़े के अन्दर आज भी मूल वस्तु सकल धर्मावलम्बियों के लिये एक ही है। पति के दोष-गुणों पर हम भी विचार करती हैं। किन्तु पतिरूप वस्तु हमारे लिये 'धर्म' है, इसीलिये वे नित्य हैं ! जीवन में भी नित्य मृत्यु के बाद भी नित्य ! उन्हें हम बदल नहीं सकती।'

अचला ने क्षणभर स्थिर रहने के बाद कहा था, 'अगर यही सच है तो इतना अनाचार क्यों है ?'

मृणाल ने कहा था, 'उसे रहना चाहिये इसलिये है। जब धर्म न रहेगा, तब यह भी न रहेगा। कुत्ते बिल्लियों में तो अनाचार नहीं होता बहन !'

अचला अचानक कोई जवाब न ढूँढ़ सकने के कारण कुछ देर चुप रहने के बाद बोली थी, 'अगर तुम्हारे समाज की शिक्षा इतनी बड़ी है, तो जो शिक्षा देने वाले हैं, उन्हें इतना सन्देह क्यों होता है, इतनी सावधानी रखने की जरूरत है किस लिये ? इतना पर्दा, इतनी नूक्ताचीनी—सारी दुनियाँ की आँखों से छिपाकर रखने की इतनी जी-जान से कोशिश क्यों ? इतनी जबर्दस्ती के सतीत्व का मूल्य तो मैं तब समझती जब परीक्षा का उसे मौका दिया जाता !'

उसकी ओज को लक्ष्य करके मृणाल चौककर हँसती हुई बोली थी, 'यह विधि जो कर गये हैं, इसका उत्तर भी उन्हीं से जाकर पूछो बहन। हमने माँ-बाप से जो कुछ सीखा है उसे सिर्फ पालन करती आ रही हूँ। किन्तु एक बात मैं तुमसे जोर करके कह सकती हूँ भाभी, पति को जिसने धर्म की वस्तु, परलोक की वस्तु, समझकर ही वास्तव में पा लिया है, उसके पाँवों में बेड़ियाँ बाँध दो, या उन्हें काट डालो, उसके सतीत्व

की आप ही आप परीक्षा हो गई है, समझ लो !'—इतना कहने के बाद जरा ठहरकर धीरे से बोली थी, 'मेरे पति को तुमने देखा है ? वे बूढ़े थे, गरीब थे, रूप गुण भी साधारण आदमियों से अधिक उनमें नहीं था, लेकिन वे ही मेरे इहलोक थे, वे ही मेरे परलोक थे !'—यह कहकर आँखें मूँदकर क्षणभर के लिये शायद उसने हृदय में उन्हें देख लिया, उसके बाद आँखें खोलकर जरा म्लान हँसी-हँसकर बोली, 'उपमा तो शायद होगी नहीं भाभी, लेकिन यह झूठी बात नहीं है कि पिता अपने काने-लंगड़े बच्चे पर भी सारा प्रेम उड़ेल देते हैं। दूसरे का सुन्दर स्वरूप बच्चा क्षणभर के लिये शायद उनके मन में जरा क्षोभ उत्पन्न कर देता है, लेकिन इससे उनके पितृ-धर्म में रञ्चमात्र भी फर्क नहीं पड़ता। संसार से कूच करते समय अपनी सारी सम्पत्ति वह किसके लिये छोड़ जाते हैं, यह तो तुम जानती ही हो ? किन्तु अपने पितृत्व के प्रति संशय होने पर अगर कभी उनका पितृ-धर्म भंग हो जाय, तो इस प्रेम का एक कण भी कहीं ढूँढ़ने से नहीं मिलेगा ! मगर हमारी शिक्षा और विचार की धारा अलग है बहन, शायद मेरी इस उपमा को और इन बातों को ठीक से समझ भी नहीं सकोगी, मगर मेरी इस बात पर भूलकर भी अविश्वास न करना कि पति को जिस स्त्री ने धर्म समझकर सोचना नहीं सीखा, उसके पाँव हमेशा के लिये चाहे बेड़ियों से जकड़ दिये जायँ, या खुले छोड़ दिये जायँ और वह अपने सतीत्व के जहाज को जितना बड़ा, जितना विशाल कल्पना करे, परीक्षा दलदल में फँसने पर उसे डूबना ही पड़ेगा। वह पर्दे के अन्दर भी डूबेगी, बाहर भी डूबेगी।

वही तो हुआ ! उस दिन इस सत्य को अचला समझ न सकी, लेकिन आज जब मृणाल का बताया हुआ वह दलदल उसको विवश करके दिन-प्रतिदिन रसातल की ओर खींचने लगा तो अब समझने में कोई कसर न रही कि उसदिन कौन-सी बात उसने इस तरह से समझनी चाही थी। नीरव रुद्ध समाज की अबाध स्वधीनता में

आँख-कान खोले ही वह इतनी बड़ी हुई थी, अपने जीवन को उसने स्वयं चुनकर ग्रहण किया था—यही था उसका गर्व लेकिन परीक्षा के अत्यन्त दुःसमय में यह सब उसके किसी काम न आया। उसकी विपत्ति अत्यन्त छिपे हुए मित्र के वेश में आई; वह आई ताऊजी के स्नेह और श्रद्धा का नकली चोगा पहनकर। इस अत्यन्त शुभाकाँक्षी स्नेह-शील वृद्ध के पुनः पुनः आग्रह करने पर जिस दुर्योग की रात्रि को वह सुरेश की शय्या पर जाकर आत्महत्या कर बैठी, उसदिन अगर कोई उसे बचा सकता था तो वह था उसका अत्यज्य सती-धर्म जिसे मृणाल ने जीवन और मरण में अद्वितीय एवं नित्य कहकर समझाना चाहा था। किन्तु उसदिन बाह्य आवरण ने ही बड़ा बनकर उसके धर्म को पराजित कर दिया। उसकी आजन्म की शिक्षा और संस्कार ने आन्तरिक तथ्य को तुच्छ और कारागार समझकर बाह्य संसार को ही हमेशा सर्वोपरि स्थान दिया है; जो धर्म गुप्त है, गुफा में रहनेवाला है, वही आन्तरिक अव्यक्त धर्म किसी दिन उसके निकट सजीव न हो सका। इसीलिये बाहरी चीजों के साथ सामंजस्य रखने के लिये उसदिन भी वह भद्र महिला के आत्म-सम्मान के बाहरी लिबास को ही लज्जा के मारे पकड़े रही, इस आवरण का मोह त्यागकर अपने को किसी भी तरह नग्न न कर सकी। 'ताऊजी, मैं जानती हूँ, मेरी इतने दिनों की पर्वत-सदृश मिथ्या के बाद मेरे सत्य को सत्य रूप में आज संसार में कोई विश्वास नहीं करेगा; मैं जानती हूँ, कल तुम घृणा से अब और मेरा मुँह देखना नहीं चाहोगे; तुम्हारी सती-साध्वी के घर का दरवाजा भी कल मेरी आँखों के सामने बन्द होकर मेरा कलङ्क संसार में फैल जायगा। वह सब मैं सह लूँगी, लेकिन तुम्हारा आज का यही भयंकर स्नेह मुझसे सहा नहीं जायगा। बल्कि तुम मुझे यही आशीर्वाद दो ताऊजी, कि मेरे इतने दिनों के 'सती' नाम के बदले तुम लोगों के निकट आज का मेरा यह कलङ्क ही मानो अक्षय हो उठे।' किन्तु हाय रे! यही बात उसके मुँह से उसदिन किसी भी तरह बाहर न निकली!'

आज निष्फल अभिमान और प्रचण्ड भावावेश से उसका कण्ठ बारम्बार रुद्ध होने लगा, और इसी अखण्ड वेदना को महिम की वही निष्ठुर दृष्टि मानो छुरी से चीरने लगी।

इस तरह करीब आधी रात बीत गई। किन्तु सभी दुखों का अन्त में एक-न-एक विराम होता है, इसीलिये उसका अश्रु-प्रवाह धीरे-धीरे सूख गया और भींगी हुई पलकें भी निद्रा में मुद्रित हो गईं।

जिस वक्त उसकी नींद टूटी, उस वक्त दिन काफी चढ़ गया था। सुरेश के लिये दरवाजा खुला ही पड़ा था, मगर वह कमरे में आया था या नहीं यह ठीक मालूम न हो सका। बाहर आने पर नौकर ने जताया—'बाबूजी बड़े तड़के ही इक्का करके मझौली चले गये हैं।'

'कोई साथ भी गया है?'

'नहीं। मैंने जाना चाहा था, मगर उन्होंने साथ नहीं लिया। बोले—प्लेग में अगर मरना चाहते हो तो चलो!'

'इसीलिये तुम खुद नहीं गये, सिर्फ दया करके इक्का बुला दिया! मुझको जगाया क्यों नहीं?'

बेहरा चुप रह गया।

अचला ने स्वयं भी जरा चुप रहने के बाद पूछा—'इक्का लाया कौन? तू?'

बेहरा ने सिर झुकाये ही जताया—'लाने की जरूरत नहीं थी; कल उसके लौटाते वक्त आज तड़के ही हाजिर होने के लिये बाबूजी ने खुद पोशीदा हुक्म दिया था।'

यह सुनकर अचला स्तब्ध रह गई। उसने जो सोचा था, बात वैसी न थी। कल शाम की घटना से इसका कोई सम्बन्ध नहीं। उक्त घटना के घटित न होने पर भी वह जाता ही—जाने के संकल्प का उसने त्याग नहीं किया था, सिर्फ उसी के डर से कुछ देर के लिये स्थगित मात्र कर दिया था।

अचला ने पूछा—'बाबू कब लौटेंगे, कुछ बता गये हैं?'

उसने बड़े आनन्द के साथ सिर हिलाते हुए कहा—'बहुत जल्द, परसों या अतरसों नहीं तो उसके अगले दिन तो निश्चय ही।'

अचला ने अब और कोई प्रश्न न किया। कल सीढ़ी पर गिरने से चोट कितनी लगी थी, ठीक मालूम नहीं पड़ा था। आज सिर से पैर तक सारी देह पीड़ा से मानो विवश है। तिस पर, रामबाबू शायद खबर लेने आवें, इस आशङ्का से उसका सारा मन भी प्रतिक्षण शंकित होने लगा। महिम किसी बात को प्रकाश नहीं करेगा इस बात को वह सुरेश की अपेक्षा कम नहीं जानती थी, फिर भी सब प्रकार की दैवी घटनाओं के घटित होने के भय से अत्यन्त व्यथा के स्थान को जिस तरह चित्त बड़ी होशियारी से रखवाली करता है, उसी तरह उसकी समस्त इन्द्रियाँ बाहर के दरवाजे पर पहरा देने के लिये बैठी रहीं। इसी तरह सबेरा खत्म हुआ, दोपहर बीता, और सन्ध्या भी बीत गई। रात को जब उनके आने की कोई संभावना न रही, तब निश्चिन्त होकर, इस बार उसने शय्या का आश्रय लिया। बगल की तिपाई पर शून्य फूलदानी से दबा हुआ कहीं का एक आयुर्वेदीय औषधालय का बहुत बड़ा सूचीपत्र पड़ा हुआ था, उसको लेकर उसी के पन्नों में अपने थके हुए नेत्रों को निमग्न करके अचानक एक बार अपना दुख भूलकर किसी एक श्रीमन्महाराजाधिराज की रोग शान्ति से आरम्भ करके ब्राह्मण घाटी के माइनर स्कूल के तृतीय शिक्षक के प्लीहा-रोग आराम होने तक का विवरण पढ़ते-पढ़ते निद्रा देवी की गोद में निमग्न हो गई।

४२

बेहरा ने कहा था कि बाबू परसों-अतरसों, या उसके अगले दिन अवश्य लौटेंगे। किन्तु इस अगले दिन की निश्चयता को दिन भर परीक्षा करने लायक शक्ति अब अचला में नहीं थी। इन तीन दिनों के बीच रामबाबू एकदिन भी नहीं आये। उनके आगमन की कल्पनामात्र

से उसका अन्तःकरण भयभीत हो उठता था और इस अनागमन में निहित अर्थ की कल्पना करके भी उसका शरीर काठ हो जाता था। वे बीमार थे, और इसी बीच बीमारी बढ़ भी सकती है,—यह बात उसके मन में भी न उठी। सिर्फ आज सबेरे उनका दरवान आया था, किन्तु भीतर प्रवेश किये बगैर बाहर ही पाँड़ेजी से बातें करके लौट गया है। वह क्यों आया था, यहाँ से कौन सी खबर ले गया है, अचला डर के मारे कोई बात किसी से पूछ भी न सकी, लेकिन इसके बाद से इस मकान, इस घर-द्वार, नौकर-चाकर सबों से भागकर वह अपने को बचा सकती है—यही भाव उसके मन में उठने लगा।

बेहरा को बुलाकर उसने कहा—'रघुबीर, तुम्हारा घर तो इसी तरफ है, तुम मझौली गाँव को जानते हो?'

उसने कहा—'बहुत दिन पहले एक बार बरात में गया था माईजी।'

'यहाँ से कितनी दूर होगा बता सकते हो?'

रघुबीर इस देश का निवासी होकर भी बहुत दिनों से बंगालियों के सम्पर्क में रहकर हिसाब लगाना बहुत कुछ सीख गया था, मन-ही-मन अन्दाजा लगाकर बोला—'छः सात कोस से कम न होगा माई जी।'

'आज तुम मेरे साथ चल सकोगे?'

रघुबीर बहुत ताज्जुब में आकर बोला—'आप जायेंगी? वहाँ तो बड़े जोर की प्लेग की बीमारी है!'

अचला ने कहा—'अगर तुम न चल सको तो और किसी नौकर को चलने के लिये राजी कर सकते हो? वह जितना इनाम चाहेगा, मैं दूँगी।'

रघुबीर दुखी होकर बोला—'माईजी, आप जा सकेंगी और मैं नहीं जा सकता? मगर रास्ता तो वैसा नहीं है, उस रास्ते से अपनी बड़ी गाड़ी नहीं जा सकती। इक्का या पालकी इन दोनों में से किसी पर भी आप न जा सकेंगी, माईजी!'

अचला ने कहा—'जो कुछ मिल जाय मैं उसी पर जा सकती हूँ। मगर अब तो देर करने से काम नहीं चलेगा. रघुवीर। तुम्हें जो कुछ मिले वही ले आओ।

रघुवीर अब और बहस न कर थोड़ी देर में ही एक पालकी का इन्तजाम करके ले आया और अपना लोटा-कम्बल लाठी से लटका कर कंधे पर रखते हुए वीर की तरह पैदल ही चलने को तैयार हो गया। घर की रखवाली का भार दरवान तथा दूसरे नौकरों पर डालकर अचला जब एक मात्र सुरेश को ही लक्ष्य करके आज एक अपरिचित मझौली के रास्ते पर घर से बाहर निकल पड़ी, उस वक्त सारी घटना ही उसे अपने लिये अत्यन्त अद्‌भुत स्वप्न की तरह प्रतीत होने लगी। बार-बार उसके मन में यह भाव उठने लगा कि इन विचित्र जगत् में इस प्रकार की घटना भी किसी दिन घटेगी —यह बात कौन सोच सकता था !'

धूल और रेतकी एक कच्ची सड़क है। लेकिन कभी तो वह सुविस्तृत मैदान में अस्पष्ट हो जाती है, कभी किसी एक छोटे से गाँव में विलुप्त और अवरुद्ध हो जाती है। गृहस्थों की सुविधा और इच्छा के अनुसार उसका विस्तार और जाने की दिशा बदल कर कभी वह नदी के किनारे से होकर, या कभी घर के आँगन के बीच से ही निकल कर दूसरे गाँव को चली गई है। पहले कुछ दूर तक तो उसका कौतूहल बीच-बीच में जग उठता था। एक मुर्दे को एक बाँस के टुकड़े में बाँधकर कई आदमियों को अपने नजदीक से लेकर जाते हुए देखकर रोग-फैलने के भय से उसका सारा शरीर सिहर उठा था। इच्छा हुई कि पूछे वह किस बीमारी से मरा है, उसकी उम्र क्या थी और उसके कौन-कौन हैं। मगर रास्ते की दूरी ज्यों-ज्यों बढ़ने लगी, त्यों-त्यों दिन भी ढलने लगा और नजदीक तथा दूर के गाँवों से रोने-पीटने की आवाज ज्यों-ज्यों उसके कानों में पहुँचने लगी, त्यों-त्यों अंदेशे से उसका दिल बैठने लगा। बहुत देर से उसे प्यास मालूम पड़ रही थी, नदी के ऊँचे

किनारे-किनारे कुछ दूर चलकर एक घाट के निकट डोली को रोक नीचे उतरी और हाथ-मुँह धोकर पानी पीने के उद्देश्य से ज्योंही वह नीचे झुकी कि उसकी नजर पड़ी—दो-एक अधजले मुर्दे कुछ ही दूर पर अटके पड़े हैं। इनकी बीभत्स विकृति का उसके मन पर कोई असर न पड़ा। बड़ी आसानी से हाथ-मुँह धोकर जल पी चुकने के बाद धीरे-धीरे जाकर डोली में बैठ गई। किसी भी अवस्था में यह उसके लिये सम्भव हो सकता—कुछ ही देर पहले शायद वह इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकती थी।

इसके बाद आनेवाले लगभग सभी गाँव परित्यक्त, जन शून्य दिखाई देने लगे। सम्भवतः कुछ अत्यन्त दुःसाहसी व्यक्तियों के अतिरिक्त, जो जहाँ जा सका वहीं भाग गया है। कहीं कोई शब्द नहीं, किसी की आहट नहीं, घर-द्वार बन्द, अपरिष्कृत—ऐसा मालूम पड़ रहा था जैसे ये झोपड़ियाँ तक मृत्यु को अनिवार्य समझकर आँख मूँदे उसका इन्तजार कर रही हैं। इन मृत्यु-शासित निर्जन देहाती गाँवों के बीच से चलने में रघुबीर तथा कहारों की दबी हुई आवाज और त्रस्त-भीत पदक्षेप प्रतिक्षण ही अचला को विपत्ति की सूचना देने लगे, किन्तु उसके मन में भय का नामोनिशान नहीं, इसके साथ मानो उसका आजन्म का परिचय हो, सारा अन्तःकरण इसी प्रकार निर्विकार बना रहा।

इसी तरह शेष मार्ग को तय करने के बाद जब वे मझौली आ पहुँचे, उस वक्त शाम हो गई थी। अचला को दृढ़ विश्वास था कि वहाँ पहुँचने के साथ ही साथ मार्ग के सारे संकटों का अन्त हो जायगा। गाँव के नरनारी दौड़ते हुए आकर उनका स्वागत करके उन्हें डाक्टर साहब के दरबार में ले जायेंगे, वहाँ रोगियों तथा उनके आत्मीय जनों की आवा-जाई में, औषध-पथ्य-वितरण की धूम में जो समारोह चल रहा होगा, उसके बीच अचला का अपना स्थान कहाँ होगा, इस चित्र की एक प्रकार से उसने कल्पना कर ली थ। लेकिन

आकर उसने देखा—उसकी कल्पना निरी कल्पना ही रही। उसके साथ इसका कहीं मेल खाता ही नहीं था, बल्कि जो दृश्य मार्ग के दोनों किनारे वह देखती-देखती आई है, यहाँ भी वही दृश्य है। यहाँ भी रास्ते पर कोई आदमी नहीं, मकान-घर-द्वार सब बन्द। इसके किस मुहल्ले में कहाँ पर सुरेश टिका हुआ है, यह ढूँढ़ निकालना मानो कठिन हो गया।

इस गाँव में आजकल भी रोज बाजार लगता है, लेकिन इस दुर्दिन में खरीद-बिक्री खत्म करके लोग तीसरे पहर ही भाग गये थे—बन्द बाजार के निशान मात्र जगह-जगह दिखाई पड़ रहे थे।

रघुबीर ने ढूँढ़-ढाँढ़कर एक दुकान का पता लगाया। बूढ़ा दुकानदार टट्टर बन्द कर रहा था, उसने कहा—'उसके बाल-बच्चे सबके सब किसी और जगह चले गये हैं, सिर्फ वही दो जने—बूढ़ा और बूढ़ी—दुकान की ममता से आज भी नहीं जा सके हैं।' सुरेश के सम्बन्ध में वह सिर्फ इतना भर बता सका कि डाक्टर बाबू नन्द पाँड़े के नीम के नीचेवाले घर में अब तक तो जरूर थे, मगर अब भी वहीं हैं या महमूदपुर चले गये, यह पता नहीं।

'महमूदपुर किधर है?'

'यहाँ से सीधे दो कोस दक्खिन की तरफ।'

'नन्द पाँड़े का घर किस तरफ है?'

वृद्ध बाहर होकर जरा दूर अंगुली का इशारा करता हुआ एक बहुत बड़ा नीम का पेड़ दिखाकर बोला,—'इसी रास्ते से जाने पर ही दिखाई देगा।'

थोड़ी देर बाद ही जब डरे और थके हुए कहारों ने नीम के नीचे पहुँचकर डोली नीचे रख दी, उस वक्त सूर्य अस्त हो चुका था। मकान बड़ा है, पीछे की तरफ दो-एक ईंट के पुराने घर भी दिखाई दे रहे हैं, लेकिन अधिकांश खपरैल ही थे। सामने दीवार न थी—खुला हुआ मैदान था। गृहस्वामी गरीब भी नहीं मालूम पड़ रहा था, मगर एक

आदमी भी बाहर न निकला। सिर्फ आँगन में एक तरफ बँधा हुआ एक छोटा-सा टट्टू भूख-प्यास से अत्यन्त करुण-स्वर में मेहमानों का स्वागत कर रहा था।

सदर दरवाजा खुला हुआ था, साहस करके अन्दर पाँव रखते ही रघुबीर ने देखा कि बगल के बरामदे में चारपाई पर सुरेश लेटा हुआ है और नजदीक ही एक खूँटी की ओर पीठ करके एक बहुत बूढ़ी औरत बैठी हुई ऊँघ रही है।

'बाबूजी ?'

सुरेश ने आँखें खोलकर देखा और कोहनी के सहारे से सिर उठाकर क्षणभर उसकी तरफ देखकर पूछा—'कौन बेहरा ? रघुबीर ?'

रघुबीर सलाम करके पास खड़ा हो गया, लेकिन मालिक की लाल आँखों की तरफ देखकर उसके मुँह से कोई आवाज न निकली।

'तू यहाँ कैसे ?'

रघुबीर फिर सलाम करके बाहर की तरफ इशारा करता हुआ सिर्फ इतना बोला—'माईजी—'

इस बार सुरेश विस्मय से सीधा होकर उठ बैठा और पूछा—'तुझे उन्होंने भेजा है क्या ?'

रघुबीर ने गर्दन हिलाकर जताया—'नहीं वे आप ही आई हैं ?'

जवाब सुनकर सुरेश इस तरह उसके मुँह की तरफ एकटक देखता रह गया मानो वह इस बात को अच्छी तरह समझ नहीं पा रहा हो। इसके बाद आँखें बंदकर धीरे-धीरे लेट गया, कुछ बोला नहीं।

अचला जब चुपचाप आकर खाट के एक किनारे उसके बगल में बैठ गई, उस वक्त कुछ क्षण वह उसी तरह आँखें बन्द किये चुपचाप पड़ा रहा, शिष्टाचार के नाते एक बार 'आओ' कहकर भी न बुला सका। बचपन से ही हमेशा अत्यन्त लाड़-प्यार से पला होने के कारण आवेग और प्रवृत्ति के वश में ही अब तक चलता आया है।

इन पर काबू पाने की शिक्षा उसे कभी मिली ही नहीं। जीवन में पहले-पहल इसकी शिक्षा उसने सिर्फ उसी दिन पाई थी जिस दिन उसके मुँह की हँसी को ठुकराकर महिम मुँह फेरकर कमरे में चला गया था। उस दिन उसके हृदय में कौन-सा विप्लव हो गया था यह तो सिर्फ अन्तर्यामी ही जानते हैं और आज भी सिर्फ उन्होंने ही देखा कि इस शान्त अचल शरीर के भीतर कौनसा बड़ा तूफान चल रहा है। उस दिन उसने जिस तरह महिम की चेष्टा को बर्दाश्त कर लिया था, आज भी वह उसी तरह अपने उन्मत्त आवेग के साथ चुपचाप लड़ने लगा—उसका कोई चिह्नमात्र भी प्रकाशित न होने दिया।

इसी तरह कितना समय बीत जाता, कहा नहीं जा सकता, लेकिन कहारों के बुलाने पर रघुवीर बाहर चला गया, उसी शब्द को सुनकर सुरेश ने धीरे से आँखें खोलकर देखा और कहा, 'तुम्हें मेरी चिट्ठी मिली?'

अचला सिर उठाये बगैर ही आहिस्ते से बोली—'नहीं।'

सुरेश ने जरा विस्मय प्रकाश करते हुए कहा—'चिट्ठी बगैर पाये ही आ गई हो, आश्चर्य! जो भी हो यह अच्छा ही हुआ कि एकबार भेंट हो गई।' इतना कहकर जवाब के लिये उसके आनत मुख की ओर क्षणभर देखने के बाद स्वयं बोला—'मेरे लिये तुम्हें अनेक कष्ट झेलने पड़े हैं। बहुत सम्भव है, जितने दिन जीवित रहोगी, इसका पीछा न छूटे, मगर मुझसे बड़ी भारी भूल हुई। महिम को तुम इतना अधिक प्यार करती हो यह मैंने भी नहीं जाना, शायद तुम भी कभी न समझ सकी! क्या यह ठीक है!'

मगर अचला को उसी तरह नीची निगाह किये चुपचाप बैठी देखकर वह फिर बोला—'इसके अलावा मेरा विश्वास है कि मनुष्य के मन नामक वस्तु की पृथक् सत्ता नहीं है। जो है वह इसी देह का धर्म है। प्रेम भी वही वस्तु है। सोचा था, तुम्हारी देह को किसी

तरह पा जाने पर तुम्हारे मन को भी पा लूँगा, तुम्हारा प्रेम भी दुष्प्राप्य नहीं रहेगा—कौन जानता है, किसी दिन सचमुच भाग्य सुप्रसन्न हो जाता। हो सकता है सर्वस्व देकर जिस तरह तुम्हें चाहा था, उससे प्रसन्न होकर तुम स्वयं किसी दिन अपनी इच्छा से ही मुझे भीख दे देती! लेकिन अब उसका समय नहीं रहा; इन्तजार करने का मौका मुझे नहीं मिला।' इतना कहकर उसने फिर कोहनी के बल सिर उठाया और सन्ध्या के मन्द आलोक में अपने दोनों नेत्र तीक्ष्ण करके अचला के आनत मुख की ओर निबद्ध करके स्तब्ध रह गया।

एक व्यक्ति की इस एकाग्र दृष्टि ने दूसरे व्यक्ति की आनत दृष्टि को मानो आकर्षित किया—लेकिन पलमात्र के लिये। अचला उसी क्षण आँखें नीची करके अत्यन्त मृदु स्वर में अत्यन्त लज्जा के साथ बोली—'इस देश से तो सभी भाग गये हैं, यहाँ का काम अगर तुम्हारा खत्म हो गया हो तो घर, अथवा और किसी देश में, तुम चलो, डिहरी में अब घड़ी भर भी नहीं टिक सकती।'

'इस बात को मुझसे अधिक और कौन जानता है!' यह कहता हुआ एक साँस लेकर सुरेश तकिये पर सिर रखकर लेट गया और कुछ क्षण चुपचाप स्थिर भाव से रहने के बाद धीरे-धीरे कहने लगा—'कितने कष्ट से आज सबेरे दो चिट्ठियाँ भेज पाया हूँ। एक तो तुम्हारे लिये और एक महिम के लिये। अगर वह इसी बीच चला नहीं गया होगा तो आयेगा जरूर, मैं जानता हूँ।'

यह सुनकर अचला भय और विस्मय से चौंक उठी, और बोली—'उन्हें क्यों!'

सुरेश उसी तरह धीरे से बोला, 'इस वक्त एकमात्र उसीसे मेरा प्रयोजन है। बचपन से ही इस संसार में अनेक बार अनेक गुत्थियाँ डालता रहा हूँ, और उन्हें सुलझाने के लिये इसी आदमी की हमेशा जरूरत पड़ती रही है! इसलिये आज भी उसीको बुलाना पड़ा। इतना धैर्य तो संसार में और किसी का नहीं देखा!'

अचला के हृदय में उथल-पुथल होने लगी, लेकिन वह सिर झुकाये स्थिर भाव से सुनती रही। सुरेश बोला, 'चिट्ठी में मैंने लगभग सारी बातें लिख दी हैं, पढ़ते ही समझ जाओगी। उस दिन तुम्हारे हाथ में मैंने अपनी सारी सम्पत्ति का पक्का वसीयतनामा दिया था। इच्छा हो तो बहुत-सी चीज़ें तुम ले सकती हो, किन्तु मैं कहूँगा कि लेने की कोई जरूरत नहीं। बल्कि मेरे जीवित रहने से जैसे सब कुछ गरीब-दुखियों को ही मिलता, मेरी मृत्यु के बाद भी उन्हीं को मिले तो ठीक है। मेरी किसी भी चीज के साथ तुम अपने को लिप्त न रखो, अचला, मैं चाहता हूँ कि तुम निश्चिन्त होओ, निर्विघ्न होओ—मेरे सारे संबन्धों से तुम अपने को बिल्कुल अलग कर सको! यही कोशिश करने से संसार में अनेक कष्ट सहे जा सकते हैं—मेरा दिया हुआ दुख भी तुम अनायास सह सको, यही मेरी कामना है।'

उसके व्यवहार और बातचीत के ढंग से अचला के मन में आने के वक्त से ही एक तरह से भय का संचार शुरू हो गया था। इस अन्तिम बात से वास्तव में भयभीत होकर वह बोल उठी, 'तुम इन सब बातों को छोड़ क्यों रहे हो? उठकर बैठो न, और अभी हम लोग यहाँ से जा सकें इसकी कोशिश करो।'

उसकी आशंका और उत्तेजना को लक्ष्य करके भी सुरेश ने कोई जवाब न दिया। जो बुढ़िया खूँटे के सहारे बैठी ऊँघ रही थी उसने सजग होकर पूछा—'बाबू आप कमरे के अन्दर चलेंगे या बाहर ही बत्ती लाकर रख दूँ?' इसका भी उसने कोई जवाब न दिया। मालूम पड़ने लगा, मानो सहसा वह तन्द्राभिभूत हो गया है। उद्विग्न अचला अपने पूर्व प्रश्न को ही फिर से दुहराने जा रही थी कि सुरेश ने आँखें खोलकर अत्यन्त स्वाभाविक स्वर से कहा, 'अभी तक मैंने अपनी असल बात तुमसे बताई नहीं अचला, मैं मरने जा रहा हूँ—मेरे बचने की, शायद अब कोई उम्मीद नहीं है।'

प्रत्युत्तर में अचला के मुँह से सिर्फ एक अस्फुट, अव्यक्त कंठ-ध्वनि निकल पड़ी। इसके बाद वह मूर्ति की तरह निस्पन्द होकर बैठी रही।

सुरेश कहने लगा—'पहले ही से मैंने वसीयत जरूर कर रखी है, लेकिन अगर कोई यह सोचे कि मैं अपनी इच्छा से मर रहा हूँ, तो यह अन्याय है, मिथ्या है। इससे मुझे मृत्यु से भी अधिक पीड़ा होगी। मैंने सतर्क रहने में जरा-सी भी त्रुटि नहीं की, किन्तु विफल रहा। अगर कभी कोई तुमसे पूछे तो तुम उससे यही कहना। कि संसार में जैसे और जन-साधारण मरते हैं, मेरी भी मृत्यु उसी तरह हुई है। मृत्यु से छुटकारा नहीं पा सके इसी से मर गये, अन्यथा मरने की इच्छा नहीं थी। इस मृत्यु में मेरा अपना कोई हाथ था, कोई विशेषता थी, ऐसा कलंक मुझ पर कोई न लगाये।'

अचला कुछ भी न बोली। उसकी बात करने की शक्ति नष्ट तो हो ही गई थी लेकिन इस बात को उस धुँधली सी रोशनी में उसके भयभीत चेहरे को देखकर सुरेश पकड़ न सका। क्षण भर में अपने को सम्हालकर फिर कहने लगा 'मैं बिना आये नहीं रह सकता था इसलिये उस दिन तड़के ही तुमसे छिपकर भाग आया। आकर देखता क्या हूँ कि सारा ग्राम करीब-करीब सूना हो गया है। इस घर में एक नौकर मर गया था, उसका दाह-संस्कार किये बगैर ही सबके सब घर छोड़कर भागने को तैयार थे। उन्हें रोक तो नहीं सका, लेकिन मुर्दे को जलाने का प्रबन्ध हो गया। लौटकर सोचा, मैं भी घर चला जाऊँ किन्तु दोपहर को महमूदपुर से एक लड़का रोते-रोते आकर बोला कि उसकी माँ बीमार है। उसकी चीड़-फाड़ करते वक्त यह विपत्ति मैंने अपने सिर मोल ले ली है। पहले भी तो बहुत चीर-फाड़ की हैं। मैं सावधान भी कम नहीं था, लेकिन इस बार का दुर्भाग्य ही ऐसा था कि इक्के के चक्के में अँगूठे का पिछला हिस्सा पिच गया था, उस पर नजर पड़ी उस वक्त जब कि हाथ में लगा हुआ खून धोने गया। तड़फड़ वापस आकर

जो उपचार करना चाहिये सब कुछ किया। घर जाने का कोई उपाय होता, तो मैं चला ही गया होता, किसी भी हालत में यहाँ बैठा न रहता, लेकिन कोई उपाय न कर सका। कल रात को बुखार मालूम हुआ। यह बुखार कैसा है, जब यह समझ गया, तो अनेक कष्ट से कोशिश करके एक आदमी की मार्फत तुम दोनों के नाम दो पत्र लिखकर भेजे थे।'

अचला अश्रु-विकल-स्वर में बोल उठी 'पर अभी तो उपाय है, अपनी डोली पर तुम्हें लेकर मैं अभी यहाँ से चल पड़ूँगी। अब एक मिनट भी यहाँ रहने न दूँगी।'

'मगर तुम ?'

'मैं पैदल चलूँगी—मेरी बात तुम बिल्कुल मत सोचो।'

'पैदल जाओगी ! इतनी दूर !'

'तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, अब तुम और बाधा मत डालो—' कहते-कहते अचला रो पड़ी।

सुरेश पलमात्र के लिये चुप रह गया, उसके बाद एक लम्बी साँस लेकर धीरे से बोला—'अच्छा, तो फिर चलो। मगर अब शायद इसकी जरूरत नहीं है।'

अचला ने बाहर आकर देखा पेड़ के नीचे बैठा रघुबीर चुपचाप भूना हुआ चना चबा रहा है। वह बोली, 'रघुबीर, बाबू बहुत बीमार हैं, उन्हें अभी यहाँ से ले चलना होगा। डोलीवालों से कहो, वे जितना रुपया चाहेंगे, मैं उससे ज्यादा दूँगी। मगर अब एक मिनट भी देर मत करो।'

प्रभु-पत्नी के व्याकुल कंठ-स्वर से रघुबीर चौंककर उठ खड़ा हुआ और बोला, 'लेकिन डोलीवाले तो दो आदमियों को नहीं ले जा सकेंगे माँजी !'

'नहीं, नहीं, दो आदमियों को नहीं, दो आदमियों को नहीं। मैं पैदल ही जाऊँगी, मगर अब एक मिनट की भी देर मत करो रघुवीर, तुम शीघ्र जाओ, कहाँ हैं वे ?'

रघुवीर ने कहा, 'भाड़े का रुपया लेकर वे दुकान पर कुछ खाने की चीज लेने गये हैं। अभी बुलाये लाता हूँ माँजी।' यह कहकर बच्चे चने को धोती की खूँट में बाँधते-बाँधते एक तरफ को दौड़ता हुआ चला गया।

वापस आकर अचला सुरेश के सिरहाने बैठ गई, और हाथ से उसके माथे की गरमी अनुभव करके आशंका से परिपूर्ण हो उठी। मुनिया की माँ मिट्टी के तेल की डिबिया जलाकर पास ही जमीन पर रख गई थी। उसके धुँये से सारा स्थान ही कलुषित हो उठा था। डिबिया को हटाते वक्त एक दवा की शीशी पर अचला की नजर जा पड़ी। उसने पूछा, 'यह क्या तुम्हारी दवा है ?'

सुरेश ने कहा, 'हाँ, मेरी ही है। कल खुद तैयार की थी, पर पी न सका। दो—'

इस बात से अचला को बड़ी चोट पहुँची, मगर दवा न पीने का कारण लेकर उसने बात बढ़ाने की इच्छा न की। दवा देकर वह फिर सिरहाने आकर उसी तरह चुपचाप बैठ गई। बहुत देर से ही सुरेश चुप हो गया था, लेकिन वह चुपचाप कितनी बड़ी यातना सह रहा है, इस पर विचार करते ही अचला की छाती फटने लगी।

देर हो रही है, रघुवीर का कोई पता नहीं। बीच-बीच में धीरे से जाकर दरवाजे के बाहर झाँककर अँधेरे में जहाँ तक दृष्टि पहुँचती देखने की कोशिश करती लेकिन कहीं किसी का पता न चलता। उसकी इस उत्कंठा को कहीं सुरेश न ताड़ जाय, इस डर से वह और भी व्याकुल हो उठी।

रात बीतने लगी, खूँटे के निकट मुनिया की माँ खुर्राटे लेने लगी। इसी समय भूखा एवं रास्ते का थका हुआ रघुवीर भग्न-दूत की

तरह आकर उदास चेहरे से बोला—'कहार डोली लेकर बहुत पहले ही चले गये, उनका कहीं भी पता न चला।'

अचला सब कुछ भूलकर बार-बार विकृत कंठ से प्रश्न करने लगी—'वे कब चले गये! किस रास्ते से गये? और क्योंकर चले गये? हमारे पास जो कुछ भी है, क्या सब देकर भी एक पालकी का प्रबन्ध नहीं हो सकता?'

रघुबीर मुँह लटकाये स्तब्ध खड़ा रहा। यह भयंकर विपत्ति उसीकी गलती से आई है यह वह जानता था; इसीलिये जी-जान से विफल कोशिश के बाद ही वह लौटा था।

किन्तु और भी एक व्यक्ति जो उसी की तरह चुपचाप स्थिर भाव से शय्या पर पड़ा था उस पर इस चचलता का मानो रत्ती भर भी असर न पड़ा। रघुबीर के चले जाने पर वह धीरे से बोला, 'व्याकुल होने से होगा क्या अचला, उन्हें पाकर भी कोई फायदा नहीं होता। यही अच्छा है, मेरे लिये यही अच्छा है।'

अचला और कुछ न बोली, सिर्फ इस अनन्त-पथ-यात्री के तप्त ललाट पर दहिना हाथ रखकर पत्थर की मूर्ति की तरह स्थिर भाव से बैठी रही।

चारों तरफ जनहीन पुरी मृत्यु की तरह मौन होकर खड़ी है, बाहर गम्भीर रात्रि और भी गम्भीर होती जा रही है, देखते ही देखते काला आकाश और भी काला हो उठा है—उसी तरफ देखकर उसके मन में सिर्फ यही भाव उठने लगा 'इसकी जरूरत क्या थी? इसकी जरूरत क्या थी?'

यह जो उसके जीवन-कुरुक्षेत्र में इतना बड़ा एक कुत्सित संग्राम छिड़ गया है, संसार में इसकी क्या जरूरत थी? दुनिया की समस्त ज्वाला, समस्त हीनता, समस्त स्वार्थ को मिटा कर वह क्या उसी रात्रि की तरह आज ही खत्म हो जायगा? उसके बाद क्या उसका सारा जीवन कुरुक्षेत्र की तरह सिर्फ श्मशान में परिणत होकर

युग-युग के लिये पड़ा रहेगा ? इस जगह क्या चिता का दाह-चिह्न भी कभी नहीं मिलेगा ? संसार में जरूरतों के बीच क्या इसकी भी गिनती है ?'

किन्तु यह कुरुक्षेत्र शुरू ही कैसे हुआ ? किसने शुरू किया ? क्या इसी मनुष्य ने अकेले ही इतना बड़ा विप्लव खड़ा कर दिया, जो अपने समस्त ऐश्वर्य, समस्त सम्पत्ति, सकल आत्मीय-परिजनों से बिछुड़कर इस तरह अत्यन्त निरुपाय होकर मरने बैठा है ? और क्या किसी के मन में कोई लोभ, कोई मोह छिपा हुआ नहीं था ? और किसी ने क्या कोई पाप नहीं किया ?

लेकिन सहसा इस चिन्ता-धारा को मानो वह जबर्दस्ती दूर फेंककर जरा हिल-डुलकर ठीक से बैठ गई। किसी ने मानो दोनों हाथों से उसका गला घर दबाया हो। उसी समय सुरेश ने पानी माँगा। अचला ने झुककर उसके मुँह में पानी दिया फिर स्थिर भाव से बैठ गयी। उसे न श्रान्ति थी न क्लान्ति—आँखों से निद्रा का आभास तक मानो दूर हो गया था। उन्हीं दोनों सूखी आँखों को मींचकर फिर वह चुपचाप आकाश की ओर एकटक देखने लगी। बहुत दिन पहले ही उसने बड़े यत्न से जिस महाभारत को खत्म किया था आज उसीका अन्तिम सर्वनाश उसीके मानस-पटल पर इन्द्र-जाल की तरह प्रवाहित होने लगा। उस जगह मानो कितना रक्त दौड़ रहा है, कितने अपरिचित लोग एकत्र होकर मार-काट करते हुए मर रहे हैं, लाखों चिताएँ जल रही हैं, बुझ रही हैं—उनकी विशाल धूमराशि में सारा स्वर्ग-मर्त्य एकबारगी ही मानो आच्छन्न होकर एकीभूत हो गया है !

कुछ क्षण के लिये सुरेश शायद तन्द्रा में पड़ा हुआ था—वह चुपचाप था। किन्तु इस प्रकार कितने क्षण बीत गये, किस प्रकार बाहर समय व्यतीत होने लगा, किस तरह रात्रि प्रभात की ओर अग्रसर हो चली थी, इस तरफ अचला का ध्यान बिल्कुल नहीं था। उसकी मुँदी हुई आँखों के किनारे से आँसू गिर रहे थे। उसके

दोनों हाथ सुरेश के तकिये पर पड़े थे, तन-मन से वह बोल रही थी—'हे ईश्वर ! मैंने अनेक दुख, अनेक कष्ट भोगे हैं, आज मेरे समस्त दुखों, समस्त कष्टों के बदले इनको क्षमा करके तुम अपनी गोद में उठा लो। मेरे माँ नहीं, बाप नहीं, पति नहीं, इतने बड़े कलङ्क को लेकर मेरे खड़े होने की कोई जगह नहीं। मैंने कितना सहा है, क्या तुम जानते नहीं। मुझे अब और जिन्दा न रखो प्रभो ! मुझे भी तुम अपने पास खींच लो।'

इन बातों को कितनी व्याकुलता से, कितनी बार उसने मन-ही-मन दुहराया इसकी हद नहीं। आँसू भी कितने गिरे, इसकी भी कोई सीमा नहीं।

'माँजी !'

अभी-अभी सबेरा हुआ था; अचला ने चौंककर देखा कि रघुबीर किसी के प्रवेश करने का इन्तजार करते हुए सदर दरवाजा खोले खड़ा है।

'क्या है रघुबीर ?' इतना कहते ही जिसके साथ उसकी चार आँखें हुईं, वह था महिम। एक बार काँपकर उसने आँखें नीची कर लीं। दरवाजे के निकट क्षणभर के लिये महिम के पाँव नहीं उठे। इस जगह, इस तरह फिर उसके साथ भेंट हो जायगी, इसकी उसे कतई आशा न थी। लेकिन दूसरे ही क्षण धीरे-धीरे नजदीक आकर वह खड़ा हो गया। अत्यन्त मृदुकण्ठ से पूछा, 'अब सुरेश की तबीयत कैसी है ?'

अचला ने न तो सिर उठाया, और न कुछ कहा, सिर्फ सिर हिलाकर शायद यही जताना चाहती थी कि वह इस बारे में कुछ नहीं जानती।

मिनट भर स्थिर रहने के बाद महिम ने सुरेश का माथा ज्योंही स्पर्श किया कि उसने आँखें खोलकर देखा। उसके ज्योतिहीन रक्तनेत्र की ओर देखकर महिम के गले से सहसा कोई आवाज न निकल सकी। इसके बाद वह बोला, 'कैसी तबीयत है सुरेश ?'

'ठीक नहीं, मैं अब चला। तुम आओगे, मैं यह जानता था। मेरे सामने आकर बैठो।'

महिम उठकर शय्या के एक किनारे उसके पैताने की तरफ जा बैठा, और बोला, 'डिहरी में डाक्टर है, मेरे इक्के पर किसी तरह—'

सुरेश सिर हिलाकर बोला, 'नहीं, अब खींचा-तानी मत करो। इससे कोई फ़ायदा न होगा। मुझको quietly (शान्तिपूर्वक) जाने दो।'

'लेकिन अब भी तो—'

'हाँ, अब भी होश में हूँ, किन्तु बीच-बीच में भ्रान्त हो जाता हूँ। मैं अपने जीवन को दीन-दुखियों की सेवा में न लगा सका। लेकिन मेरी सम्पत्ति उनके काम आये महिम, इसीलिये तुम्हें इतनी दूर आने का कष्ट दिया है, नहीं तो मौत की घड़ी में वागाडम्बर करके क्षमा-याचना की मेरी इच्छा नहीं।'

महिम चुप रहा। सुरेश बोलने लगा 'इस सब में न तो मैं विश्वास ही करता हूँ, न मुझे अच्छा ही लगता है। एक दिन की क्षमा के प्रति मुझे लोभ भी नहीं। अच्छी बात है, एक वसीयतनामा है! अचला को मैंने कुछ नहीं दिया। उसका और अपमान करने का मुझे साहस न हुआ। फिर भी जरूरत समझो, तो कुछ दे देना।'

महिम व्याकुल हो उठा, 'फिर मुझे क्यों इसमें लपेट रहे हो सुरेश!'

सुरेश बोला 'ठीक इसीलिये कि तुम्हें लपेटा नहीं जा सकता। जिसे कोई लोभ नहीं, जिसको उचित-अनुचित का विचार है—' अचानक ऊपर की ओर आँख उठाकर बोला—'मगर तुम सारी रात यहीं बैठी रही अचला—जाओ, हाथ-मुँह तो धो लो। मुनिया की माँ सब कुछ दिखा देगी—जाओ—'

उसके उठकर चले जाने पर उसने कहा—'सिर्फ एक वस्तु के लिये मुझे अत्यन्त कष्ट हो रहा है। अचला तुम्हें कितना प्यार करती है यह मैंने भी नहीं समझा न तुम ही समझे—और वह स्वयं भी

न समझ सकी। वह प्रेम तुम्हारी गरीबी के साथ इस तरह उलझ गया कि—छोड़ो इन बातों को। ऐसी सुन्दर वस्तु को मैंने मिट्टी में मिला दिया—न तो खुद पा सका, न दूसरे को पाने दिया। मगर अब हो ही क्या सकता है! बुआजी को जरा देखना, उन्हें बहुत शोक होगा।'

वृद्धा मुनिया की माँ के दवा की शीशी लेकर नजदीक खड़ा होते ही वह क्रुद्ध-स्वर में बोल उठा—'नहीं, नहीं, अब दवा की कोई जरूरत नहीं। जरा पानी दो। एक नाटक लिखना शुरू किया था महिम, मेरी दराज में है। पढ़ सको तो पढ़ना।'

महिम को उसके मुँह की तरफ देखने का साहस नहीं हो रहा था, मुँह नीचा किये सुन रहा था। इस बार आँख उठाकर वह कुछ कहना ही चाहता था कि सुरेश ने रोकते हुए कहा—'अब बस करो महिम। जरा सोने दो। खाने-पीने का सारा बन्दोबस्त है, किन्तु तुम लोगों को तो अच्छा नहीं लगेगा।' यह कहकर उसने आँखें मूँद लीं।

महिम क्षणभर चुप रहकर धीरे-धीरे बोला, 'मेरा एक अन्तिम अनुरोध रखोगे सुरेश?'

'कैसा अनुरोध?'

'तुमने कभी ईश्वर को याद नहीं किया, उनको बात—'

'यही मुझे अच्छा नहीं लगता।' कहकर सुरेश चेहरे को बिगाड़ कर मुँह फेर सो गया। महिम जी-जान से दीर्घ-श्वास रोककर चुप रहा।

४३

रामबाबू घर पर नहीं थे। दूसरे दिन बक्सर से लौटकर महिम की चिट्ठी पढ़ते ही उन्होंने क्षणभर की भी देर न की। रास्ते भर घोड़े को निर्दयता से दौड़ाते हुए उसे अधमराकर जब मझौली पहुँचे, उस वक्त शाम हो रही थी। पुलिस का दरोगा समझकर दुकानदार स्वयं रास्ता

दिखाता हुआ नन्द पांडे के नीम के निकट आ पहुँचा और इक्के पर से उतरने के समय उसने सम्मान के साथ घोड़े की लगाम थाम ली। इसी के मुँह से उन्होंने सुना कि अचला भी आई है। सदर दरवाजा खुला हुआ था, अन्दर कदम रखते ही असल घटना समझते उन्हें देर न लगी। दो घण्टे हुए सुरेश की मृत्यु हो गई है। खाट पर सिर से पैर तक उसका मृत-शरीर ढका हुआ था, और अचला पाँव के निकट चुप बैठी थी।

अकस्मात् इस दृश्य को वृद्ध बर्दाश्त न कर सके—'बप्पा रे!' कहकर उमड़ते हुए शोक में रो पड़े। अचला ने मुँह उठाकर एकबार देख भर लिया और बाद में उसी तरह मुँह लटकाकर चुपचाप बैठी रह गई। यह आर्तस्वर मानो सिर्फ उसके कानों तक पहुँचा, किन्तु अन्दर न जा सका।'

महिम घर के अन्दर लकड़ी ढूँढ़ रहा था, रोने की आवाज से बाहर आ पहुँचा और बोला—'सुरेश कुछ देर पहले मरा है रामबाबू। आप आ गये, अच्छा ही हुआ, अन्यथा अकेले बड़ी मुसीबत में पड़ जाता!'

रामबाबू चुपचाप आँखें पोंछने लगे। वे क्या करेंगे, क्या कहेंगे, किस तरह उस तरुणी के नेत्रों के सामने ही इस भीषण निदारुण कार्य में मदद देंगे, इसका कोई उपाय उन्हें न सूझा।

महिम ने कहा—'नदी दूर नहीं है, रघुबीर की मार्फत कुछ लकड़ी भेज दी हैं, और भी कुछ लकड़ी मिल गई हैं—उन्हीं को भेजकर हम तीनों जने मुर्दे को ले जा सकेंगे। वैसे गाँव में कोई आदमी नहीं, होता भी तो शायद बगाली मुर्दे को कोई नहीं छूता।'

रामबाबू यह जानते थे। अचला से छिपाकर चुपके से उन्होंने पूछा—'हम दो जने और एक कौन?'

महिम ने कहा—'रघुबीर भी तो मदद कर सकता है!'

वृद्ध सुनकर व्याकुल हो उठे, बोले—'नहीं, नहीं, सो तो किसी भी तरह नहीं हो सकता। ब्राह्मण का शव अन्य किसी को मैं नहीं छूने दे सकता। नदी जब दूर नहीं है तो हम दो ही आदमी किस तरह होगा ले चलेंगे।'

'अच्छा यही सही'—कहकर महिम फिर अन्दर जाकर लकड़ी इकट्ठा करने लगा। रामबाबू उसी बरामदे के एक किनारे खूँटी के सहारे चुपचाप बैठ गये।

उनकी उम्र काफी हो चुकी है, इस लम्बे अर्से में उन्होंने कितनी मौतें देखी हैं; अनेक गम्भीर शोकों के बीच भी उन्होंने धीरे-धीरे चल कर रास्ता तय किया है। दुःसह दुखों के करुण-स्वर एक-एक करके उनके हृदय-तन्त्री के तारों से बँध गये हैं। आज की इस घटना का आघात पाकर वे तार मानो बेसुरे बजने लगे। एक दिन यही सुरमा ताऊजी कहकर उनकी छाती पर पछाड़ खाकर गिर पड़ी थी। वे उस चित्र को भूले नहीं थे। आज भी उनका पितृ-स्नेह मानो उसी वस्तु के लोभ से भीतर-ही-भीतर चक्कर लगाकर विकल हो उठा। उसे किस प्रकार सान्त्वना दें यह उनकी समझ में नहीं आया। इस समय उसे ढाढ़स देने के लिये संसार में कहीं कुछ है या नहीं, इसका भी उन्हें पता न था, फिर भी उनका शोकातुर हृदय मानो सिर्फ यही चाहने लगा कि एकबार इस कन्या को छाती से लगाकर कहें, 'डर किस बात का है बेटी! आज भी मैं जिन्दा हूँ।'

लेकिन यह हुआ कहाँ! उनकी उस प्यास को मिटाने के लिये कोई एक कदम भी आगे न बढ़ा! सुरमा उसी तरह नीरव होकर उसी तरह दूरतम अनात्मीयता का पर्दा डाले अपने को अलग किये रहा।'

दुख के दिनों में, विपत्ति के दिनों में अनेक दुर्ज्ञेय वेदना एवं मौन धर्म-पीड़ा के बीच उन्हें चलना पड़ा है। छिपे हुए रहस्य का इशारा बीच-बीच में उन्हें खटका भी है, लेकिन किसी भी दिन अपने

को आहत नहीं होने दिया। सारे संशय को स्नेह के आवरण से ढककर बाहर के आकाश को उन्होंने मेघमुक्त निर्मल बना रखा था; मगर आज सद्य विधवा के वही अत्यन्त अपरिचित निष्ठुर धैर्य ने उनके इतने दिनों के छिपे हुए स्नेह को चीरकर कलुषित वाष्प से मानो उनके हृदय को भर दिया।

सूर्य अस्त हो गया। महिम ने उस तरफ का काम एक तरह से समाप्त करके नजदीक आकर कहा—'राम बाबू अब तो उसे ले चलना चाहिये।' फिर अचला की तरफ मुड़कर बोला—'दीप जला दिया है, तुम मुनिया की माँ के पास जाकर बैठो, हम लोगों को लौटने में शायद ज्यादा देर न लगेगी।'

अचला ने कुछ नहीं कहा। राम बाबू अपने को सम्हालकर उठ खड़े हुए थे, और उन्होंने सिर हिलाया। अचला के आनत मुख की ओर देखकर रुँधे हुए गले को साफ करके भर्रायी हुई आवाज में बोले—'बेटी, यह बात कहते मेरी छाती फटी जा रही है, किन्तु पत्नी का शेष कर्तव्य तो तुमको ही करना पड़ेगा! तुम्हीं को तो मुखाग्नि—' कहते-कहते वे फूट-फूटकर रो पड़े।

अचला अपने सूखे चेहरे तथा उससे भी अधिक सूखी आँखें वृद्ध की ओर निबद्ध करके क्षणभर स्थिर रही, उसके बाद शान्त मृदुकण्ठ से बोली—'मुखाग्नि की जरूरत हो तो मैं कर सकती हूँ। हिन्दू-धर्म में इसका अगर सचमुच फल हो तो मैं इसे व्यर्थ करना नहीं चाहती। मैं उनकी पत्नी नहीं हूँ।'

राम बाबू बज्राहत की तरह निर्निमेष दृष्टि से देखते रहने के बाद अन्त में धीरे-धीरे बोले—'तुम सुरेश की पत्नी नहीं हो?'

अचला उसी तरह अविचलित स्वर में बोली—'नहीं, वे मेरे पति नहीं।'

पलक मारते ही राम बाबू को सारी घटनाएँ याद हो आईं। उनके घर में आश्रय ग्रहण करने से लेकर उस दिन की उस मूर्च्छा तक

की सारी घटनाएँ बिजली की तरह उनके मन में चक्कर काटने लगीं और अब उनके मन में संशय की छाया तक बाकी न रही। यह कौन है, किसकी लड़की है, कौन जात की है—शायद वेश्या ही न हो—इसको 'माँ' कहकर पुकारा हैं, उसके हाथ का खाया है—उसके हाथ की बनी रसोई से अपने ठाकुरजी तक को भोग लगाया है! इन बातों की याद आते ही घृणा से उनका सर्वाङ्ग भर गया, और जिस स्नेह ने इतने दिन उन्हें श्रद्धा, माधुर्य और करुणा से अभिषिक्त कर रखा था, मरुभूमि में जल-बिन्दु की तरह वह गायब हो गया, उसका आभास तक न रहा।

किन्तु सिर्फ वे ही नहीं, महिम भी हक्का-बक्का सा होकर खड़ा था, उसने चौंककर कहा—'जबकि यह होने का कोई उपाय ही नहीं तो चलिये रामबाबू, हम दोनों उसे ले चलें।'

'चलिये'—कहकर वृद्ध स्वप्न-चालित की तरह आगे बढ़े। उनकी निजी दुर्घटना के आगे अन्य सारी दुर्घटनाएँ एकबारगी ही छाया की तरह म्लान हो गयीं। उनके दोनों कानों में सिर्फ ये ही शब्द गुञ्जित होने लगे 'जात गयी, धर्म गया, यह मानव-जन्म ही मानो व्यर्थ हो गया, वृथा हो गया।'

सुरेश की अन्त्येष्टि-क्रिया करने में कोई ज्यादा देर नहीं लगी। इस बीच में राम बाबू के मुँह से कोई बात नहीं निकली और लौटकर उन्होंने सीधे एक्का तैयार करने का हुक्म दिया।

महिम ने पूछा—'आप क्या इसी वक्त जायेंगे?'

राम बाबू बोले—'हाँ। मुझे सबेरे की गाड़ी से काशी जाना पड़ेगा, इसी वक्त न जाने से समय पर नहीं पहुँच सकूँगा।'

उनके मन का भाव महिम से छिपा नहीं था और प्रायश्चित के लिये ही वे काशी भागे जा रहे हैं, इसे भी वह समझ गया था। इसीलिये अत्यन्त संकोच के साथ बोला—'मैं परदेशी आदमी हूँ, इधर का मुझे कुछ पता नहीं। दया करके अगर इनके जाने क

कोई व्यवस्था —' बात खत्म न होने पायी। अचला को साथ ले चलने के प्रस्ताव से वृद्ध अग्नि की तरह प्रज्वलित हो उठे—'दया ! आप क्या पागल हो गये हैं महिम बाबू ?'

महिम ने इस प्रश्न का प्रतिवाद नहीं किया। डरता हुआ, विनय के साथ बोला—'शायद दो-तीन दिनों से उन्होंने कुछ खाया भी नहीं है। इस मृत्यु पुरी के बीच ऐसी भयानक अवस्था में छोड़ कर जाना—'

उसे इस बात को खत्म करने का समय नहीं मिला। आचार निष्ठ ब्राह्मण का जन्मगत संस्कार चोट खाकर प्रतिहिंसा से क्रुद्ध हो उठा था। इसीलिये कटु-श्लेष से बोल उठे—'ओह, आप भी तो ब्राह्मसमाजी ही हैं, सो तो मैं भूल ही गया था, किन्तु महाशयजी आप चाहे जितने बड़े ब्रह्मज्ञानी हों, मेरे सर्वनाश के परिमाण को समझने पर इस कुनटा के लिये दया-मया की बात मुँह पर लाते भी नहीं।'—कहकर गाड़ी पर बैठते हुए बोले—'छोड़िये इस बात को, ब्रह्मज्ञान की और जरूरत नहीं। जान बचाना चाहते हों, तो आप भी आकर बैठ जाइये, आपके लिये जगह है।'

महिम ने चुपचाप नमस्कार किया। सर्वनाश के परिमाण को लेकर वाद विवाद नहीं किया, प्राण बचाने के निमन्त्रण को भी स्वीकार नहीं किया। उनके चले जाने पर उसके हृदय को चीरती हुई सिर्फ एक लम्बी साँस निकल पड़ी।

'सर्वनाश का परिमाण ! ठीक !'

अन्दर बैठी हुई अचला ने भी गाड़ी के शब्द से इसका अनुमान किया। वे अन्दर क्यों नहीं आये, एक बात तक किये बगैर ही चले गये, यह भी अत्यन्त स्पष्ट था। इतनी देर तक सुरेश की अनिवार्य मृत्यु ने जो भयंकर दुश्चिन्ता की सृष्टि करके एक पर्दा खड़ा कर रखा था, अब वह भी न रहा। इस बार महिम बिल्कुल सामने, अत्यन्त निकट आकर खड़ा होगा था, किन्तु अब उसका मन किसी भी तरह कुछ

कहना नहीं चाहता। अपने लिये लज्जा अनुभव करने में भी मानो वह क्लान्ति से भर उठी।

महिम ने आकर देखा—वह मिट्टी के तेल के जलते हुए दीप को आगे रखकर चुपचाप बैठी हुई है। उसने कहा—'अब तुम क्या करोगी ?'

'मैं ?'—कहकर अचला उसके मुँह की ओर देखती हुई न जाने क्या-क्या सोचने लगी; अन्त में बोली—'मेरे तो कुछ समझ में नहीं आता। तुम जो हुक्म करोगे, मैं वही करूँगी।'

इस अप्रत्याशित वाक्य और व्यवहार से महिम विस्मित हो गया, शंकित भी हुआ। इस तरह तो वह कभी देखती नहीं थी। यह दृष्टि जितनी सरल है, उतनी ही स्वच्छ भी है। इसके भीतर से उसके हृदय का बहुत बड़ा हिस्सा मानो स्पष्ट झलक रहा था। वहाँ कोई भय नहीं, चिन्ता नहीं, कामना नहीं, कल्पना नहीं—जहाँ तक देखा जा सकता है—भविष्य का आकाश धू-धू कर रहा है। उसका कोई रंग नहीं, कोई मूर्त्ति नहीं, गति नहीं, प्रकृति नहीं—'बिल्कुल एकान्त शून्य !'

उपद्रुत, अपमानित, क्षत-विक्षत नारी-हृदय के इस चरम वैराग्य को वह पहचान न पाया। एक के अभाव ने दूसरे के हृदय को इस तरह शून्य कर दिया है—इसकी कल्पना करते ही उसका सारा मन तिक्तता से परिपूर्ण हो उठा। किन्तु अपने दुख से संसार के दुख को वह कभी बढ़ाना नहीं चाहता, इसीलिये अपने को अपने में ही सीमित रखने की उसकी हमेशा की आदत थी। पीछे कहीं हृदय में भरी हुई यह तिक्तता उसके कण्ठ स्वर में उमड़कर आ न जाय, इसी डर से दूसरी तरफ आँखें फिराकर कुछ क्षण मौन रहने के बाद स्वाभाविक स्वर में बोला—'मैं क्यों तुम्हें हुक्म देने लगा अचला, और तुम्हीं क्यों उसे मानने को तैयार होगी ?'

कही थी। इसलिये उनका सर्वनाश किस तरफ से हुआ था इसका अनुमान करना महिम के लिये कठिन न था; मगर इस वक्त वह इसी बात को मन ही मन दुहराने लगा कि अचला के अपराधों पर बाद में विचार किया जायगा, किन्तु इस आचार-निष्ठ ब्राह्मण का यह धर्म कैसा सच्चा धर्म है कि जो सामान्य एक स्त्री की प्रतारणा से पलमात्र में ही मिट्टी में मिल गया ? जो धर्म अत्याचारियों के आघात से स्वय और दूसरों की रक्षा पूरी न कर सके, बल्कि जिसे अपने को ही मौत से बचाने के लिये अपनी शक्ति से दिन-रात सतर्क रहना पड़े, वह कैसा धर्म है ? और मानवजीवन में उसकी आवश्यकता है ही कहाँ ? जिस धर्म ने स्नेह की मर्यादा भी न रखने दी, जिस धर्म ने निःसहाय आर्त नारी को मृत्यु के मुख में डाल जाने में जरा भी हिचकिचाहट न मालूम होने दी, चोट खाकर जिस धर्म ने इतने बड़े स्नेहशील वृद्ध को भी इस प्रकार चञ्चल और प्रतिहिंसा से इस प्रकार निष्ठुर बना दिया, वह कैसा धर्म है ! इसको जिसने अंगीकार किया है, वह किस सत्य वस्तु को दो रहा है ? जो धर्म है, वह तो वर्म (कवच) की तरह चोट सहने के लिये ही है ! यही तो उसकी अन्तिम परीक्षा है !'

सहसा उसके मन में यह भाव उठा—'तो फिर मेरा अपना यह भागना भी तो—' किन्तु इस चिन्ता को भी उसने उसी तरह सहसा ढकेलकर कलम उठा ली और छोटे से पत्र को तुरन्त समाप्त करके सामान सम्हाल कर स्टेशन की तरफ चल पड़ा।

गाड़ी आने पर जिस डिब्बे का दरवाजा खोलकर महिम अन्दर घसने की कोशिश कर रहा था, उसी दरवाजे से एक वृद्धि से सज्जन एक विधवा तरुणी का हाथ पकड़कर नीचे उतर पड़े।

वृद्ध बोले —'अरे, महिम यहाँ कैसे ?'

मृणाल झुककर पैर छूकर बोली, 'भैया, कहाँ जा रहे हो ?' और दोनों ने विस्मय के साथ देखा कि महिम गाड़ी में जा बैठा है।'

महिम ने कहा—'मैं कलकत्ते जा रहा हूँ। 'सुरेश बाबू का घर' कहने से ही इक्के वाला ठीक जगह पर पहुँचा देगा। वहीं अचला है।'

केदार बाबू इक्का-बक्का सा होकर एकटक देखते हुए खड़े रहे। महिम ने कहा—'सुरेश की मृत्यु हो गई है। अचला मुझसे किसी एक आश्रम की बात पूछ रही थी मृणाल, लेकिन मैं उसका जवाब नहीं दे सका। शायद तुमसे वह कोई जवाब पा सकेगी।

मृणाल उसके मुँह की तरफ नजर गड़ाकर सिर्फ यह बोली—'जरूर पायेगी भैया! लेकिन मेरी सारी शिक्षा-दीक्षा तो तुम्हारे ही निकट हुई है। आश्रम कहो या आश्रय कहो—यह उसके लिये कहाँ है इसकी खबर मैं भाभी को दे सकूँगी—मगर वह भी तो तुम्हें ही देना पड़ेगा।

महिम ने कुछ कहा नहीं। शायद इस तीक्ष्ण-दृष्टि रमणी से अपने को छिपाने के लिये ही उसने मुँह फेर लिया।

गाड़ी छूटने की सीटी बज उठी। मृणाल वृद्ध के काँपते हुए दाहिने हाथ को अपने हाथ में लेती हुई बोली—'चलो पिताजी, हम लोग अब चलें।'